द्विवेदी-मीमांसा

लेखकः -

भैमनारायण टंडन



प्रकाशक

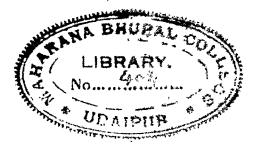
इंडियन मेस, लिपिटेड, इलाहाबाद

मृल्य १॥)

द्विवेदी-मीमांसा

लेखकः

प्रेमनारायणं टंडन



प्रकाशक

इंडियन मेस, लिमिटेड, इलाहाबाद

मृत्य धा)

भारतेंद्व कर राष्ट्र भारती की वीणा निर्माण। किया श्रमर स्पर्शों ने जिसका बहु विधि स्वर-संधान।। निश्चय उसमें जगा श्रापने प्रथम स्वर्ण-मंकार। श्रीखल देश की वाणी को दे दिया एक श्राकार।।

× × ×

पंखहीन थी श्रहा, कल्पना, मूक कंठगत गान। शब्द शून्य थे भाव; रुद्ध प्राणों से वंचित प्राण॥ सुख-दुख की प्रिय कथा स्वप्न! वंदी थे हृद्योद्गार। एक देश था सही, एक था क्या वाणी-व्यापार?

× × ×

वाग्मि! आपने मूक देश को कर फिर से वाचाल, रूप-रंग से पूर्ण कर दिया की पूर्ण कर दिया की पूर्ण कर दिया की पूर्ण कर दिया की पूर्ण का । शत कंठों से फूट आपके शतमुख ने गौरव ना । शत-शत दुर्ग-स्तंभों से ताने स्विणिम-की त्ति-वितान ।

 \times ' \times '

चिर स्मारक-सा, उठ युग-युग में, भारत का साहित्य । - त्र्रार्थ, त्र्रापके यशःकाम को करे सुर्राचत नित्य ॥

—सुमित्रानंदन पंत

(द्विवेदी अभिनंदन-यंथ)

भारतेंद्व कर गएँ भारती की वीणा निर्माण । किया अमर स्पर्शों ने जिसका बहु विधि स्वर-संधान ॥ निश्चय उसमें जगा आपने प्रथम स्वर्ण-मंकार । अखिल देश की वाणी को दे दिया एक आकार ॥

 \times \times \times

पंखहीन थी श्रहा, कल्पना, मूक कंठगत गान। शब्द शून्य थे भाव; रुद्ध प्राणों से वंचित प्राण॥ सुख-दुख की प्रिय कथा स्वप्न! वंदी थे हृदयोद्गार। एक देश था सही, एक था क्या वाणी-व्यापार?

× × ×

वाग्मि! आपने मूक देश को कर फिर से वाचाल, रूप-रंग से पूर्ण कर दिया जिल्हा है, हां हु-कंकाल। शत कंठों से फूट आपके शतमुखं गौरव नगुन। शत-शत दुर्ग-स्तंभों से ताने स्वर्णिम-क्रीति-वितान्।

 \times ' \times . ' \times

चिर स्मारक-सा, उठ युग-युग में, भारत का साहित्य । - त्रार्य, त्रापके यशःकाम को करे सुरित्तत नित्य ॥

—सुमित्रानंदन पंत

(द्विवेदी अभिनंदन-यंथ)

इस संबंध में मैंने आदरणीय वाबू कालिदास जी कपूर, एम० ए०, एल० टी०, से बात की थी। इसी सिलसिले में उन्होंने द्विवेदी जी का नाम लिया और बोले—इनके विषय में कुछ लिख सकी तो लिखो; इसकी बड़ी जरूरत है।

मैंने स्वीकार कर लिया। मास्टर साहव ने मुक्ते द्विवेदी-श्रभिनंदन-प्रथ दिया, सरस्त्रती (सन् १६१८ से), सुधा, माधुरी, विशाल भारत, इंस श्रीर जागरण की काइलें दीं श्रीर दीं द्विवेदी जी की कुछ पुस्तकें। नया-नया उत्साह था। द्विवेदी-अभिनंदन-श्रंथ का 'अद्भांजिल" शोर्पक अंश में उसी दिन पढ़ गया और दो लेख-पूर्वरूप और मंत्तिप्त जीवनचरित्र-लिख डाले। शाम को मैंने वे लेख मास्टर साहव को दिखाये। उन्होंने संशोधन किया। मैंने वड़ी उत्सुकता से पृत्रा—ठीक हैं ? उन्होंने मुफे उत्साहित करते हुए कहा-हाँ, ठीक ही हैं, पर इतनी जल्दी करने से काम नहीं चलेगा। इससे मेरा उत्साह ही वढ़ा। डिवेदी जी की पुस्तकें मैंने मँगाई; कुछ दिन के लिए, द्विवेदी जी की अनुमित से, नागरी-प्रचारिएो सभा, काशी में जाकर द्विवेदी जी का पत्र-च्यवहार देखा श्रौर तव फिर से "मीमांसा" में हाथ लगाया। मुफे ठीक याद है कि जिस दिन मैंने यह पुस्तक त्तिखनी चारंम की थी, वह जन्माष्टमी का चत्यंत शुभ चौर पुनीत दिवस था। आज उसी परमात्मा की असीम अनुकंपा से, लगभग तीन वर्ष के परिश्रम के बाद, में इसे तैयार कर सका हूँ। इसके लिए मसाला जुटाने में, आर्थिक कठिनाइयों के होते हुए भी, मैंने यथाशक्ति परिश्रम किया और मिले हुए मैटर का पूर्ण उपयोग करने की चेष्टा भी की, फिर भी यह पुस्तक जैसी होनी चाहिए थी, वैसी न हो सकी। इसका प्रधान कारण मेरी अयोग्यता है, मैटर की कमी नहीं।

इस संबंध में मैंने आद्रणीय वावू कालिदास जी कपूर, एम० ए०, एल० टी०, से वात की थी। इसी सिलसिले में उन्होंने द्विवेदी जी का नाम लिया और वोले—इनके विषय में कुछ लिख सकी तो लिखो; इसकी बड़ी जरूरत है।

मेंने स्वीकार कर लिया। मास्टर साहव ने मुफ्ते द्विवेदी-श्रमिनंदन-प्रथ दिया, सरस्त्रती (सन् १६१८ से), सुधा, माधुरी, विशाल भारत, हंस श्रीर जागरण की काइलें दीं श्रीर दीं द्विचेदी जी को कुछ पुस्तकें। नया-नया उत्साह था। द्विचेदी-अभिनंदन-प्रंथ का "अद्धांजलि" शीर्षक अंश में उसी दिन पढ़ गया और दो लेख-पूर्वरूप श्रोर मंचिप्र जीवनचरित्र-लिख डाले। शाम को मैंने वे लेख मास्टर साहव को दिखाये। उन्होंने मंशोधन किया। मैंने वड़ी उत्सुकता से पृत्रा—ठीक हैं ? उन्होंने मुफे उत्साहित करते हुए कहा—हाँ, ठीक ही हैं, पर इतनी जल्दी करने से काम नहीं चलेगा। इससे मेरा उत्साह ही वढ़ा। हिवेदी जी की पुस्तकें मैंने मँगाई; कुछ दिन के लिए, द्विवेदी जी की अनुमित से, नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी में जाकर द्विवेदी जी का पत्र-त्यवहार देखा खौर तत्र फिर से "मीमांसा" में हाथ लगाया। मुफे ठीक याद है कि जिस दिन मैंने यह पुस्तक लिखनी त्यारंभ की थी, वह जन्माष्टमी का अत्यंत शुभ और पुनीत दिवस था। त्राज उसी परमात्मा की त्रसीम त्रानुकंपा से, लगभग तीन वर्ष के परिश्रम के बाद, मैं इसे तैयार कर सका हूँ। इसके लिए मसाला जुटाने में, आर्थिक कठिनाइयों के होते हुए भी, मैंने यथाराक्ति परिश्रम किया श्रौर मिले हुए मैटर का पूर्ण उपयोग करने की चेष्टा भी की, फिर भी यह पुस्तक जैसी होनी चाहिए थी, वैसी न हो सकी । इसका प्रधान कारण मेरी अयोग्यता है, मैटर की कमी नहीं।

उत्साहित किया है। पंडित रूपनारायण जी पांडेय (माधुरी-संपादक) ने मेरे लेखों को माधुरी में प्रकाशित कर, समय-समय पर मुक्ते प्रोत्साहित करके और परामर्श देकर जो अमृल्य सहा-यता दो हैं तथा पंडित देवीदत्त जी शुक्त (सरस्वती-संपादक) और बावू कालिदास जी कपूर ने मुक्त पर जो कृपा रक्खी हैं उसके लिए में केवल इतना कह सकता हूँ कि यदि ये महानुभाव मुक्त पर ऐसी कृपा न रखते तो शायद 'मीमांसा" कभी तैयार ही न हो सकती।

१—===३६ रानीकटरा, लखनङ }

प्रेमनारायण टंडन

उत्साहित किया है। पंडित रूपनारायण जी पांडेय (माधुरी-संपादक) ने मेरे लेखों को माधुरी में प्रकाशित कर, समय-समय पर मुक्ते प्रोत्साहित करके चौर परामर्श देकर जो अमूल्य सहा-यता हो है तथा पंडित देवीदत्त जी शुक्त (सरस्वती-संपादक) चौर वाचृ कालिदास जी कपूर ने मुक्त पर जो कृपा रक्खी है उसके लिए में केवल इतना कह सकता हूँ कि यदि ये महानुभाव मुक्त पर ऐसी कृपा न रखते तो शायद 'मीमांसा" कभी तैयार ही न हो सकती।

१—=—३६ रानीकटरा, लखनऊ

प्रेमनारायण टंडन

द्विवेदी-मीमांसा

(स्वर्गीय त्राचार्य पंडित महावीरप्रसार जी द्विवेदी की हिन्दी-सेवा की परिचयात्मक त्रालोचना।)

लेखक, प्रेमनारायण टंडन

बी० ए०, विशारदे,

हिंदी-अध्यापक, कालीचरन हाईस्कृत, लखनऊ।

Salana Salana

द्विवेदी-मीमांसा

(स्वर्गीय आचार्य पंडित महावीरप्रसाद जी द्विवेदी की हिन्दी-सेवा की परिचयात्मक आलोचना।)

लेखक, प्रेमनारायण टंडन

वी० ए०, विशारदे,

हिंदी-अध्यापक, कालीचरन हाईस्कृल, लखनऊ।

विषयानुक्रमणिका

विष्य	, , , , , , , , , , , , , , , , , , ,			ā8
पूर्वरूप	***	·::.	4,	१
ं गद्य की दशा	1	v	•••	ነ የ
पद्य	•••	•••	`•••	३
छुन्द श्रीर काव्य	विपय	•••		8
साहित्यिक श्रंग	•	***		8
जन्म, शिक्षा श्रीर साहि	हेत्य-प्रवेश	· • •		હ
हिन्दी-पत्रों का संक्षिप्त	इतिहास	•••	• • •	१४
सरस्वती में विविध विध	ग् य (१९
लेखकनिर्माण				३१
सम्पादन-कला श्रीर पा	रेश्रम 🚶			४६
एक संशोधित लेख	•••	;	•••	प्रद
भाषा-सुधार-कार्य	•••	•••		६८
समालोचना				<u>ت</u> ه
प्रवृत्ति, उद्दे	श्य श्रौर श्रादर्श	•••		८३
. समालोचना	Г	• • •	•••	९१
. (१) संस्कृत	ा-ग्रन्थों की त्र्यालो	चना ,	• • •	९१
ः (२) हिन्दी-	-पुस्तकों की त्र्याव	ोचना .	• .	९४
श्रालो	वना-शैली	•••		९६
- दूसरों	के विचार	•••	•••	१०५
् प्रभाव	श्रौर समीक्षा: -		•••	१११
निवन्ध श्रीर ग्रन्थ	7,1	, ,		११६
पुस्तकें		***	•••	१२९

विषयानुक्रमणिका

विषय		e e		ā8
पूर्वरूप	•••	*::	٠,	१
ं गद्य की दशा	1	. v	•••	ነ የ
पद्य	•••	•••	`•••	३
छन्द श्रौर काव्य	विपय	•••	'	४
साहित्यिक श्रंग	*	•••		४
जन्म, शिक्षा श्रौर साहि	हेत्य-प्रवेश	~ <u>~ .</u>	•••	હ
हिन्दी-पत्रों का संक्षिप्त	इतिहास		•••	१४
सरस्वती में विविध विष	ाय [′] .	•••	•••	१९
लेखकनिर्माग		•	•••	३१
सम्पादन-कला श्रीर पा	रेश्रम ,	•••		४६
एक संशोधित लेख	•••	•••	•••	प्रद
भाषा-सुधार-कार्य		•••		६८
समालोचना				50
प्रवृत्ति, उद्दे	एय और य	ादर्श		८३
. समालोचना		• • •	•••	९१
. (१) संस्कृत	ा-ग्रन्थों की ^व	त्रालोचना ,	•••	९१
ः (२) हिन्दी-	पुस्तकों की	त्र्यालोचना .	• .	९४
त्र्यालोन	वना-शैली			९६
दूसरों :	के विचार	•••	•••	१०५
् प्रभाव	श्रीर समीध	ne unitar	•••	१११
निवन्ध श्रौर ग्रन्थ		··· ,	•••	११६
पुस्तकें		***	•••	१२९

विषय			.		āã
	संग्रह		•••		२५⊏
	सफलता	का रहस्य	•••	•••	રપૂદ
भारतीयता का	भाव	•••		•••	२६२
सम्मान			•••	•••	२७३
महत्त्व			•••	•••	२८०

, (३)

विपय			ı		पृष्ठ
	संग्रह		•••		२५८
	सफलता	का रहस्य	•••	•••	રપ્રદ
भारतीयता का	भाव	•••	. • •	***	२६२
सम्मान			• • •	•••	२७३
महत्त्व		•••	•••		२८०

यही एक ऐसी भाषा थी जिसे भारत के समस्त प्रान्तें के निवासी थोड़ा-बहुत समम सकते थे। भारतीय सुधारकी के पूर्ववर्ता व समकाजीन ईमाई मिशनरी भी इसी कारण हिन्दी में ही श्रपनी पुनवें छपाने थे और खारस्भ में सरकार ने भी हिन्दुस्तानियों ष्टीर गोगें में रहत-बहत बढ़ाने फे लिए हिन्दी का भी सहारा पकड़ा था। इन सब प्रचर्नों का सुपरिणाम, जो प्राय: पुगाहर न्याय से एका था, यह हुआ कि हिन्दी-भाषा का प्रचार जनता में पहले की व्यवेदा कुछ प्रधिक है। गया और भारतेन्द्र बायू हरिश्चन्द्र (संयन् १६०७-१६४१) अपंग वल-वल के नाथ हिन्ही-भाषा को श्रपनान का, श्रीर उसी में श्रपने भाव प्रकट करने का खादर्श जनता के मामने रख सके। इन लागों ने खँगरेजी खीर वॅगला ने प्रभावित होकर दिन्दीनाय में भी काफी सुभार किये धौर इन भाषात्रों के अनेक नाटकों और उपन्यासी का श्रनुवाद करके तथा श्रानेक मौलिक पुरवकें रचकर हिन्दी-भाषा की श्रीबृद्धि की । इँगला छौर श्राँगरेजी के साहचर्य्य के हो स्पष्ट प्रभाव हिन्टी गद्य पर पड़ —

(१) भाषा में शिष्टता श्रीर कांमलता श्रागई श्रीर उनकी व्यंजना-शक्ति यह गई।

(२) र्श्वंगरेजी के विराम-चिहों का थोड़ा-बहुत प्रयोग होने लगा।

इसका यह फल हुआ कि भाषा सफ्ट, मंगिटत और मुनभी हुई होगई। फिर भी भाषा में ज्याकरण्-सन्वन्धी दोष वने रहे श्रीर उसके रूप में भी काफी श्रस्थिरता और श्रसंयमता जलती रही।

पद्म

यह तो हुई गय की वात ! पय की दशा भी लगभग ऐसी ही थी; यदापि उसका कतेवर श्रपंताकृत अधिक उन्नति कर रहा

यही एक ऐसी भाषा थी जिसे भारत के समस्त प्रान्तों के निवासी थोड़ा-बहुत समम सक्ते थे। भारतीय सुधारकों के पूर्ववर्ती व समकातीन ईमाई गिरानरी भी इसी कारण हिन्दी में ही आपनी पुस्तकें छपाते थे। फीर फ्रारस्भ में सरकार ने भी हिन्हस्तानियों श्रीर गोरों में रहत-बच्न बढ़ाने के लिए हिन्ही का ही सहारा पकड़ा था । इन सब प्रचर्यों का सुपरिणाम, जो प्राय: गुणादर् न्याय से एका था, यह हुआ कि हिन्दी-भाषा का प्रचार जनता में पहने की व्यवेद्धा कुछ प्रधिक है। गया और भारतेन्द्र बाबू र्हारश्यन्त्र (संयन् १६०७-१६४१) अपमे वल-यल के नाथ हिन्ही-भाषा को श्रपनाने का, श्रीर उसी में श्रपने भाव प्रफट करने का श्रादर्श जनता के मामने रख सके। इन लोगों ने श्राँगरेकी श्रीर वँगला से प्रभावित होकर दिन्हीनाग में भी काफी सुभार किये और इन भाषाओं के अनेक नाटकों और उपन्यासों का अनुवाद करके नथा श्रानेक मौतिक पुरुषों रचकर हिन्दी-भाषा की श्रीबृद्धि की । बँगला छौर श्राँगरेजी के साहचर्य के दो सप्ट प्रभाव हिन्दी गद्य पर पर 🕂 —

(१) भाषा में शिष्टता खीर कोमलता खागई खीर उसकी

व्यंजना-शांकि वढ़ गर्ट ।

(२) श्राँगरेजी के विराम-चिहों का थोड़ा-बहुत प्रयोग होने लगा।

इसका यह फल हुआ कि भाषा सप्ट, संगठित और सुलभी हुई होगई । फिर भी भाषा में व्याकरण-सन्बन्धी दोष वने रहे श्रीर उनके रूप में भी काफी श्रस्थिरता श्रीर श्रसंयमता जलती रही।

प्रश

यह तो हुई गय की बात! पग की दशा भी लगभग ऐसी ही थी; यद्यपि उसका फ़लेबर श्रपंत्ताकृत श्रधिक उन्नति कर रहा

कहानियों का एक प्रकार से जन्म हो नहीं हुआ। था। नाटकें। का भी अभाव ही था। इसके सम्बन्ध में स्वयं द्विवेदी जी े ने अपने नाट्य-शास्त्र में (२४ नवम्बर सन १६१०) लिखा है— "हिन्दी बोलनेवाले, हम लोग, लाभदायक श्रीर उपयोगी विषयें। को नाटक के रूप में लाकर उनके द्वारा मनोरंजन करने की श्रोर बहुत ही कम ध्यान देते हैं। यदि कोई नाटक लिखता भी है तो वह प्रायः वेसिरपेर का लिखता है। भाषा ऐसी लचर कि उसके अभिनय की बात तो दूर रही, उसे पुस्तक ही में देखकर दुःव होता है।" पत्र-पत्रिकायें रोज निकलती और वन्द्र होती थीं। उनमें संपादक लोग प्रायः अपने हो लेख भरा करते थे। हाँ, कभी कभी कुछ तत्त्व-हीन छौर चारत्सी से भरे लेख भी प्रकाशित हो जाते थे। कुछ लोग समालोचना का नाम व्यवस्य सुन चुके थे, पर वे उसके वास्तविक अर्थ, उद्देश्य और आदर्श से अनिभज्ञ थे। उस समय हिन्दी के प्रमुख लेखकों ने श्रपने-श्रपने दल वना रक्खें थे, जिनमें 'परस्पर-प्रशंसा' की प्रवृत्ति बड़े जोरों पर थी। एक दलवाले दृसरे दल के लेखक की पुस्तक की बुरा अवश्य कहते थे, चाहे हृदेय में व उसे अच्छा ही मानते हों। उनकी समालोचना का लद्य लेखक होता था, पुस्तक नहीं। संचेप में उस समय न तो भाषा ही व्याकरण-सम्मत श्रीर सुब्यवस्थित हो पाई थी च्रीर न उसके साहित्य के किसी च्रंग को पूर्ति की छोर हो लेखकों का ध्यान गया था। इतिहास, थिज्ञान, समाजनीति, धर्मनीति, राजनीति और पुरातत्त्व श्रादि विषय साहित्य के श्रंतर्गत नहीं गिने जाते थे। लेखक प्रायः सभी निरंकुश थे। न उनकी कोई शैली थी, न प्रणाली।

उस समय भाषा की क्या दशा थी, इसका ठीक चित्र एक समाचार-पंत्र ने इन शब्दों में खींचा है—"उस समय हिन्दी हर तरह से दीन-हीन थी। उसके पास न अपना कोई इतिहास था,

कहानियों का एक प्रकार से जन्म ही नहीं हुआ था। नाटकों का भी अभाव ही था। इसके सम्बन्ध में स्वयं द्विवेदी जी े ने अपने नाट्य-शास्त्र में (२४ नवम्बर सन १६१०) लिखा है--"हिन्दी वोलनेवाले, हम लोग, लाभदायक श्रोर उपयोगी विषयेां की नाटक के रूप में लाकर उनके द्वारा मनोरंजन करने की श्रीर बहुत ही कम ध्यान देते हैं। यदि कोई नाटक लिखता भी है तो वह प्रायः वेसिरपेर का लिखता है। भाषा ऐसी लचर कि उसके अभिनय को बात तो दूर रही, उसे पुस्तक ही में देखकर दुःख होता है ।" पत्र-पत्रिकार्ये रोज निकलती स्त्रौर वन्द्र होती थीं । उनमें संपादक लोग प्रायः अपने हो लेख भरा करते थे। हाँ, कभी कभी कुद्र तत्त्व-हीन श्रोर चारलूसी से भरे लेख भी प्रकाशित हो जाते थे। कुंब्र लोग समालोचना का नाम व्यवस्य सुन चुके थे, पर वे उसके वास्तविक ऋर्थ, उद्देश्य और ऋादर्श से ऋनभिज्ञ थे। उस समय हिन्दी के प्रमुख लेखकों ने श्रपने-श्रपने दल बना रक्खे थे, जिनमें 'परस्पर-प्रशंसा' की प्रवृत्ति बड़े जोरों पर थी। एक दलवाले दूसरे दल के लेखक की पुस्तक की दुरा अवश्य कहते थे, चाहे हृदय में व उसे अच्छा ही मानते हों। उनकी समालोचना का लच्य लेखक होता था, पुस्तक नहीं। संचेप में उस समय न तो भाषा ही व्याकरण-सम्मत श्रीर सुत्र्यवस्थित हो पाई थी छोर न उसके साहित्य के किसी छांग को पूर्ति को त्रोर हो लेखकों का ध्यान गया था। इतिहास, विज्ञान, समाजनीति, धर्मनीति, राजनीति स्रोर पुरातत्त्व स्रादि विषय साहित्य के त्र्यंतर्गत नहीं गिने जाते थे। लेखक प्रायः सभी निरंकुश थे। न उनकी कोई शैली थी, न प्रणाली।

उस समय भाषा की क्या दशा थी, इसका ठीक चित्र एक समाचार-पंत्र ने इन शब्दों में खींचा है—"उस समय हिन्दी हर तरह से दीन-हीन थी। उसके पास न अपना कोई इतिहास था,

जन्म, शिक्षा ख्रीर साहित्य-प्रवेश

"जिस व्यक्ति ने वीस वर्षी' तक लगातार दस करोड़ हिन्दी-भाषी जनता का माहित्यिक अनुशासन किया वह वैसवाई की देहात का रहनेवाला एक सामान्य श्रेणी का ब्राह्मण था । अवध की नवाबी के पर्यवसान के बाद उसी प्रान्त के दौलतपुर नामक निर्धन त्राम में उसका जन्म हुआ था। श्रवध—जिस प्रदेश का वह निवासी:था-उस समय तक उजड़कर निरज्ञरता श्रौर दरिद्रता का केन्द्र वन चुका था। किन्तु प्राचीन स्मृतियाँ लुप्र नहीं होती, खतः प्राचीन संस्कार भी सुयोग पाकर कभी पुनर्जन्म ले लेते हैं। गङ्गा को जो धारा कमी अपनो वीचि-रचना के उपलद्य में बाल्मोकि के कवि कएड का सुवर्णदार प्रका करती होगी वह आज भी दौलतपुर के समीप से ही बहती है। वे श्राम्र-कानन जो निद्रागत पथिकों के मुखों में भी मधुर रस डालंते थे, त्राज भी दीलतपुर के त्रास-पास त्रपना वहीं उप-हार लिये हुए खंड़ हैं। इन्हीं श्राम्र-काननों के परिपूर्ण यौवन के समय माध्य मास में इला याम के एक कान्यकुटन-कुल में शिशु महाबीरप्रसाद ने सन् १८६४ ई० (सं० १६२१ वैशाख शुक्ल ४) को जन्म लिया। प्रसृतिगृह में उसकी जिह्या पर सरस्वती का वीजमन्त्र त्रांकित कर दिया गया। मंत्र-विद्या सत्य सिद्ध हुई।"

द्विवेदी जी के पितामह संस्कृत के भारी विद्वान थे; पर असमय में ही देहात्रसान हो जाने से वे अपने पुत्रों को कुछ पढ़ा-लिखा नहीं सके थे; जिससे द्विवेदी जी के पिता

जन्म, शिक्षा ऋीर साहित्य-प्रवेश

"जिस व्यक्ति ने चीस वर्षी' तक लगातार दस करोड़ हिन्दी-भाषी जनना का माहित्यिक अनुशामन किया वह वैसवाई की देहात का रहनेवाला एक सामान्य श्रेणी का ब्राह्मण था । अवध की नवाबी के पर्यवसान के बाद उसी प्रान्त के दौलतपुर नामक निर्धन ग्राम में उसका जन्म हुत्रा था। श्रवध—जिस प्रदेश का वह निवासी:था—उस समय तक उजड़कर निरन्तरता श्रौर दरिद्रता का केन्द्र वन चुका था। किन्तु प्राचीन स्मृतियाँ लुप्र नहीं होती, श्रतः प्राचीन संस्कार भी सुयोग पाकर कभी पुनर्जन्म ले लेते हैं। गङ्गा की जो धारा कमी अपनो वीचि-रचना के उपलब्य में वाल्मोकि के कवि कएड का सुवर्णहार प्राप्त करती होगी वह आज भी दौलतपुर के समीप से ही बहती है। वे श्राम्र-कानन जो निद्रागत पथिकों के मुखों में भी मधुर रस खालते थे, त्राज भी दीलतपुर के श्रास-पाम श्रपना वहीं उप-हार लिये हुए खड़े हैं । इन्हीं श्राम्र-काननों के परिपूर्ण यौवन के समय माधव मास में इला श्राम के एक कान्यकुन्ज-कुल में शिश् महावीरप्रसाद ने सन् १⊏६४ ई० (सं० १६२१ वैशाख शुक्ल ४) को जन्म लिया। प्रसृतिगृह में उसकी जिह्या पर सरस्वती का वीजमन्त्र त्रांकित कर दिया गया। मंत्र-विद्या सत्य सिद्ध हुई।"

द्विवेदी जी के पितामह संस्कृत के भारी 'विद्वान् थे; पर असमय में ही देहात्रसान हो जाने 'से वे अपने पुत्रों को कुळ पढ़ा-लिखा नहीं सके थे; जिससे द्विवेदी जी के पिता उधर बहुत चकर लगाने पड़े और समय-समय पर वरवई, नाग-पुर, अनुमेर और भाँसी में रहना पड़ा। हरदा, खंडवा, होशंगावाद और इटारसी में कम-क्षम से इनकी पदोन्नित होनी रही। प्रवीणता के कारण तत्कालीन आई० एम० आर० (इंडियन मिडिलेंड रेलवे) के ट्रैफ़िक मेनेजर श्री डक्ल्यू० बी० राइट ने इन्हें टेलीयाफ इन्स्पेक्टर बनाकर भाँसी भेज दिया। इन्होंने वहाँ नई तरह का एक लाइन-क्रियर ईजाद करके अपनी अनोखी प्रतिभा का परिचय दिया। इसके वाद इन्होंने तारवर्की पर एक पुस्तक भी अँगरेजी में लिखी। इन दिनों कानपुर से इटारसी और आगरा से मानिकपुर तक की पूरी लाइन का तार-संबंधी काम ये देखते थे।

रेलवे में नौकरी करते हुए भी इनका अध्ययन वरावर जारी रहा। वंगालियों के साथ रहते हुए भाँसी में इन्होंने वँगला सीखी और इस प्रकार वे कई भाषाओं के जानकार हो गये।

साहित्य की ओर द्विवेदी जी का मुकाव आरंभ से ही था वे परिडतों के गाँव के थे और सा भी उस गाँव के, जहाँ सुखदेव मिश्र जैसे रस-सिद्ध कि रह चुके थे। मिश्र जी की किवताओं का प्रभाव द्विवेदी जी के बचपन तक उनके गाँव में ख़ब फैला हुआ था। इसके अतिरिक्त पंडित प्रतापनारायण मिश्र भी वैसवाड़े के ही थे और सज्जनकीर्ति-सुधाकर के सम्पादक पंडित वंशीधर वाजपेयी तो द्विवेदी जी के पड़ोसी ही थे। बंबई

^{*&#}x27;'उस समय भला यह कोंन जानता था कि एक दिन ये हिन्दीसाहित्य में भी नई तरह का लाइन छियर ईजाद करके सदेन के लिए अपने भक्तों के हृदयों में बसर नायोंगे।''

^{· †} इस वार्युमंडल का श्रसर दिवेदी नी पर पड़ हो चुका था।

उधर बहुत चक्कर लगाने पड़े और समय-समय पर वग्वई, नाग-पुर, अज़मेर और फाँसी में रहना पड़ा। हरदा, खंडवा, होशंगावाद और इटारसी में क्रम-क्रम से इनकी पदोन्नित होती रही। प्रवीणता के कारण तत्कालीन आई० एम० आर० (इंडियन मिडिलेंड रेलवे) के ट्रैफिक मैनेजर श्री डव्ल्यू० वी० राइट ने इन्हें टेलीयाफ इन्स्पेक्टर बनाकर माँसी भेज दिया। इन्होंने वहाँ नई तरह का एक लाइन-क्रियर ईजाद करके अपनी अनोखी प्रतिभा का परिचय दिया। इसके वाद इन्होंने तारवर्की पर एक पुस्तक भी अँगरेजी में लिखी। इन दिनों कानपुर से इटारसी और आगरा से मानिकपुर तक की पूरी लाइन का तार-संबंधी काम ये देखते थे।

रेलवे में नौकरी करते हुए भी इनका अध्ययन वरावर जारी रहा। वंगालियों के साथ रहते हुए भाँसी में इन्होंने वँगला सीखी और इस प्रकार वे कई भाषाओं के जानकार हो गये।

साहित्य की श्रोर द्विवेदी जी का मुकाव श्रारंभ से ही था वे पिएडतों के गाँव के थे श्रीर से। भी उस गाँव के, जहाँ सुखदेव मिश्र जैसे रस-सिद्ध किं रह चुके थे। मिश्र जी की किंवताश्रों का प्रभाव द्विवेदी जी के वचपन तक उनके गाँव में खूब फैला हुआ था। इसके श्रितिरिक्त पंडित प्रतापनारायण मिश्र भी वैसवाड़े के ही थे श्रीर सज्जनकीर्ति-सुधाकर के सम्पादक पंडित वंशीधर वाजपेयी तो द्विवेदी जी के पड़ोसी ही थे। वंबई

^{*&#}x27; उस समय मला यह कौन जानता था कि एक दिन ये हिन्दीसाहित्य में भी नई तरह का लाइन क्वियर ईजाद करके सटेन के लिए अपने मक्तों के हृदयों में बस-जायेंगे।''

^{· †} इस वार्युमंडल का श्रसर द्विवेदी नी पर पड़ हो चुका था।

लगी थीं। द्विवेदी जी उस ममय तक हिन्दी के अच्छे लेखक माने जा चुके थे। सरस्वती के ४-६ अंक प्रकाशित हो जाने पर भी जब उन्होंने उसके लिए कोई लेख न भेजा तब उसके प्रधान सम्पादक बाबू कार्तिकप्रसाद ने उनके पास यह पत्र लिखा—

> सरस्वती-संपादक-समिति-कार्यालय गढ़वासी टोला, वनारस सिटी, २६-६-९६००

महाशय,

अभी तक आपने अपने किसी लेख से 'सरस्वती' को भूपित नहीं किया जिसके लिये सरस्वती की प्रार्थना है कि शींघ उसकी सुधि लीजिये।

त्रापका— कार्तिकप्रसाद

द्विवेदी जी ही नहीं, द्विवेदी जी का भाग्य भी 'सरस्वती' की सुधि लेने के लिए ज्वावला वेठा था। धीरे-धीरे उसमें इनके 'लेख और कविवायें प्रकाशित होने लगीं और 'सरस्वती' से उनका सम्बन्ध बढ़ने लगा। उस समय वे फाँसी में डी० टी० एस० (डिस्ट्रिक्ट ट्रैफ़िक सुपरिटेंडेंट) के आफ़िस में चीफ कर्क थे। इसी। सिलसिले में उनका परिचय एक ऐसे महापुरुष से हुआ जिनके सम्पर्क और सहयोग ने द्विवेदी जी के जीवन की दिशा ही बदल दी। ये थे इंडियन प्रेम के स्वामी। वाव चिन्तामणि घोष।

लगी थी। द्विवेदी जी उस ममय तक हिन्दी के अच्छे लेखक माने जा चुके थे। सरस्वती के ४-६ अंक प्रकाशित हो जाने पर भी जब उन्होंने उसके लिए कोई लेख न भेजा तब उसके प्रधान सम्पादक बाबू कार्तिकप्रसाद ने उनके पास यह पत्र लिखा—

> सरस्वती-संपादक-समिति-कार्यालय गढ़वासी टोला, वनारस सिटी, २६-६-१६००

महाशय,

त्रभी तक त्रापने त्रपने किसी लेख से 'सरस्वती' को भूपित नहीं किया जिसके लिये सरस्वती की प्रार्थना है कि शीघ उसकी सुधि लीजिये।

त्र्यापका— कार्तिकप्रसाद

द्विवेदी जी ही नहीं, द्विवेदी जी का भाग्य भी 'सरस्वती' की सुधि लेने के लिए उतावला वैठा था। धीरे-धीरे उसमें इनके 'लेख और कंवितायें प्रकाशित होने लगीं और 'सरस्वती' से उनका सम्बन्ध वढ़ने लगा। उस समय वे भाँसी में डी० टी० एस० (डिस्ट्रिक्ट ट्रैफ़िक सुपिरेटेंडेंट) के आफ़िस में चीफ़ क्रक थे।

इसी। सिलसिले में उनका परिचय एक ऐसे महापुरुष से हुआ जिनके सम्पर्क और सहयोग ने द्विवेदी जी के जीवन की दिशा ही बदल दी। ये थे इंडियन प्रेस के स्वामी वाव चिन्सामणि घोष। विषय में पूछ-ताँछ करते थे। फिर कुछ गुजराती, वँगला, संस्कृत-पत्रिकाओं का अवलोकन करते और उसके वाद थोड़ी देर ख़ुद भी लिखते तथा 'सरस्वती' के लेखों का संपादन करते। १० वजे के करीब भोजन करके दक्षर जाते। वहाँ जो सिर भुकाया तो १ वजे तक ढेर की ढेर फाइलों को साफ करके तब २ वजे के करीब उठकर कुछ जलपान किया करते। लौटकर आँगरेजी अखबार अवलोकन करते और जो काम आता जाता उसे समाप्त करते। चार-पाँच वजे के क़रीब घर आकर हाथ-मुँह धोकर कपड़े बदलकर दरवाजे पर बैठ जाते। जो लोग आते उनसे वार्तालाप होता। किसी को नेक सलाह देना, किसी की जरूरत पूरी कराने की चिन्ता करना—घंटे डेढ़ घंटे यही दिलबहलाब होता। इसके बाद फिर किताबों का अवलोकन करके ६-१० वजे तक विस्तर पर चले जाते।

इन्हीं दिनों एक ऐसी घटना हो गई जिसने द्विवेदी जी को पूर्णतया साहित्य के त्रेत्र में लाकर रख दिया। पुराने डी॰ टी॰ एस॰ (डिस्ट्रिक्ट ट्रेफिक सुपिटेंडेंट) की वदली होने पर उनकी जगह जो नये साहव आये उनसे और द्विवेदी जी से एक दिन कहा-सुनी हो गई। स्वाभिमानी तो द्विवेदी जी थे ही; आपने रेलवे की १४०) की नौकरी पर लात मार दी और आकर कानपुर के पास जुही में रहने लगे और वहीं से 'सरस्वती' का संपादन करने लगे।

विषय में पूछ-ताँछ करते थे। फिर कुछ गुजराती, वँगला, संस्कृत-पत्रिकाओं का अवलोकन करते और उसके वाद थोड़ी देर खुद भी लिखते तथा 'सरस्वती' के लेखों का संपादन करते। १० वजे के क़रीब भोजन करके दक़र जाते। वहाँ जो सिर भुकाया तो १ वजे तक ढेर की ढेर फाइलों को साफ करके तब २ वजे के क़रीब उठकर कुछ जलपान किया करते। लौटकर अँगरेजी अख़बार अवलोकन करते और जो काम आता जाता उसे समाप्त करते। चार-पाँच वजे के क़रीब घर आकर हाथ-मुँह धोकर कपड़े बदलकर दरवाजे पर बैठ जाते। जो लोग आते उनसे वार्तालाप होता। किसी को नेक सलाह देना, किसी की जरूरत पूरी कराने की चिन्ता करना—घंटे डेढ़ घंटे यही दिलबहलाब होता। इसके बाद फिर किताबों का अवलोकन करके ६-१० बजे तक विस्तर पर चले जाते।

इन्हीं दिनों एक ऐसी घटना हो गई जिसने द्विवेदी जी को पूर्णतया साहित्य के चेत्र में लाकर रख दिया। पुराने डी० टी० एस० (डिस्ट्रिक्ट ट्रेफ़िक सुपिटेंडेंडेंट) की वदली होने पर उनकी जगह जो नये साहव आये उनसे और द्विवेदी जी से एक दिन कहा-सुनी हो गई। स्वाभिमानी तो द्विवेदी जी थे ही; आपने रेलवे की १४०) की नौकरी पर लात मार दी और आकर कानपुर के पास जुही में रहने लगे और वहीं से 'सरस्वती' का संपादन करने लगे।

सुधा' के। ही प्रसिद्धि मिली। सरकार ने भी धन और पद हारा भारतेन्द्र की सेवाओं का मान किया। परन्तु जब बाबू हरिहणन्ह राजनीतिक गामलों में टीका-टिप्पणी फरने लगे नव सरकार ने सहायता बन्द कर दी। 'ख्रभिमानी हरिलान्द्र' इससे ह्वोत्साह नहीं हुए खोर 'कविबचन-सुधा' को सुद्ध समय तक प्रकाशित करते रहे। सन १८८४ में यह पत्रिका भी बन्द हो गई।

भागतेन्द्र हरिश्चन्द्र के पित्रका-प्रकाशन-सम्बन्धी इस सद्योग का एक सहस्वपूर्ण परिणाम यह दृखा कि हिन्दी के लेग्यकों का एक अन्छा सङ्ग स्थापित हो गया। भागतेन्द्र की हदना और उनके स्थाभिमान ने उन लेखकों के हद्द्य में हिन्दी-भाषा के प्रति प्रेम उत्पन्न कर दिया। खतः इन लेखकों को भी पत्र-पत्रिकार्ये निकालने का शीक हुआ और भारतेन्द्र के जीवन-काल में ही हिन्दी में २०-२४ पत्र प्रकाशित होने लगे। इनमें से कुछ पत्र-पत्रिकार्यो और उनके संपादकों के नाम इस प्रकार हैं—

पत्र-पत्रिका का नाम	स्याः	प	संपादक	म्थान
(१) श्रलमोड़ा-श्रखवार	सन	१८७१	श्री सदानंद	मालबीय, श्रनमोडा
(२) हिंदी-दीप्ति-प्रकारा	••	?=s=	्,, कार्तिकप्रस	द खबी
(३) विहार-बंधु	33	१८५२	्,, केशवराम भ	ब्हु, विहार
(४) मदादर्श	1)	१८७४	्,, निवासदार	
(४) काशी-पत्रिका	77	१८७६	्र, लद्दगीशंकर	
			गम०	ए०, काशी
(६) भारत-बंधु	,, ,	१८७६	,, तोताराम,	श्रलीगढ़
(७) भारत-मित्र	55	१५७७	,, रुद्रदत्त,	कलकत्ता
(二) मित्र-विलास	"	",	,, कन्हेयालार	त, लाहार

सुधा' के। ही प्रसिद्धि मिली । सरकार ने भी धन और पट्टारा भारतेन्द्र की सेवाश्रों का मान किया । परन्तु जब बाबू हरिहनन्ह राजनैतिक गामलों में टीका-टिप्पणी करने लगे नव मरकार ने सहायता बन्द कर दी। 'श्रभिमानी हरिचन्द' इससे ह्नोत्साह नहीं हुए श्रीर 'कविवचन-सुभा' को गुह्र समय तक प्रकाशित करते रहे। सन १८८४ में यह पत्रिका भी बन्द हो गई।

भारतेन्द्र हरिर्चन्द्र के पत्रिका-प्रकाशन-सम्बन्धी इस सद्योग का एक महत्त्वपूर्ण परिगाम यह हुया कि हिन्दी के लेखकी का एक श्रन्छाः सङ्घ स्थापित हो गया । भारतेन्द्रु की हङ्गा श्रीर उनके स्वाभिमान ने उन लेखकों के हृदय में हिन्दी-भाषा के प्रति प्रेम उत्पन्न कर दिया। अतः इन लेखकों का भी पत्र-पत्रिकार्ये निकालने का शीक हुआ। और भारतेन्दु के जीवन-काल में ही हिन्ही में २०-२४ पत्र प्रकाशित होने लगे। इनमें से कुछ पत्र-पत्रिकार्थी श्रीर उनके संपादकों के नाम इस प्रकार हें—

पत्र-पत्रिका का नाम	स्याः	प	संपादक	म्थान
(१) श्रलमोड़ा-श्रखवार	मन	१८७१	श्री सदानंद	_ ′
(२) हिंदी-दीमि-प्रकारा	••	१न्द्रम्	,, कार्तिकप्रस	श्रलमोड़ा गद् स्वत्री
(३) विहार-बंधु	33	१८५२	ु, केशवराम	भट्ट, विहार
(४) मदादर्श	1)	१८७४	्,, निवासदार	
(४) काशी-पत्रिका	21	१८७६	्,, लच्मीशंक	ए मिश्र,
			गम०	ए०, काशी
(६) भारत-बंधु	"	१८७६	्र, तोताराम,	श्रलीगढ़
(७) भारत-मित्र		१५७७	,, रुद्रदत्त,	कलकत्ता
(=) मित्र-विलास	"	",	,, कन्हेयाला	ल, लाहार

त्र्यादि त्र्यतेक पत्र श्रीर भी निकल्ते थे। पर इनमें से अधिकांश शीव ही बंद हो गये।

इन पत्र-पित्रकार्त्रों के प्रकाशित होने से इतना लाभ अवश्य दुश्चा कि लोग हिन्दी की सेवा की श्रीर ध्यान देने लगे। परन्तु भारतेन्द्र-सरीखे उत्साही लेखकों के परचान हिन्दी की दशा किर डावाँडोल है। चला। लोग उर्द् को श्रयनाने लगे; उसी की पुस्तकें खपती श्रीर विकती थीं—िहन्दी की कभी एक श्राध पुस्तक छप गई तो छप गई। एक चार किसी ने स्वर्गीय राथ बहादुर लाला बैजनाथ से पृद्धा था—श्राप हिन्दी नो गृद्ध लिख सकते हैं। किर श्रपनी पुस्तकें श्रिकितर, उर्दू में ही क्यों छपवाते हैं। उन्होंने उत्तर दिया—िहन्दी की पुरतकों की कोई बात भी पृद्धता है। 'धिचवा-विवाह' पर लिखी हुई हिन्दी की मेरी पुस्तक की प्रतियाँ श्राज भी मेरे पास पड़ी हुई हैं, पर उनका जो उत्था उर्दू में निकला था उसका दूसरा संस्करण भी प्रकाशित है। चुका है।

हिन्दी के लिए वास्तव में यह वड़े संकट का समय था; पर भाग्य ने साथ दिया। सन् १८६३ में कुछ हिन्दी-अप्तयों ने, जिनमें वाबू स्यामसुन्दरदास श्रीर पंडित रामनारायण मिश्र मुख्य थे. काशी में नागरी-प्रचारिणी सभा की स्थानना की। इस संस्था ने हिन्दी-प्रचार का कार्य वड़े जोर से करना श्रारंभ किया; शीव्र ही बहुत से पढ़े-लिखे लोग इसके कार्यों की प्रशंसा करने लगे। इस संस्था के कार्य-कत्तांश्रों के प्रयक्त करने पर सन् १६०० में सरकारी कचहरियां में नागरी का प्रवेश हो गया।

इसी साल इंडियन प्रेस के स्वामी स्वर्गीय बाबू चिन्तामीए घोप ने 'सरस्वती' नाम की पत्रिका के। काशी की नागरी-प्रचारिणी सभा के अनुमोदन से जन्म दिया। इस पत्रिका का पहला श्रंक फा॰ २ श्रादि श्रतेक पत्र श्रीर भी निकल्ते थे। पर इनमें से अधिकांश शीव ही बंद है। गरे।

इन पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशित होने से इतना लाभ अवश्य हुआ कि लोग हिन्दी की सेवा की खोर ध्यान देने लगे। परन्तु भारतेन्द्र-सर्राखे उत्साही लेखकों के परचान् हिन्दी की दशा फिर डावाँडोल हो चला। लोग उर्द् को अपनाने लगे; उसी की पुस्तकें खपती खोर विकती थीं—िहन्दी की कभी एक-आध पुस्तक छप गई तो छप गई। एक बार किसी ने स्वर्गीय राथ बहादुर लाला वैजनाथ से पूछा था—आप हिन्दी नो . गृब लिख सकते हैं। फिर अपनी पुस्तकें अधिकतर उर्दू में ही क्यों छपवाते हैं? उन्होंने उत्तर दिया—िहन्दी की पुस्तकों की कोई बात भी पूछता है? 'विधवा-िववाह' पर लिखी हुई हिन्दी की सेरी पुस्तक की प्रतियाँ आज भी मेरे पास पड़ी हुई हैं, पर उनका जो उल्था उर्दू में निकला था उसका दूसरा संस्करण भी प्रकाशित है। चुका है।

हिन्दी के लिए चास्तव में यह बड़े संकट का समय था; पर भाग्य ने साथ दिया। सन् १८६३ में कुछ हिन्दी-अपयों ने, जिनमें बावू स्थामसुन्द्रदास और पंडित रामनारायण मिश्र मुख्य थे. काशी में नागरी-प्रचारिणी सभा की स्थापना की। इस संस्था ने हिन्दी-प्रचार का कार्य बड़े जोर से करना आरंभ किया; शीब ही बहुत से पढ़े-लिखे लोग इसके कार्यों की प्रशंसा करने लगे। इस संस्था के कार्य-कर्जायों के प्रयत्न करने पर सन् १६०० में सरकारी कचहरियों में नागरी का प्रवेश है। गया।

इसी साल इंडियन प्रेस के स्वामी स्वर्गीय वाबू चिन्तामीए घोष ने 'सरस्वती' नाम की पत्रिका की काशी की नागरी-प्रचारिणी सभा के अनुमोदन से जन्म दिया। इस पत्रिका का पहला अंक फा॰ २

'सरस्वती' में विविध विषय

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के समय में पत्र-पित्रकाओं में प्रायः एक ही विषय की प्रधानता रहती थी। स्वयं भारतेन्द्र जी की किव-वचन-सुधा' में प्राचीन किवयों का काव्य ही प्रकाशित होता था। देव का 'अष्ट्रयाम', चन्द्र का 'रासो', जायसी का 'पद्मावत', कवीर की साखियाँ, विहारी के होहे आदि के ही प्रकाशन की ओर लोग दत्तचित्त थे। पर शीघ ही इस प्रथा का अंत हो गया। 'किव-चचन-सुधा' पात्तिक होकर साप्ताहिक हो गई; 'हरिश्चन्द्र-मैगजीन' भी निकली। धीरेधीरे इनमें समाज-नीति और धर्म-नीति पर भी लेख निकलने लगे। भारतेन्द्र जी का, कालान्तर में, ध्यान देश की दशा की ओर गया। अतः राजनीति पर भी लेख निकलने आरम्भ हुए। उनका सिद्धान्त-वाक्य यह था—

खल गगन सें सज्जन दुखी मित होहि, हिर पद मित रहै। श्रपधर्म छूटै स्वत्व निज भारत गहै कर-दुख वहें॥ खुध तजहिं मत्सर, नारि-नर सम होंहि जग श्रानंद ल हैं। तिज झाम कविता सुकविजन की श्रमृत-वानी सव कहै॥

इन पंक्तियों के रेखांकित भागों पर ग़ौर करने से विदित होता है कि भारतेन्दु जी के इस सिद्धान्त में राजनीति, समाज-नीति, धर्मनीति, सबकी चिन्ता है। वे शिक्तित समाज, श्रॅगरेज-शासकों श्रौर पुरानी लकीर के फ़क़ीरों पर भी निडर होकर साफ़-साफ़ छींटे फेंका करते थे। 'हरिश्चन्द्र मैगजीत' में भारतेन्दु का 'पाँचवें पैग़म्बर', श्री ज्वालाप्रसाद की

'सरस्वती' में विविध विषय

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के समय में पत्र-पत्रिकाओं में प्राय: एक ही विषय की प्रधानता रहती थी। स्तर्य भारतेन्द्र जी की किव-वचन-सुधा' में प्राचीन किवयों का काव्र्य ही प्रकाशित होता था। देन का 'अष्ट्रयाम', चन्द्र का 'रासो', जायसी का 'पद्मावत', कवीर की साखियाँ, विहारी के दोहे आदि के ही प्रकाशन की ओर लोग दत्तचित्त थे। पर शीव्र ही इस प्रधा का अंत हो गया। 'किव-वचन-सुधा' पाद्मिक होकर साप्ताहिक हो गई; 'हरिश्चन्द्र-मैगजीन' भी निकली। धीरेधीरे इनमें समाज-नीति और धर्म-नीति पर भी लेख निकलने लगे। भारतेन्द्र जी का, कालान्तर में, ध्यान देश की दशा की ओर गया। अतः राजनीति पर भी लेख निकलने आरम्भ हुए। उनका सिद्धान्त-वाक्य यह था—

स्रल गगन सेंा सउनन दुखी मित होहि, हिर पद मित रहै। अपधमें छूटै स्वत्व निज भारत गहै कर-दुख वहै॥ बुध तनिहें मत्सर, नारि-नर सम होंहि जग आनंद ल हैं। तिज आम कविता सुकविजन की अमृत-वानी सव कहै॥

इन पंक्तियों के रेखांकित भागों पर ग़ौर करने से विदित होता है कि भारतेन्द्र जी के इस सिद्धान्त में राजनीति, समाज-नीति, धर्मनीति, सबकी चिन्ता है। वे शिक्तित समाज, ऋँगरेज-शासकों और पुरानी लकीर के फ़क़ीरों पर भी निडर होकर साफ़-साफ़ छींटे फेंका करते थे। 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' में भारतेन्द्र का 'पाँचवें पैग़म्बर', श्री ज्वालाप्रसाद की उक्तदोनों पत्रिकाओं के वाद परिडत प्रतापनारायण मिश्र के 'त्राह्मए' और वालकृष्ण भट्ट के 'हिन्दी-प्रदीप' का नंबर आता है। मिश्र जी ने अपने 'त्राह्मए' का उद्देश 'हमारी आवश्यकता' शीर्षक लेख में इस प्रकार लिखा है—

"जी बहुलाने के लेख हमारे पाठकों ने । यहुतः से पढ़ लिये। यद्यपि इनमें भी बहुत सी समयो प्योगी शिचा रहती है, पर वाग्-जाल में फँसी हुई हुँद निकालने-योग्यः अतः अब हमारा विचार है कि कभी कभी ऐसी बातें भी लिखा करें जो इस काल के लिए प्रयोजनीय हों तथा हास्पपूर्ण न हो के सीधी सीधी भाषा में हों। हमारे पाठकों का काम है कि उन्हें नीरस समम के छोड़ न दिया करें, तथा केवल पढ़ हो न हाला करें, बरंच उन के लिए तन से धन, से, इन्छ न हो सके तो वचन ही से यथावकाश इन्छ करते भी रहें।"

मिश्र जी के इस कथन से सप्ट होता है कि साहित्य-सेवा के साथ-साथ 'ब्राह्मण' का उद्देश्य जन-साधारण की प्रवृत्ति को हिंदी की छोर आकर्षित करना था। मिश्र जी साहित्यिक उत्थान के साथ-साथ तत्कालीन सामाजिक कुरीतियों का निवा-रण भी चाहते थे। उन्होंने अनेक लेखों में समाज के दोपों का उल्लेख भी किया।

इसके विपरीत भट्ट जी का 'हिंदी-प्रदीप' एक साहित्यिक पत्र था उसमें कभी-कभी राजनीति के लेख भी छपा करते थे। हाँ, सामाजिक लेख कुछ कम होते थे। यह पत्र लगभग ३० वर्ष तक निकलता रहा। इसकी साहित्यिक सेवाओं के विषय में भट्ट जी ने स्वयं ही लिखा हैं:—

"इन बत्तीस साज की जिल्दों में कितने ही उत्तमोत्तम उपन्याप, नाटक, तथा श्रन्यान्य प्रबन्ध भरे पड़े हैं। वे यदि पुस्तकाकार छपा उक्तदोनों पत्रिकात्रों के वाद पिएडत प्रतापनारायण मिश्र के 'त्राह्मए' और वालकृष्ण भट्ट के 'हिन्दी-प्रदीप' का नंबर आता है। मिश्र जी ने अपने 'त्राह्मण' का उद्देश 'हमारी आवश्यकता' शीर्षक लेख में इस प्रकार लिखा है—

"जी बहलाने के लेख हमारे पाठकों ने | बहुन से पढ़ लिये। यद्यपि इनमें भी बहुत सी समयो प्योगी शिला रहती है, पर वाग्-जाल में फँसी हुई हुँद निकालने योग्य; यतः यत्र हमारा विचार है कि कभी कभी ऐसी बातें भी लिखा करें जो इस काल के लिए प्रयोजनीय हों तथा हास्पप्ण न है। के सीधी सीधी भाषा में हों। हमारे पाठकों का काम है कि उन्हें नीरस समम के छोड़ न दिया करें, तथा केवल पड़ ही न ढाला करें, बरंच उन के लिए तन से धन, से, कुछ न हो सके तो वचन ही से यथावकाश कुछ करते भी रहें।"

मिश्र जी के इस कथन से स्पष्ट होता है कि साहित्य-सेवा के साथ-साथ 'त्राह्मण' का उद्देश्य जन-साधारण की प्रवृत्ति को हिंदी की खोर खाकर्षित करना था। मिश्र जी साहित्यिक उत्थान के साथ-साथ तत्कालीन सामाजिक क्ररीतियों का निवा-रण भी चाहते थे। उन्होंने खनेक लेखों में समाज के दोपों का उल्लेख भी किया।

इसके विपरीत भट्ट जी का 'हिंदी-प्रदीप' एक साहित्यिक पत्र था उसमें कभी-कभी राजनीति के लेख भी छपा करते थे। हाँ, सामाजिक लेख कुछ कम होते थे। यह पत्र लगभग ३० वर्ष तक निकलता रहा। इसकी साहित्यिक सेवाओं के विषय में भट्ट जी ने स्वयं ही लिखा है:—

''इन बत्तीस साज की जिल्दों में कितने ही उत्तमोत्तम उपन्याप, नाटक, तथा श्रन्थान्य प्रबन्ध भरे पड़े हैं। वे यदि पुस्तकाकार खपा

श्रुँगरेजी, उर्दू, संस्कृत, फ़ारसी, श्रादि की श्रुनिवाय शिज्ञा से शिक्तित होकर निकल रहे थे; और कालेजों में तो शास्त्र इतने पढ़ाये जा रहे थे जितने स्वयं शुकदेव जी ने भी र पढ़े होंगे। यद्यपि यह बहुत ही जिल्ली शिचा थी, परन्तु इससे जिस एकमात्र उत्कृष्ट वृत्ति का विकास हुआ वह थी परिचय की वृत्ति । उस परिचय में पांडित्य चाहे न हो, परन्तु एक अभिन ज्ञता जो कभी व्यर्थ नहीं जाती, संचित की गई थी। उस समय यह परिवय की आकांजा समाज में सर्वत्र हें ही जाती थी; अतः उसकी वृत्ति का भी विधान होने लगा। जो पत्र-पत्रिकार्ये ऋँगरेजी में निकली उनमें यद्यपि आवश्यक विषयु-वैचित्र्य था, किन्तु जनता तक उनकी पहुँच नहीं थी।" द्विवेदी जी को यह कमी बहुत अखरती थी। अब 'अरखती'-द्वारा उन्होंने इस कमी को पूरा करने का निश्चय किया। उद्देश्य की पूर्ति में एक वाथा यह थी कि जनता में पढ़ने का शौक बहुत ही कम था। अतः उन्होंने पहले अपने पाठकों की रुचि को हिंदीसाहित्य की ओर आकर्षित करने की चेष्टा की। 'सरस्वती' के एक अंक में उन्होंने लिखा-

''लेखों से 'सरस्वती' की सहायता करनेवाले सञ्जनों से प्रार्थना है कि अब वे अपने लेखों की पहले की अपेना अधिक रावक जनाने की कृपा करें।''

उत्र हम लिख चुके हैं कि पण्डित प्रतापनारायण मिश्र ने भी एक बार अपने लेखकों से ऐसी ही प्रार्थना की थी। पर परिस्थिति ने उनका साथ न दिया और उन्हें 'ब्राह्मण' को शीब ही बन्द कर देना पड़ा। द्विवेदी जी इसे देख चुके थे, इसलिए सावधान थे। शीब ही उन्होंने अपने लेखकों और पाठकों को अधिक गंभीर और ठोस लेखों के प्रति अभिरुचि बढ़ाने के लिए उत्साहित किया और बढ़ती हुई नवीन शिचा द्वारा शिचित नवयुवक पाठकों की

अँगरेजी, उदू, संस्कृत, फ़ारसी, आदि की अनिवार्य शिज्ञा से शिचित होकर निकृत रहे थे; और कालेजों में तो शास्त्र इतने पदाये जा रहे थे जितने स्वयं शुकदेव जी ने भी न पढ़े होंगे। यद्यपि यह वहुत ही अञ्चली शिचा थी, परन्तु इससे जिस एकमात्र उत्कृष्ट वृत्ति का विकास हुआ वह थी परिचय की वृत्ति । उस परिचय में पांडित्य चाहे न हो, परन्तु एक ऋभिन इता जो कभी व्यर्थ नहीं जाती, संचित की गई थी। उस समय यह परिचय की त्राकांज्ञा समाज में सर्वत्र देखी जाती थी; त्रतः उसकी वृत्ति का भी विधान होने लगा। जो पत्र-पत्रिकायें ऋँगरेजी में निकली उनमें यद्यपि ऋावश्यक विषयु-वैचित्र्य था, किन्तु जनता तक उनको पहुँच नहीं थी।" द्विवेदी जी को यह कमी बहुत अखरती थी। अब 'सरस्वती'-द्वारा उन्होंने इस कमी को पूरा करने का निश्चय किया। उद्देश्य की पूर्ति में एक वाधा यह थी कि जनता में पढ़ने का शौक बहुत ही कम था। अतः उन्होंने पहले अपने पाठकों की रुचि को हिंदीसाहित्य की त्रोर त्राकर्षित करने की चेष्टा की। 'सरस्वती' के एक श्रंक में उन्होंने लिखा—

''लेखों से 'सरस्वती' की सहायता करनेवाले सडजनों से पार्थना है कि अब वे अपने लेखों का पहले की अपेना अधिक राचक सनाने की कृपा करें।''

उपर हम लिख चुके हैं कि पिण्डत प्रतापनारायण मिश्र ने भी एक बार अपने लेखकों से ऐसी ही प्रार्थना की थी। पर परिस्थिति ने उनका साथ न दिया और उन्हें 'ब्राह्मण' को शीब ही बन्द कर देना पड़ा। द्विवेदी जी इसे देख चुके थे, इसलिए सावधान थे। शीब ही उन्होंने अपने लेखकों और पाठकों को अधिक गंभीर और ठोस लेखों के प्रति अभिरुचि बढ़ाने के लिए उत्साहित किया और बढ़ती हुई नवीन शिचा द्वारा शिचित नवयुवक पाठकों की था कि अवसर पाते ही उन्होंने 'सरस्वती' को विभिन्न विपयों से विभूपित करके उसे विचार की अपेचा प्रचार की पत्रिका बनाया। संस्कृत-साहित्य, जीवन-चरित, इतिहास, पुरातत्त्व, विज्ञान, अध्यात्म-विद्या, संपत्तिशास्त्र, हिन्दी-भाषा, शासन-पद्धति, शिचा, प्राचीन अनुसंधान, यात्रा-विवरण, नवीन अभ्युत्थान का परिचय, समाज-तत्त्व, दर्शन, संगीत, चित्रकला, नीति आदि अनेकानेक विषयों के लेख 'सरस्वती' में प्रकाशित होने लगे। संपादक के लिए तो इनमें से अधिकांश विषयों का ज्ञान वे आवश्यक भी समभते थे। वँगला के 'प्रवासी' में 'संपादकों के। किन विषयों का ज्ञान होना चाहिए,' इस पर एक लेख छपा था। उसी की वातों का समर्थन करते हुए द्विवेदी जी ने लिखा था—

"संपादकां के इन शास्त्रों श्रीर इन विषयों का ज्ञान श्रवश्य होना चाहिए—इतिहास, संपत्तिशास्त्र, राष्ट्रविज्ञान, समाज तस्व, व्यवस्था-विज्ञान (Jurisprudence), ध्रपराध-तस्व (Criminology), श्रनेक ले।किक श्रीर वेपयिक व्यापारों का संख्या-संबंधी शास्त्र (Statistics), पौर श्रीर जानपद वग के श्रधिकार श्रीर कर्तव्य, श्रनेक देशों की शासन-प्रणाली, शांतिरचा श्रीर स्वास्थ्य-रचा का विवरण, शिचा पद्धित श्रीर कृषि-वाणिज्य का वृत्तांत । देश का स्वास्थ्य किस तरह सुधर सकता है, कृषि, शिल्प श्रीर वाणिज्य की उन्नति कैसे हो सकती है, शिचा का विस्तार श्रीर उत्कर्ष-साधन कैसे किया जा सकता है, किन उपायों के श्रवजन्यन से हम राष्ट्र-सम्बन्धी नाना प्रकार के श्रधिकार पा सकते हैं, सामाजिक कुरीतियों के। किस प्रकार दूर कर सकते हैं—इरयादि श्रनेक उपयोगी विषयों पर संपादकों को लेख लिखना चाहिए।" था कि अवसर पाते ही उन्होंने 'सरस्वती' को विभिन्न विपयों से विभूपित करके उसे विचार की अपेचा प्रचार की पत्रिका बनाया। संस्कृत-साहित्य, जीवन-चरित, इतिहास, पुरातत्त्व, विज्ञान, अध्यात्म-विद्या, संपत्तिशास्त्र, हिन्दी-भाषा, शासन-पद्धित, शिचा, प्राचीन अनुसंधान, यात्रा-विवरण, नवीन अभ्युत्थान का परिचय, समाज-तत्त्व, दर्शन, संगीत, चित्रकला, नीति आदि अनेकानेक विषयों के लेख 'सरस्वती' में प्रकाशित होने लगे। संपादक के लिए तो इनमें से अधिकांश विषयों का ज्ञान वे आवश्यक भी समभते थे। वँगला के 'प्रवासी' में 'संपादकों के। किन विषयों का ज्ञान होना चाहिए,' इस पर एक लेख छपा था। उसी की वातों का समर्थन करते हुए द्विवेदी जी ने लिखा था—

'संपादकां के। इन शास्त्रों श्रीर इन विषयों का ज्ञान श्रवश्य होना चाहिए— इतिहास, संपत्तिशास्त्र, राष्ट्र-विज्ञान, समाज तस्त्र, व्यवस्था-विज्ञान (Jurisprudence), ध्यराध-तस्त्र (Criminology), श्रनेक लैं। किक धौर वेपयिक व्यापारों का संख्या-संबंधी शास्त्र (Statistics), पौर श्रौर जानपद वग के श्रधिकार श्रौर कर्तव्य, श्रनेक देशों की शासन-प्रणाली, शांतिरचा श्रौर स्वास्थ्य-रचा का विवरण, शिचा पद्धति श्रौर कृपि-वाणिज्य का वृत्तांत । देश का स्वास्थ्य किस तरह सुधर सकता है, कृपि, शिच्य श्रौर वाणिज्य की उन्नति कैसे हो सकती है, शिचा का विस्तार श्रौर उत्कर्ष-साधन कैसे किया जा सकता है, किन उपायों के श्रवलम्बन से इम राष्ट्र-सम्बन्धी नाना प्रकार के श्रधिकार पा सकते हैं, सामाजिक क्रितीतयों के। किस प्रकार दूर कर सकते हैं— इत्यादि श्रनेक उपयोगी विषयों पर संपादकों के। लेख लिखना घाहिए।" भेजा उसका सारांश यह था कि अमुक-अमुक पुस्तकों में इस विषय की सुन्दर विवेचना की गई है। लेखक महाशय को चाहिए कि उन्हें एक वार पढ़ें और तब अपना लेख सुधार कर अकाशित करायें। ऐसा था द्विवेदी जी का विस्तृत अध्ययन, जिसका क़ायल सबको होना पड़ता था।

ऊपर जिन विषयों की सूची दी गई है उनमें अधिकांश बड़े शुष्क और गम्भीर हैं; फिर नये विषयों की ओर साधारण जनता का ध्यान आकर्षित करना आसान भी नहीं होता। द्विवेदी जी को इन सभी वातों का ध्यान रखना पड़ता था। अतः विषय को रोचक और शैली को सरल और स्पष्ट बनाने का वे सदा ही प्रयत्न किया करते थे। फलतः 'सरस्वती' में प्रकाशित लेखों में गम्भीरता के साथ साथ प्रचुर मात्रा में रोचकता, सरलता और माधुर्य भी मिलता था; ज्योतिप, वेदाङ्ग आदि रूखे-सूखे विषयों पर भी बड़े मनोमोहक और रोचक लेख उन्होंने लिखवाये। इससे 'सरस्वती' का जनता में बड़ा आदर होने लगा।

सामयिक विषयों का चयन और सङ्कलन करते समय वे एक आदर्शवादी सुधारक वन जाते थे। भारतवासी अपनी प्राचीन संस्कृति, भाषा, साहित्य आदि की रचा करें, यही उनका उद्देश्य और आदर्श था। अतः वे अपने पाठकों को संसार में आज कैसी उन्नति हो रही हैं, कौन-कौन देश उन्नति के पथ पर अप्रसर हो रहे हैं, भारत की वास्तविक स्थिति और दशा क्या हैं, आदि वातों से पूर्ण परिचित रखना अपना कर्तव्य समभते थे। इसके लिए उन्हें बड़ा परिश्रम करना पड़ता था; प्रायः अँगरेजी, मराठी, वँगला, गुजराती आदि भाषाओं की पत्र-पत्रिकाओं की उल्लेखनीय टिप्पिएयों का अनुवाद वे सरस्वती

भेजा उसका सारांश यह था कि असुक-असुक पुस्तकों में इस विषय की सुन्दर विवेचना की गई है। लेखक महाशय को चाहिए कि उन्हें एक वार पढ़ें और तब अपना लेख सुधार कर प्रकाशित करायें। ऐसा था द्विवेदी जी का विस्तृत अध्ययन, जिसका क़ायल सबको होना पड़ता था।

उपर जिन विषयों की सूची दी गई है उनमें अधिकांश बड़े शुष्क और गम्भीर हैं; फिर नये विषयों की ओर साधारण जनता का ध्यान आकर्षित करना आसान भी नहीं होता। द्विवेदी जी को इन सभी वातों का ध्यान रखना पड़ता था। अतः विषय को रोचक और शैली को सरल और स्पष्ट बनाने का ये सदा ही प्रयत्न किया करते थे। फलतः 'सरखती' में प्रकाशित लेखों में गम्भीरता के साथ साथ प्रचुर मात्रा में रोचकता, सरलता और माधुर्य भी मिलता था; ज्योतिप, वेदाङ्ग आदि रूखे-सूखे विषयों पर भी वड़े मनोमोहक और रोचक लेख उन्होंने लिखवाये। इससे 'सरस्वती' का जनता में वड़ा आदर होने लगा।

सामयिक विषयों का चयन और सङ्कलन करते समय वे एक आदर्शवादी सुधारक वन जाते थे। भारतवासी अपनी प्राचीन संस्कृति, भाषा, साहित्य आदि की रचा करें, यही उनका उद्देश्य और आदर्श था। अतः वे अपने पाठकों को संसार में आज कैसी उन्नति हो रही हैं, कौन-कौन देश उन्नति के पथ पर अप्रसर हो रहे हैं, भारत की वास्तविक स्थिति और दशा क्या है, आदि वातों से पूर्ण परिचित रखना अपना कर्तव्य सममते थे। इसके लिए उन्हें वड़ा परिश्रम करना पड़ता था; प्रायः अँगरेजी, मराठी, वँगला, गुजराती आदि भाषाओं की पत्र-पत्रिकाओं की उल्लेखनीय टिप्पिएयों का अनुवाद वे सरस्वती'

आरम्भ में ही हिन्दी-भाषा-भाषियों का हृदय-हार बन गई ते उसमें आरचर्य ही क्या है ? वास्तव में जनता उस समय ज्ञानार्जन करना चाहती थी। परिस्थिति एक ही विषय के विशेषज्ञ को महत्त्व न देकर ऐसे व्यक्ति को चाहती थी जिसका ज्ञान विस्तृत हो। द्विवेदी जी इस बात को भली माँति समभ गये थे। अपर दिया हुआ उनका नोट इस बात का प्रमाण है। 'सरस्वती' की रीति-नीति स्थिर करते समय उन्होंने यही आदर्श सामने रक्ता। प्राचीन काल के सभी विषयों में पारंगत एक गुरू की तरह वे अपने पाठकों की ज्ञान-वृद्धि के साथ उनमें ज्ञानार्जन-वृत्ति भी उत्पन्न करना चाहते थे। कालांतर में उनकी यह आकांना पूर्ण हुई। 'सरस्वती' ने थोड़े ही समय में इतने स्नातक उत्पन्न कर दिये जितने शायद एक विश्वविद्यालय न पैदा कर सकता। ये स्नातक पदवीधारी न होने पर भी शायद ज्ञान में डिगरीवालों से कम न थे। 'सरस्वती' के इस स्नातक-निर्माण-कार्य की आलोचना करते हुए द्विवेदी-अभिनंदन ग्रंथ में लिखा गया है—

"यदि हम इस कसौटी पर 'सरस्वती' की परीचा करें कि उसके द्वारा छँगरेज़ी घ्रथवा दूसरी प्रांतीय भाषायें न जाननेवाले व्यक्ति कहाँ तक अपने-घपने देशवासी भिन्न-भाषा-भाषियों की शिचा दीचा की समता कर सकते थे छौर कहाँ तक संसार की गति से परिचित न हो सकते थे—यदि हम यह पता जगा लें कि जो पाठक 'सरस्वती' की ही सहायता से घ्रपनी विद्या-बुद्धि और मितगिति-निर्माण करते थे वे देश की पठित जनता के बीच किस रूप में दिखाई देते थे—तो हम उस पित्रका का बहुत कुछ यथार्थ मूल्य समक तें। हम बहुत प्रसन्नता के साथ देखते हैं कि 'सरस्वती' की सामग्री इस विचार से यथेष्ट मात्रा में उन्नत थी छौर उसके पाठकों की (संभवतः कविता के। छोड़ कर) किसी विषय में संकृचिव

च्यारम्भ में ही हिन्दी-भाषा-भाषियों का हृदय-हार बन गई ते। उसमें त्राश्चर्य ही क्या है ? वास्तव में जनता उस समय ज्ञानार्जन करना चाहती थी। परिस्थिति एक ही विपय के विशोपज्ञ को महत्त्व न देकर ऐसे व्यक्ति को चाहती थी जिसका ज्ञान विस्तृत हो। द्विवेदी जी इस वात को भली भाँति समभ गये थे। अपर दिया हुआ उनका नोट इस वात का प्रमाण है। 'सरस्वती' की रीति-नीति स्थिर करते समय उन्होंने यही त्रादर्श सामने रक्खा। प्राचीन काल के सभी विपयों में पारंगत एक गुरू की तरह वे अपने पाठकों की ज्ञान-वृद्धि के साथ उनमें ज्ञानार्जन-वृत्ति भी उत्पन्न करना चाहते थे। कालांतर में उनकी यह त्राकांचा पूर्ण हुई। 'सरस्वती' ने थोड़े ही समय में इतने स्नातक उत्पन्न कर दिये जितने शायद एक विश्वविद्यालय न पैदा कर सकता। ये स्नातक पदवीधारी न होनें पर भी शायद ज्ञान में डिगरीवालों से कम न थे। 'सरस्वती' के इस स्नातक-निर्माण-कार्य की त्रालोचना करते हुए द्विवेदी-त्राभिनंदन यंथ में लिखा गया है—

''यिद हम इस कसोटी पर 'सरस्वती' की परीचा करें कि उसके द्वारा शॅंगरेज़ी श्रथवा दूसरी प्रांतीय भाषायें न जाननेवाजे व्यक्ति कहाँ तक श्रपने-श्रपने देशवासी भिन्न-भाषा-भाषियों की शिचा-दीचा की समता कर सकते थे श्रीर कहाँ तक संसार की गित से पिरिचित न हो सकते थे —यिद हम यह पता जगा लें कि जो पाठक 'सरस्वती' की ही सहायता से श्रपनी विद्या-दुद्धि श्रीर मितगिति-निर्माण करते थे वे देश की पठित जनता के बीच किस रूप में दिखाई देते थे—तो हम उस पत्रिका का बहुत कुछ यथार्थ मूल्य समक लें। हम बहुत प्रसन्नता के साथ देखते हैं कि 'सरस्वती' की सामग्री इस विचार से यथेष्ट मात्रा में उन्नत थी श्रीर उसके पाठकें। की (संभवतः कविता के। छे।इ कर) किसी विषय में संकृचित

लेखक-निर्माण

हम पीछे लिख आये हैं कि वीसवीं शताब्दी के आरम्भ में हिन्दी-संसार में बड़ी धाँधली मची हुई थी। पत्र-पित्रकायें निकलती थीं और उनमें मनमाने लेख भरे जाते थे। ये लेख कंभी तो मित्रों के होते थे और कभी सम्पादक महोदय के ही। पत्र-संचालकों या सम्पादकों को जनता की रुचि की छुछ भी चिन्ता न थी; वे केवल आँगरेजी और बँगला की नकल करके अपनी सम्पादक बनने की हवस पूरी करना चाहते थे।

'सरस्वती' का सम्पादन हाथ में त्राते ही द्विवेदी जी ने अनुभव किया कि विना योग्य लेखक और पाठक उत्पन्न किये हिन्दी की दशा में सुधार होना श्रसम्भव है। उन दिनों हिन्दी लेखक थे भी इने-गिने । जो थे भी वे लकीर के फ़क़ीरों की तरह पुराने विषयों को ही कविता करने श्रीर गद्य लिखने के लिए श्रंपनाते थे। भाषाशैली श्रौर व्याकरण पर तो कोंई ध्यान ही नं देता था। द्विवेदी जी ने इस अनियमितता को रोकने का भारी प्रयत्न किया और इस प्रकार के दोष-पूर्ण लेखों का प्रकाशन एकदंम बन्द कर दिया। लोग लेख भेजते थे। द्विवेदी जी उनके दोष दिखा कर लौटती डाक से ही वापस कर देते थे। इससे दिक्तयानूसी लेखकों में वड़ा असंतोष फैल गया। द्विवेदी जी ने इसकी कुछ चिन्ता न की। जब तक ऋंच्छे लेख न मिले, उन्होंने स्वयं इतना परिश्रम किया कि 'सरस्वती' का पूरा मेटर प्रायः ख़ुद ही तैयार करने लगे। वे विभिन्न विपयों का अध्ययन करके लिखते थे और कल्पित नाम से छपा देते थे। द्विवेदी जी की चौमुखी प्रतिभा इन दिनों देखने योग्य थी।वे कभी

लेखक-निर्भाग

हम पीछे लिख आये हैं कि वीसवीं शताब्दी के आरम्भ में हिन्दी-संसार भें बड़ी धाँधली मची हुई थी। पत्र-पत्रिकायें निकलती थीं और उनमें मनमाने लेख भरे जाते थे। ये लेख कभी तो मित्रों के होते थे और कभी सम्पादक महोदय के ही। पत्र-संचालकों या सम्पादकों को जनता की रुचि की कुछ भी चिन्ता न थी; वे केशल ऑगरेजी और बँगला की नक़ल करके अपनी सम्पादक वनने की हवस पूरी करना चाहते थे।

'सरस्वती' का सम्पादन हाथ में आते ही द्विवेदी जी ने श्रनुभव किया कि विना योग्य लेखक श्रौर पाठक उत्पन्न किये हिन्दी की दशा में सुधार होना असम्भव है। उन दिनों हिन्दी लेखक थे भी इने-गिने । जो थे भी वे लकीर के फुक़ीरों की तरह पुराने विषयों को ही कविता करने और गद्य लिखने के लिए ऋपनाते थे। भापाशैली ऋौर व्याकरण पर तो कोई ध्यान ही न देता था। द्विवेदी जी ने इस त्र्यनियमितता को रोकने का भारी प्रयत्न किया और इस प्रकार के दोष-पूर्ण लेखों का प्रकाशन एकदम वन्द कर दिया। लोग लेख भेजते थे। द्वियेदी जी उनके दोष दिखा कर लौटती डाक से ही वापस कर देते थे। इससे दक्षियानूसी लेखकों में वड़ा असंतोष फैल गया । द्विवेदी जी ने इसकी कुछ चिन्ता न की । जब तक श्रंच्छे लेख न मिले, उन्होंने स्वयं इतना परिश्रम किया कि 'सरस्वती' का पूरा मेटर प्रायः ख़ुद ही तैयार करने लगे। वे विभिन्न विपयों का अध्ययन करके लिखते थे और कल्पित नाम से छपा देते थे।

द्विवेदी जी की चौमुखी प्रतिभा इन दिनों देखने योग्य थी।वे कभी

श्रीर यदि लिखते भी थे तो श्रॅंगरेजी श्रादि श्रन्य भाषाश्रों में; हिन्दी में लिखने में 'शायद' वे श्रपना श्रपमान तक समभते थे। द्विवेदी जी सामयिक पत्रों में ऐसे लेखकों के लेख पढ़ा करते थे श्रीर प्रयत्न करते थे कि ये लेग हिन्दी में भी लिखें। यह प्रयत्न कभी-कभी व्यतिरेक-युक्ति-साधन के रूप में भी देखा जाता था। एक ऐसे ही लेखक के विषय में वे लिखते हैं—

"इिन्दुस्तान रिन्यू का जुलाई १६१४ का शंक इस समय हमारे सामने है। उसमें प्लेटी और शंकरावार्य के तत्त्व ज्ञान पर एक लम्बा षेख है। उसके जेखक हैं कोई डाक्टर प्रशुदत्त शास्त्री, आई० ई० एस॰ । ये शायद वही डाक्टर साइव हैं जो किसी समय पंजाब में थे भौर सरकारी वज़ीका पाकर श्रपना दार्शनिक श्रीर संस्कृत-ज्ञान पका करने के किए थारप गये थे। यदि यह सच है तो क्या आप पर उन जोगों का कुछ भी इक नहीं, जिनसे वसूल हुमा रुपया बग़ीके के रूप में पाकर धापने श्रवनी विद्वता की सीमा बढ़ाई है ? क्या केवल अँगरेज़ीदाँ इज़रत ही इस देश में बसते हैं ? क्या ये स्कूल, कालेल सीर वज़ीक़े उन्हीं के घर के रुपये से चलते सीर मिलते हैं? शाप जोगों के। श्रपने घर को भी ख़बर रखनी चाहिए। जिसके घर में चूहे डंड पेबते हों वह यदि जगतसेठ के गोदाम में गेई की गाहियाँ उजराने जाय तो कितने धारवर्य की बात है! हमारी यह शिकायत डाक्टर प्रभुदत शाखी से भी नहीं, उत्तरी भारत के भन्यान्य ढाक्टरों भीर घँगरेज़ीदाँ शास्त्रियों से भी है। घाप लोग अपनी भाषा में भी उपयोगी लेख लिखने की दया करें। बिन्वना नहीं भाता तो सीखिए, अपना कर्तच्य पालन कीजिए।"

इन चेतावनियों से बहुत से लोग तो रास्ते पर आगये और हिन्दी में लिखने लगे, पर कुछ लोग ऐसे भी थे जो बात बात फा॰ ३ श्रीर यदि लिखते भी थे तो श्रॅंगरेजी श्रादि श्रन्य भाषाश्रों में; हिन्दी में लिखने में 'शायद' वे श्रपना श्रपमान तक सममते थे। द्विवेदी जी सामयिक पत्रों में ऐसे लेखकों के लेख पढ़ा करते थे श्रीर प्रयत्न करते थे कि ये लेग हिन्दी में भी लिखें। यह प्रयत्न कभी-कभी व्यतिरेक-युक्ति-साधन के रूप में भी देखा जाता था। एक ऐसे ही लेखक के विषय में वे लिखते हैं—

''हिन्दुस्तान रिन्यू का जुलाई १६१४ का शंक इस समय हमारे सामने है। उसमें प्लेटी और शंकराचार्य के तत्त्वःज्ञान पर एक लम्बा बेख है। उसके लेखक है कोई डाक्टर प्रभुदत्त शास्त्री, आई० ई० एस॰ । ये शायद वही डाक्टर साहव हैं जो किसी समय पंजाब में थे श्रीर सरकारी वजीफा पाकर श्रपना दार्शनिक श्रीर संस्कृत-ज्ञान पका करने के जिए योरप गये थे। यदि यह सच है तो क्या आप पर उन जोगों का कुछ भी इक नहीं, जिनसे वसूल हुया रुपया वज़ीके के रूप में पाकर थापने श्रपनी विद्वत्ता की सीमा बढ़ाई है ? क्या केवल र्थेंगरेज़ीदाँ इज़रत ही इस देश में बसते हें ? क्या ये स्कूल, कालेज श्रीर बज़ीक़े उन्हीं के घर के रुपये से चब्रते श्रीर मिलते हैं? शाप बोगों के। अपने घर की भी ख़बर रखनी चाहिए। जिसके घर में चूहे डंड पेजते हों वह यदि जगतसेठ के गोदास में गेहें की गादियाँ उत्तराने जाय तो कितने शारचर्य की वात है! इमारी यह शिकायत डाक्टर प्रभुदत्त शाखी से भी नहीं. उत्तरी भारत के श्रन्यान्य ढाक्टरों श्रीर श्रॅगरेज़ीदाँ शास्त्रियों से भी है। श्राप लोग भपनी भाषा में भी उपयोगी लेख लिखने की दया करें। लिखना नहीं भाता तो सीखिषु, भ्रपना कर्तच्य पालन कीखिए।"

इन चेतावनियों से बहुत से लोग तो रास्ते पर श्रागये और हिन्दी में लिखने लगे, पर कुछ लोग ऐसे भी थे जो बान बान

फा० ३

साहित्य-सेवा से ऋपना हाथ खींच लिया था। ऋव उनको एक ऐसा व्यक्ति ललकार रहा था जिसने ऋपना तन, मन ऋौर धन मातृभाषा की उन्नति के लिए ऋर्पण कर दिया था। ऋतः मातृ-भाषा के प्रति उन्होंने अपना कर्तव्य निर्धारित कर लिया। द्विवेदी जी तो चाहते ही थे कि हिन्दी-सापा-सापी दूसरी भाषात्रों में पीछे लिखें, पहले अपनी मातृभाषा की यथाचित उन्नति कर लें। अतः उन्होंने इन लोगों का सहर्प खागत किया। परिणाम-खरूप डाक्टर महेन्दुलाल गर्ग, श्री शिवचन्द भारतीय, पंडित गौरीदत्त वाजपेथी, राय देवीप्रसाद पूर्ण, पंडित नाथूराम शर्मा, पंडित शुक-देव तिवारी, मुंशी देवीप्रसाद मुंसिक, पंडित रामचरित उपाध्याय, कुँवर हनुमन्तसिंह, श्री गिरिजाकुमार घेषि, पंडित सत्यनारायण कविरत्न, श्री मैथिलीशरण गुप्त, पंडित रामचन्द्र शुक्त, पंडित वेङ्कटेशनारायण तिवारी, श्री वृजनन्दनसहाय, खामी सत्यदेव, पंडित गिरिधर शर्मा नवरत्न, प्रभृति लेखकों ने 'सरस्वती' में लिखना त्रारम्भ कर दिया। इनमें कुछ लेखक तो उनके समका लीन थे परन्तु ऋन्तिम ४-७ लेखक नवयुवक ही थे जिनमें वे डपाधियों या डिगरियों की श्रोर ध्यान न देकर प्रतिमा के कण दूँढ़ा करते थे। सत्य ही वे प्रतिभा के उपासक थे; समर्थक थे। वे गुगा-याही थे **और ऐसे पारखी जौहरी थे कि** हीरे का उचित मूल्य देते थे, चाहे वह किसी निर्धन व्यक्ति के हाथ में ही क्यों न हों। परन्तु कृत्रिम की उन्हें परख थी और उसकी ओर से वे घृणा से 'दृष्टि फेर लिया करते थे।

लेखकों-में से कई ऐसे भी थे जो विदेशी भाषाओं के पिएडत थे। इनका ज्ञान स्वभावतः वहुत विस्तृत था। इनमें से कई विद्वान् श्रॅंगरेजी के पत्रों में लेख लिखा करते थे। इन लेखें का विदेशों में भी बड़ा मान् होता था। दिवेदी जी ने सोचा कि यदि ऐसे विद्वान् हिन्दी पर छपा

साहित्य-सेवा से अपना हाथ खींच लिया था। अब उनको एक ऐसा व्यक्ति ललकार रहा था जिसने ऋपना तन, मन और धन मातृभाषा की उन्नति के लिए ऋपेंग कर दिया था। अतः मातृ-भापा के प्रति उन्होंने अपना कर्तव्य निर्धारित कर लिया। द्विवेदी जी तो चाहते ही थे कि हिन्दी-भाषा-भाषी दूसरी भाषात्रों में पीछे लिखें, पहले अपनी मातृभाषा की यथोचित उन्नति कर लें। त्रातः उन्होंने इन लोगों का सहर्प स्वागत किया। परिगाम-स्वरूप डाक्टर महेन्दुलाल गर्ग, श्री शिवचन्द भारतीय, पंडित गौरीदत्त वाजपेयी, राय देवीप्रसाद पूर्ण, पंडित नाथूराम शर्मा, पंडित शुक-देव तिवारी, मुंशी देवीप्रसाद मंसिफ, पंडित रामचरित उपाध्याय, कुँवर हनुमन्तसिंह, श्री गिरिजॉकुमार घेषि, पंडित सत्यनारायण कविरत्न, श्री मैथिलीशरण गुप्त, पंडित रामचन्द्र शुक्त, पंडित वेङ्कटेशनारायण तिवारी, श्री वृजनन्दनसहाय, स्वामी सत्यदेव, पंडित गिरिधर शर्मा नवरत्न, प्रभृति लेखकों ने 'सरस्वती' में लिखना त्रारम्भ कर दिया। इनमें कुब लेखक ता उनके समका लीन थे परन्तु अन्तिम ४-७ लेखक नवयुवक ही थे जिनमें वे उपाधियों या डिगरियों की श्रोर ध्यान न देकर प्रतिभा के कए दूँढ़ा करते थे। सत्य ही वे प्रतिभा के उपासक थे; समर्थक थे। वे गुग्-याही थे ऋौर ऐसे पारखी जौहरी थे कि हीरे का उचित मूल्य देते थे, चाहे वह किसी निर्धन व्यक्ति के हाथ में ही क्यों न हो । परन्तु कृत्रिम की उन्हें परख थी और उसकी ओर से वे घृणा से दृष्टि फेर लिया करते थे।

लेखकों में से कई ऐसे भी थे जो विदेशी भाषाओं के पिएडत थे। इनका ज्ञान स्वभावतः वहुत विस्तृत था। इनमें से कई विद्वान् ऋँगरेजी के पत्रों में लेख लिखा करते थे। इन लेखों का विदेशों में भी वड़ा मान होता था। दिवेदी जी ने सोचा कि यदि ऐसे विद्वान् हिन्दी पर छपा

करते थे। इनके वाद श्रॅगरेजी के सुप्रसिद्ध लेखक श्रौर पत्रकार श्री सन्त निहालसिंह का नाम श्राता है। सन्त जी ने श्रमेरिका, चीन श्रौर जापान श्रादि देशों का श्रमण कर ज्ञानोपार्जन किया था श्रौर इनके लेख 'मार्डनरिव्यू' में प्रकाशित होते थे। द्विवेदी जी ने वे लेख पढ़े श्रौर बहुत पसन्द किये; फिर सन्द १६११ की फ्रवरी मास की 'सरस्वती' में उन्होंने संत जी का संचित्र परिचय प्रकाशित किया श्रौर श्रन्त में उनकी प्रशंसा करते हुए लिखा—

''सेंट की से एक उलहना है। श्रॅगरेज़ी न जाननेवाले श्रपने देशवासियों को श्रपनी बहुज्ञता से लाभ पहुँचाने का भी कभी उन्होंने ख़याल किया है या नहीं! सबसे श्रधिक तो इसी की ज़रूरत है। वह क्या श्रापके श्रॅगरेज़ी लेखों से हो सकता है? जिस योरप श्रौर श्रमेरिका से उन्होंने इतना ज्ञानार्जन किया है वे सब श्रपनी ही श्रपनी मातृभाषाश्रों में लिखते हैं। फिर क्यों न श्राप भी कभी-कभी श्रपनी देश-भाषा में कुछ लिखने की कृषा किया करें? श्रपनी माँ की बोली की —श्रपनी देश की भाषा की सेवा करना भी तो मनुष्य का कर्तक्य है!''

इस उलहने की दाद देकर सेन्ट जी ने कई लेख 'सरस्वती' में लिखे। इसी प्रकार रायसाहव छोटेलाल जी (बाईस्पत्य) इंजीनियर के ज्योतिप-वेदाङ्ग पर वड़े महत्त्व के गवेपणापूर्ण लेख 'हिन्दुस्तान-रिव्यू' नामक चँगोजी पत्र में प्रकाशित हुए थे। इन लेखों की विद्वानों ने बड़ी प्रशंसा की थी। द्विवेदी जी ने भी इन्हें बहुत पसन्द किया। उन्होंने लेखक की प्रशंसा में संस्कृत में स्वयं एक पद बनाया। उसमें बाईस्पत्य जी को आशीर्वाद भी दिया। वस, उसी दिन से द्विवेदी जी ने मानो उन्हें 'सरस्वती' के लिए मोल ले लिया। वाईस्पत्य जी ने

करते थे। इनके वाद श्रॅगरेजी के सुप्रसिद्ध लेखक श्रीर पत्रकार श्री सन्त निहालसिंह का नाम श्राता है। सन्त जी ने श्रमेरिका, चीन श्रीर जापान श्रादि देशों का श्रमण कर ज्ञानोपार्जन किया था श्रीर इनके लेख 'माडनीरिक्य' में प्रकाशित होते थे। द्विवेदी जी ने वे लेख पढ़े श्रीर वहुत पसन्द किये; फिर सन्त १६११ की फ्रवरी मास की 'सरस्वती' में उन्होंने संत जी का संचित्र परिचय प्रकाशित किया श्रीर श्रन्त में उनकी प्रशंसा करते हुए लिखा—

'सेंट जी से एक उलहना है। ग्रॅंगरेज़ी न जाननेवाने श्रवने देशवासियों को श्रवनी बहुज्ञता से लाभ पहुँचाने का भी कभी उन्होंने ख़वाल किया है या नहीं! सबसे श्रिधक तो इसी की ज़रूरत है। वह क्या श्रापके धँगरेज़ी लेखों से हो सकता है? जिस योरप श्रीर श्रमेरिका से उन्होंने इतना ज्ञानार्जन किया है वे सब श्रवनी ही श्रवनी मातृभाषाश्रों में लिखते हैं। फिर क्यों न श्राप भी कभी-कभी श्रपनी देश-भाषा में कुछ जिखने की कृषा किया करें? श्रवनी माँ की बोली की —श्रपनी देश की भाषा की सेवा करना भी तो मनुष्य का कर्तक्य है!'

इस उलहने की दाद देकर सेन्ट जी ने कई लेख 'सरस्वती' में लिखे। इसी प्रकार रायसाहव छोटेलाल जी (वाह्स्पत्य) इंजीनियर के ज्योतिप-वेदाङ्ग पर वड़े महत्त्व के गवेपणापूर्ण लेख 'हिन्दुस्तान-रिन्यू' नामक ऋँगरेजी पत्र में प्रकाशित हुए थे। इन लेखों की विद्वानों ने बड़ी प्रशंसा की थी। द्विवेदी जी ने भी इन्हें बहुत पसन्द किया। उन्होंने लेखक की प्रशंसा में संस्कृत में स्वयं एक पद बनाया। उसमें वार्ह्स्पत्य जी को ऋगशीर्वाद भी दिया। वस, उसी दिन से द्विवेदी जी ने मानो उन्हें 'सरस्वती' के लिए मोल ले लिया। वार्ह्स्पत्य जी ने परन्तु इन महाराय को द्विवेदी जी ने केवल उत्साहित कर-के नहीं छोड़-दिया। आगे चल कर उनसे प्रार्थना करते हुव लिखा—

"हमारे देशवंधु घाँगरेज़ी ऐपी हिए आपा की लिख कर उसके साहित्य-सागर के तो गँदला काते ही हैं, पर अपनी मातृभाषा जिसने की भी चेष्टा नहीं करते। यह दुर्भाग्य की बात है। क्या हो अच्छा हो यदि आप 'मातृभाषा-विषयक मर्नुष्ण का कर्त्तव्य' या हसी तरह के किसी विषय पर लेख जिस कर इन लोगों की लिखत करें।

विनयावनत महावीरप्रसाद द्विवेदी''

द्विवेदी जी अपने लेखकों से भली भाँति परिचित रहते थे। कौन मनुष्य किस विषय का अच्छा लेखक वन सकता है, इसकी उन्हें अनोखी परख थी। नये कवियों की कितता लौटाते समय वे उनके दोष स्पष्टतया लिख देते थे, जिससे उन्हें भविष्य में अपनी उन्नति करने का सहारा मिल जाता था। यहां नहीं, वे कवियों को सामयिक रुचि के विषय भी बतलाते थे और उन पर कवितायें लिखने के लिए उन्हें उत्साहित करते थे। पंडित केशवप्रसाद मिश्र अपने विषय में एक ऐसे ही प्रसंग का उल्लेख इस प्रकार करते हैं—

'यों हो दस वर्ष बीत गये। सन् १६१६ के दिसम्बर में आख़िर हिम्मत कर ही तो डाली। 'सुदामा' पर एक लम्बी तुकवंदी लिसकर उत्साह से द्विवेदी जी के पास भेज दी और मान लिया कि अब पंच बराबर होने में बस बस सिर्फ़ एक ही महीने की देर है। 'सरस्वती' में मेरो 'कविता' निकली कि मैं लेखकों में गिना गया। परन्तु इन महाशय को द्विवेदी जी ने केवल उत्साहित कर-के नहीं छोड़-दिया । आगे चल कर उनसे प्रार्थना करते हुए लिखा—

"हमारे देशवंधु श्राँगरेज़ी ऐसी किए आपा की लिख कर उन्तरे साहित्य-सागर की तो गँदला करते ही हैं, पर अपनी मानुभाषा जिखने की भी चेष्टा नहीं करते। यह दुर्भाग्य की बात है। क्या ही श्रच्छा हो यदि श्राप 'मानुभाषा-विषयक मनुष्य का कर्त्तव्य' या हसी तरह के किसी विषय पर लेख लिख कर इन लोगों की लिखन करें।

> विनयावनत महावीरप्रसाद द्विवेदी''

द्विवेदी जी अपने लेखकों से मली माँति परिचित रहते थे। कौन मनुष्य किस विषय का अच्छा लेखक वन सकता है, इसकी उन्हें अनोखी परख थी। नये कवियों की कविता लौटाते समय वे उनके दोप स्पष्टतया लिख देते थे, जिससे उन्हें भविष्य में अपनी उन्नति करने का सहारा मिल जाता था। यहो नहीं, वे कियों को सामियक किन के विषय भी वतलाते थे और उन पर किवतायें लिखने के लिए उन्हें उत्साहित करते थे। पंडित केशवप्रसाद मिश्र अपने विषय में एक ऐसे ही प्रसंग का उल्लेख इस प्रकार करते हैं—

'यों ही दस वर्ष बीत गये। सन् १६१३ के दिसम्बर में आख़िर हिम्मत कर ही तो डाली। 'सुदामा' पर एक लम्बी तुकवंदी जिसकर उत्साह से द्विवेदी जी के पास भेज दी और मान जिया कि यह पंच बराबर होने में बस बस सिर्फ़ एक ही महोने की देर है। 'सरस्वती' में मेरी 'कविता' निकली कि मैं जेखकों में गिना गया। "में एक बार उनके दर्शन के। जुड़ी पहुँचा। कुछ वातचीत है। जुकने के बाद द्विवेदी जी ने प्रश्न किया।

''क्या पढ़ते हैं ?''

इस बार साहस करके कह दिया—"अधिकतर तो उपन्यास और गलप ही पढ़ी है।"

''घच्छा ! कौन-कौन उपन्यास पढ़े हैं ?''

मैंने घँगरेज़ी, हिंदी, वँगला तथा उद् के कुछ प्रसिद्ध उपन्यासें। के नाम बताये।

''उपन्यास तो ख़्ब पढ़े हैं।''

''हाँ। श्रोर लिखने की रुचि भी कुछ इसी श्रोर है।''

''बड़ी श्रच्छी बात है। छोटी-छोटी कहानियाँ श्रीर गरुपें ते। पढ़ी ही होंगी—वैसे ही लिखा कीलिए।''

"देखिए, प्रयत करूँगा ।"

''द्विवेदी जी सिर भुकाकर मस्तक पर हाथ फेरने लगे। कुछ चर्णों के पश्चात् बगल से पानों की डिबिया उठाकर उसमें से दो पान निकाले और मुसे दिये। इसके पश्चात् बोले—"में एक मिनिट में द्याता हूँ।" यह कहवर उठे और कमरे के अन्द्र चले गये। जीटकर एक पुस्तक हाथ में लिये हुए आये। चारपाई पर बैठकर बोले—''बँगला तो आप जानते ही हैं—रवीन्द्रनाथ ठाकुर की गल्पें पढ़ी होंगी—उन्हीं की गल्पों का यह संग्रह है। इसमें से केाई एक गल्प जिसे आप सबसे अच्छी सममें, हिन्दी में अनुवाद करके मुसे दं—में उसे छाएँगा। जेकिन इतना ध्यान रखिएगा कि न तो पुस्तक में कहीं क्रलम या पेंसिल का निशान लगाइएगा, न स्याही के धटने पढ़ने दीनिएगा, न एष्ट मोडिएगा।''

"में एक बार उनके दर्शन का जुही पहुँचा । कुछ वातचीत है। जुकने के बाद द्विवेदी जी ने प्रश्न किया ।

''क्या पड़ते हैं ?''

इस बार साहस करके कह दिया—"श्रधिकतर तो उपन्यास श्रौर गल्पॅ, ही पढ़ी हैं।"

''बच्छा ! कौन-कौन उपन्यास पढ़े हैं ?''

मैंने घँगरेज़ी, हिंदी, वँगला तथा उद् के कुछ प्रसिद्ध उपन्यासें। के नाम बताये।

''उपन्यास तो ,खूब पढ़े हैं।''

''होंं। श्रीर लिखने की रुचि भी कुछ इसी श्रीर है।''

् ''बड़ी श्रच्छी बात है। छोटी-छोटी कहानियाँ ग्रोर गर्ल्पे तो पढी ही होंगी—वैसे ही जिला कीजिए।''

"देखिए, प्रयत करूँगा।"

''द्विवेदी जी सिर भुकाकर मस्तक पर हाथ फेरने जगे। कुछ ध्यों के पश्चात् बगल से पानों की डिबिया उठाकर उसमें से दो पान निकाले श्रौर मुस्ते दिये। इसके पश्चात् बोले—"में प्रक मिनिट में श्वाता हूँ।" यह कहकर उठे श्रौर कमरे के श्रन्द्रर चले गये। कौटकर प्रक पुस्तक हाथ में लिये हुए श्राये। चारपाई पर बैठकर बेले—''वँगला तो श्राप जानते ही हैं—रवीन्द्रनाथ ठाकुर की गल्पें पढ़ी होंगी—उन्हीं की गल्पों का यह संग्रह है। इसमें से कोई एक गल्प जिसे श्राप सबसे श्रच्छी समम्में, हिन्दी में श्रनुवाद करके मुस्ते दें—में उसे छाएँगा। लेकिन इतना ध्यान रखिएगा कि न तो पुस्तक में कहीं क्रलम या पेंसिल का निशान लगाइएगा, न स्थाही के धटने पढ़ने दीजिएगा, न पृष्ठ मोिइएगा।"

में 'सरस्वती' में एक अच्छा तेल दे सकता हूँ । इसके लिए उन्हों। बारा दी। मैंने इस संबंध में छानेक एस्तर्फे एक कर के रोध वैयार किया। अनुभव कमाया और मसाका धायक, जलः लेल से २० इड का तैयार हुआ। मैंने वह उनके पास केन दिया। बीटनी धाक से उन्होंने पत्र लिखा कि 'सरस्त्रती' के लिए जेल किया है या पोधा ? खैर, इसे छाएँगा।

'समय पर सरस्वती' आई और मैंने आह वर्ष और उरतुक्ता-पूर्वक देखा कि नाना फदनवीस का मेरा वह २० प्रष्ट में किसा लेन हुपा हुआ है। लेख का लार तथा सिलसिला इतना उत्तम बंधा हुआ कि कहीं विश्वंखलता मालूम ही नहीं दो। इतना ही नहीं. विरुक्त लेख मेरे नाम से छुपा हुआ है और दो रुपये पेज के हिसाब से १६) का मनीआईर भी पुरस्कार में मेरे पाप एक इफ़्ते के अन्दर ही—आप ही आप—आ गया! मैं तो भीचका रह गया कि यह कैसा महान् पत्रकार है कि जो अपने छोटे-छोटे कुपापात्र लेखकों के प्रति इतना सजग रहता है!''

वे यह भी चाहते थे कि उनके लेखक उन्हीं की भाँति सदैन लिखा करें। हर महीने वे उन्हें पत्र भेज रिमाइन्ड करा दिया करते थे। पिएडत रूपनारायण जी पांडेय (माधुरी-सम्पादक) ने मुफसे कई वार यह वात कही है कि प्रतिमास द्विवेदी जी किवता भेजने के लिए उन्हें तीन-चार पत्र डाला करते थे। इसी प्रकार जो महाशय बहुत दिन तक 'सरस्वती' में कुछ न लिखते, उनसे वे जवाव भी तलब किया करते थे। वेचारा समय न मिलने का बहाना करता। परन्तु द्विवेदी जी इससे न सन्तुष्ट होते और उत्तर देते—"जी नहीं, यह सब बहाना है। तुम दृढ़ निश्चयी नहीं, समय मिलना न मिलना अपने हाथ में है। चाहो तो समय निकाल सकते हो।" बहुत से नवयुवक लेखक और कवि उनके में 'सरस्वती' में एक श्रव्हा लेख दे सकता हूँ । इसके लिए उन्हों । बारा दी। मैंने 'इस संबंध में शिन अस्तर्ज एकत्र कर के रोध वैतार किया। श्रमुभव कमन्या श्रीर ससावा अधिक, अतः लेख हो १० प्रष्ट का तैयार हुआ। मैंने वह उनके पात केत दिया। वौदर्ती धाक से उन्होंने पत्र विखा कि 'सरस्त्रती' के लिए जेख 'बिस्सा है या पोधा ? ख़ैर, इसे छाएँगा।

''समय पर सरस्वती' आई और मैंने आरवर्ष और उत्सुकता-पूर्वक देखा कि नाना फदनवीस का मेरा वह २० प्रष्ट में लिखा लेन क्या हुआ है। लेख का खार तथा सिलसिला इतना उत्तम वंधा हुआ कि कहीं विश्वेखलता मालूम ही नहीं दो। इतना ही नहीं. बिलक लेख मेरे नाम से छपा हुआ है और दो रुपये पेज के हिसाब से १६) का मनीआर्डर भी पुरस्कार में मेरे पाप एक हफ़्ते के अन्दर ही—आप ही आप—आ गया! में तो भीचका रह गया कि यह कैसा महान् पत्रकार है कि जो अपने छोटे-छोटे छपापात्र लेखकों के प्रति इतना सलग रहता है!''

वे यह भी चाहते थे कि उनके लेखक उन्हीं की भाँति सदैव लिखा करें। हर महीने वे उन्हें पत्र भेज रिमाइन्ड करा दिया करते थे। पिएडत रूपनारायण जी पांडेय (माधुरी-सम्पादक) ने मुभसे कई वार यह वात कही है कि प्रतिमास द्विवेदी जी कविता भेजने के लिए उन्हें तीन-चार पत्र डाला करते थे। इसी प्रकार जा महाशय बहुत दिन तक 'सरस्वती' में कुछ न लिखते, उनसे वे जवाब भी तलब किया करते थे। वेचारा समय न मिलने का बहाना करता। परन्तु द्विवेदी जी इससे न सन्तुष्ट होते और उत्तर देते—"जी नहीं, यह सब बहाना है। तुम दृढ़ निश्चयी नहीं, समय मिलना न मिलना अपने हाथ में है। चाहो तो समय निकाल सकते हो।" बहुत से नवयुवक लेखक और कवि उनके की त्रुटियाँ दिखाई गई थीं - विषय के अनुरूप शैली न होने की खुराई की और मेरा ध्यान दिलाया गया था। उन दिलो मेरे सामने आदर्श था स्वर्गीय पंडित गोविंदनारायण मिश्र का, जिनकी गंभीर विद्वत्ता तथा प्राकृत और हिन्दी के साहित्यों का अध्ययन और मगर वस्तुत: अपूर्व था। पर पंडित गोविंदनारायण जी का गद्य कादंवरी का अनुकरण था और में भी उनका पदानुसरण बरने का यत कियां करता था। द्विवेदी जी को यह शैली पसन्द नहीं थी और अपने एक कार्ड में आपने यह जिख भी दिया था। वर्षों बाद मुसे द्विवेदी जी के इम कथन की सत्यता का अनुभव हुआ। में भी भाषा सरख और वाक्य छोटे करने का यत करने लगा। आज के कुछ लेख आपके। बहुत पसन्द आये थे और जब जो लेख अच्छा मालूम हुआ, तुरन्त कार्ड जिखकर अपना सन्तोष प्रकट किया। कार्यचेत्र से अवसर प्रहण करने के बाद भी मेरे जैसे एक साधारण पत्रकार पर भी ऐसी द्यादिष्ट रखनेवाला आचार्य हिंदी के। पुनः कय आह होगा ?"

साथ ही उन्होंने 'सरखती' का स्टेग्डर्ड भी ऊँचा किया। आरम्भ में उनका उद्देश और आदर्श समभकर पिछत कर्द्र रामां ने टोका था—"हिन्दी में इतने उच्च कोटि के लेखक कहाँ मिलेंगे ? पित्रका का चलना कठिन हैं।" परन्तु द्विवेदी जी इससे निरुत्साह न हुए, प्रत्युत प्रेरणा और प्रोत्साहन-द्वारा उन्होंने कितने ही लेखकों और कवियों का स्वयं ही निर्माण कर दिया। यही नहीं, अन्य भापा-भापियों को भी हिन्दी और हिन्दी-साहित्य का प्रेमी और आदरकर्ता बना दिया। आज उनके बनाये हुए कई लेखक और कवि देश में आदर्श और रम माने जाते हैं और अपनी विद्वत्तापूर्ण तथा कलामय कृतियों से हमारे साहित्य को गौरवान्वित कर चुके हैं।

की त्रुटियाँ दिखाई गई थीं - विषय के अनुरूप शैली न होने की खराई की और मेरा ध्यान दिलाया गया था। उन दिनो नेने लागने आदर्श था स्वर्गीय पंडित गोविंदनारायण मिश्र का, जिनकी गंभीर विद्वत्ता तथा प्राकृत और हिन्दी के साहित्यों का अध्ययन और मगर वस्तुत: अपूर्व था। पर पंडित गोविंदनारायण जी का गद्य कादंदरी का अनुकरण था और में भी उनका पदानुसरण वसने का यत कियां करता था। द्विवेदी जी को यह शैली पसन्द नहीं थी और अपने एक कार्ड में आपने यह जिख भी दिया था। वर्षों बाद मुक्ते द्विवेदी जी के इप कथन की सत्यता का अनुभव हुआ। मैं भी भाषा सरख और वाक्य छोटे दरने का यत करने लगा। आज के कुछ जेल आपके। बहुत पसन्द आये थे और जब जो लेख अच्छा मालूम हुआ, तुरन्त कार्ड जिखकर अपना सन्तोप प्रकट किया। कार्यचेत्र से अवसर अहण करने के वाद भी मेरे जैसे एक साधारण पत्रकार पर भी ऐसी दयादृष्ट रखनेवाला आचार्य हिंदी की पुनः कय प्राप्त हैगा?"

साथ ही उन्होंने 'सरस्वती' का स्टेग्डर्ड भी ऊँचा किया। आरम्भ में उनका उद्देश्य और आदर्श समम्मकर पिडत क्रद्रन्त शर्मा ने टोका था—"हिन्दी में इतने उच्च कोटि के लेखक कहाँ मिलेंगे? पित्रका का चलना किठन है।" परन्तु द्विवेदी जी इससे निरुत्साह न हुए, प्रत्युत प्रेरणा और प्रोत्साहन-द्वारा उन्होंने कितने ही लेखकों और किवयों का स्वयं ही निर्माण कर दिया। यही नहीं, अन्य भापा-भाषियों को भी हिन्दी और हिन्दी-साहित्य का प्रेमी और आद्रकर्ता बना दिया। आज उनके बनाये हुए कई लेखक और किव देश में आदर्श और रत्न माने जाते हैं और अपनी विद्वत्तापूर्ण तथा कलामय कृतियों से हमारे साहित्य को गौरवान्वित कर चुके हैं।

श्रागे वढ़ गये कि उन्होंने द्विवेदी जी से नाराज होकर निजी पत्र-पत्रिकाश्रों को जन्म दिया। काशी से 'तरंगिणी' नाम की पत्रिका का जन्म ऐसे ही हुश्रा था। उसके संपादक द्विवेदी जी से नाराज हो गये थे। उनकी शिकायती किवता 'सरस्वती' में छपी हैं। पर द्विवेदी जी की हढ़ता, संपादन-कला-संबंधी परिश्रम, श्रादि के कारण 'सरस्वती' का प्रचार दिन प्रति वढ़ना गया। उसकी सफनता देखकर श्रन्यं पत्र-पत्रिकाश्रों को जन्म दिया गया।

भागलपुर से 'कमला' प्रकाशित हुई श्रोर प्रयाग से 'मर्यादा'। पहली तो शीव ही वंद होगई, पर दूसरी पित्रका कुछ दिनों तक श्रच्छी तरह प्रकाशित होती रही। उसको लेखक भी श्रच्छे मिले; 'सरस्वती' के ही कुछ लेखक उसमें प्रायः लिखा करते थे। उनके लेखों में गंभीरता, रोचकता श्रोर मधुरता का मिश्रण रहता था। इधर मेरठ से 'लिलता' नाम की पित्रका प्रकाशित हुई। श्रन्य पित्रकाश्रों ने तो 'सरस्वती' से स्पर्ध करने का श्रसफल प्रयत्न ही किया, पर 'लिलता' इन सबसे श्रागे वढ़ गई—उसने श्रपने कबर पर ही 'सरस्वती' से टक्कर लेने की वात लिख डाली। इसी समय खँडवा से 'प्रभा' प्रकाशित हुई। यह पित्रका भी श्रच्छी थी, पर पूरे साल भर भी न चल सकी। इछ साल बाद वह फिर 'प्रताप'—कार्यालय, कानपुर से निकली; पर कुछ दिन बाद फिर बंद होगई। पत्रों में काशी से प्रकाशित होने वाला 'इन्दु' वहुत सजधज से निकलता था।

प्रायः इन सभी पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन थोड़े समय वाद ही वन्द कर दिया गया; शायद ही किसी का जीवन ४-६ वर्ष से अधिक का हुआ हो। इसके दो कारण थे—पहला धनाभाव और दूसरा अध्यवसायी, परिश्रमी और कर्मवीर सम्पादक का न मिलना। यो पहला कारण प्रधान जान

श्रागे वढ़ गये कि उन्होंने द्विवेदी जी से नाराज होकर निजी पत्र-पत्रिकाओं को जन्म दिया। काशी से 'तरंगिणी' नाम की पत्रिका का जन्म ऐसे ही हुआ था। उसके संपादक द्विवेदी जी से नाराज हो गये थे। उनकी शिकायती किवता 'सरस्वती' में छपी है। पर द्विवेदी जी की दृढ़ता, संपादन-कला-संबंधी परिश्रम, आदि के कारण 'सरस्वती' का प्रचार दिन प्रति वढ़ता गया। उसकी सफनता देखकर अन्यं पत्र-पत्रिकाओं को जन्म दिया गया।

भागलपुर से 'कमला' प्रकाशित हुई श्रोर प्रयाग से 'मर्यादा'। पहली तो शीव ही वंद होगई, पर दूसरी पित्रका कुछ दिनों तक श्रच्छी तरह प्रकाशित होती रही। उसको लेखक भी श्रच्छे मिले; 'सरस्वती' के ही कुछ लेखक उसमें प्रायः लिखा करते थे। उनके लेखों में गंभीरता, रोचकता श्रोर मधुरता का मिश्रण रहता था। इधर मेरठ से 'लिलता' नाम की पित्रका प्रकाशित हुई। श्रन्य पित्रकाश्रों ने तो 'सरस्वती' से स्पर्धा करने का श्रमकल प्रयत्न ही किया, पर 'लिलता' इन सबसे श्रागे वढ़ गई—उसने श्रपने कबर पर ही 'सरस्वती' से टक्कर लेने की वात लिख डाली। इसी समय खँडवा से 'प्रभा' प्रकाशित हुई। यह पित्रका भी श्रच्छी थी, पर पूरे साल भर भी न चल सकी। कुछ साल वाद वह फिर 'प्रताप'—कार्यालय, कानपुर से निकली; पर कुछ दिन वाद फिर वंद होगई। पत्रों में काशी से प्रकाशित होने वाला 'इन्दु' वहुत सजधज से निकलता था।

प्रायः इन सभी पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन थोड़े समय वाद ही वन्द कर दिया गया; शायद ही किसी का जीवन ४-६ वर्ष से अधिक का हुआ हो। इसके दो कारण थे—पहला धनाभाव और दूसरा अध्यवसायी, परिश्रमी और कर्मवीर सम्पादक का न मिलना। यों पहला कारण प्रधान जान श्रीर १६०% की हैं, जब वे श्रयने लेख किल्पत नाम से छपाया करते थे। शायद इस काल में केवल पिएडत गिरिजाइन जी वाजपेयी के ही लेख उन्होंने प्रकाशित किये हैं—अन्य प्रायः सभी ख़यं लिखे हैं। १६०% श्रीर १६०६ में उन्होंने पढ़ा यहुत हैं श्रीर नवीन विषयों से 'सरस्वती' के प्रत्येक श्रद्ध को सजाया है। इन दोनों वर्षों में लेखों की थोड़ी-बहुत सहायता उन्हें श्रवस्य मिलती रही। १६०७ श्रीर १६०५ में उन्हें फिर बहुत परिश्रम करना पड़ा। 'सद्धर्मप्रचारक', 'लिलता' धादि पत्रों से इस समय 'सरस्वती' की होड़ हो रही थी; समालोचना व भाषा-सम्बन्धी फगड़े रोज ही शुरू होते थे श्रीर उनका उत्तर देना श्रावश्यक था। परिणाम यह हुआ कि वे श्रीमार हो गये। १६१० में उन्हें पूरे वर्ष भर की छुट्टी भी लेनी पड़ी।

द्विवेदी जी के इन वर्षों में प्रकाशित सम्पादकीय तथा खन्य लेखों को पढ़कर हमें उनकी थोग्यता खौर बुद्धिमत्ता का ज्ञान तो होता ही है, साथ ही 'सरस्वती' में प्रकाशित अन्य सज्जनों के लेखों में भी यत्र-तत्र उन्हीं के व्यक्तित्व के दर्शन होते हैं। इसका कारण यह था कि प्रकाशनार्थ खाये हुए सभी लेखों को वे बड़े गौर से खाद्योपान्त पढ़ा करते थे। सापा, विराम-चिह्न, कम, अस्पष्टता तथा शेली विपयक दोषों को सुवारने में पहले वे दिन खौर रात एक कर देते थे खौर तब लेख को प्रकाशित करते थे। द्विवेदी जी 'सरस्वती' का सम्पादन जुही से करते थे। वे एक दिन भी इण्डियन प्रेस के खाफ़िस में वेठकर काम करने नहीं गये। पर जनके समय में 'सरस्वती' की छपाई में बड़ी सावधानी रहती थी। द्विवेदी जी की सम्पादन-सम्बन्धी कुशलता की प्रशंसा करते हुए 'इण्डियन प्रेस' के वर्तमान स्वामी शीयुत इरिकेशव घोप लिखते हैं—

स्प्रीर १६०४ की है, जब वे स्रपने लेख किल्पत नाम से छपाया करते थे। शायद इस काल में केवल पिएडत गिरिजादत जी वाजपेयी के ही लेख उन्होंने प्रकाशित किये हैं—स्नन्य प्रायः सभी स्वयं लिखे हैं। १६०४ स्रोर १६०६ में उन्होंने पढ़ा बहुत हैं स्रोर नवीन विषयों से 'सरस्वती' के प्रत्येक स्रद्ध को सजाया है। इन दोनों वपों में लेखों की थोड़ी-बहुन सहायता उन्हें स्वयं मिलती रही। १६०७ स्रोर १६०५ में उन्हें फिर बहुत परिश्रम करना पड़ा। 'सद्धर्मप्रचारक', 'लिलता' स्राहि पर्शे में इस समय 'सरस्वती' की होड़ हो रही थी; समालोचना व भाषा-सम्बन्धी कगड़े रोज ही शुरू होते थे स्रोर उनका उत्तर देना स्वावश्यक था। परिणाम यह हुस्रा कि वे चीमार हो गये। १६१० में उन्हें पूरे वर्ष भर की छुट्टी भी लेनी पड़ी।

द्विवेदी जी के इन वर्षों में प्रकाशित सम्पादकीय तथा श्रन्य लेखों को पढ़कर हमें उनकी योग्यता श्रीर बुद्धिमत्ता का ज्ञान तो होता ही है, साथ ही 'सरस्वती' में प्रकाशित श्रन्य सज्जनों के लेखों में भी यत्र-तत्र उन्हों के व्यक्तित्व के दर्शन होते हैं। इसका कारण यह था कि प्रकाशनार्थ श्राये हुए सभी लेखों को वे वड़े शौर से श्राचोपान्त पढ़ा करते थे। मापा, विराम-चिह्न, कम, श्रसप्टता तथा शेली विपयक दोषों को सुवारने में पहले वे दिन श्रीर रात एक कर देते थे श्रीर तब लेख को प्रकाशित करते थे। द्विवेदी जी 'सरस्वती' का सम्पादन जुही से करते थे। वे एक दिन भी इण्डियन प्रेस के श्राफिस में वेठकर काम करने नहीं गये। पर उनके समय में 'सरस्वती' की छपाई में बड़ी सावधानी रहती थी। द्विवेदी जी की सम्पादन-सम्बन्धी छशलता की प्रशंसा करते हुए 'इण्डियन प्रेस' के वर्तमान स्वामी श्रीयुत हरिकेशव घोप लिखते हैं—

द्विवेदी जी के इस निश्चय ने उनके कई प्रगाढ़ मित्रों को रुष्ट कर दिया; पर द्विवेदी जी अपने निश्चय पर उटे रहे। स्वर्गीय परिउत पद्मसिंह शर्मा ने 'सतसई संहार' नामक लेख-माला छपने के लिए भेजी। द्विवेदी जी को उनकी शैली पसन्द न आई और उन्होंने उसमें परिवर्तन करना चाहा। शर्मा जी, इसके विपरीत, यह चाहते थे कि वह लेखमाला ज्यों-की-त्यों अविकल रूप में प्रकाशित हो—वाक्य या शब्द तो क्या उसमें कहीं एक अन्तर भी न बदला जाय। अतः द्विवेदी जी ने उसको छापना अस्वीकार कर दिया और वह लेखमाला लगभग एक वर्ष तक 'सरस्वती' कार्यालय में पड़ी रही। जब द्विवेदी जी ने 'सरस्वती' के सम्पादन से, वीमार हो जाने पर छुट्टी ले लीं तब परिडत देवीप्रसाद शुक्ल वी०ए० के सम्पादन-काल में वह प्रकाशित हो सकी।

सम्पादन-सम्बन्धी इस दृढ्ता के कारण द्विवेदी जी से बहुत से व्यक्ति रुष्ट हो गये और उन्हें अभिमानी और अशिष्ट समभने लगे। पर द्विवेदी जी उनसे नाराज न होकर उन्हें समभा-बुमा देना अच्छा समभते थे। प्रायः उनसे वे विनीत स्वर में कहते—'भाई साहब, आखिर आफ्को सर्वज्ञता का तो दावा है नहीं, हम सभी भूल कर सकते हैं। मैं भूल कर अगर आप बता दें तो मैं कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार करूँ गा।' उनकी यह विनम्रता कुछ लोगों को मुग्ध भी कर लेती थी। जिस व्यक्ति को योग्यता, ज्ञान, पद आदि का अभिमान हो जाता है वह दूसरों के जरा से विरोध पर उनका दुश्मन हो जाता है। पर साहित्यक-चेत्र में ऐसे लोग प्रायः उन्नति नहीं करते। यहाँ तो ऐसे व्यक्तियों की आवश्यकता है जो जीवन भर अपने को विद्यार्थी समभें और स्वाध्याय में लगे रह कर गुरुजनों के अनुभव-जन्य ज्ञान से

द्विवेदी जी के इस निश्चय ने उनके कई प्रगाढ़ मित्रों को रुष्ट कर दिया; पर द्विवेदी जी अपने निश्चय पर डटे रहे। स्वर्गीय पिएडत पद्मसिंह शर्मा ने 'सतसई-संहार' नामक लेख-माला छपने के लिए भेजी। द्विवेदी जी को उनकी शैली पसन्द न आई और उन्होंने उसमें परिवर्तन करना चाहा। शर्मा जी, इसके विपरीत, यह चाहते थे कि वह लेखमाला ज्यों-की-त्यों अविकल रूप में प्रकाशित हो—वाक्य या शब्द तो क्या उसमें कहीं एक अत्तर भी न बदला जाय। अतः द्विवेदी जी ने उसको छापना अस्वीकार कर दिया और वह लेखमाला लगभग एक वर्ष तक 'सरस्वती' कार्यालय में पड़ी रही। जब द्विवेदी जी ने 'सरस्वती' के सम्पादन से, वीमार हो जाने पर छुट्टी ले लीं तब परिडत देवीप्रसाद शुक्ल वी०ए० के सम्पादन-काल में वह प्रकाशित हो सकी।

सम्पादन-सम्बन्धी इस दृढ़ता के कारण द्विवेदी जी से बहुत से व्यक्ति रुष्ट हो गये और उन्हें अभिमानी और अशिष्ट समभने लगे। पर द्विवेदी जी उनसे नाराज न होकर उन्हें समभा-बुभा देना अच्छा समभते थे। प्रायः उनसे वे विनीत स्वर में कहते—'भाई साहब, आखिर आपको सर्वज्ञता का तो दावा है नहीं, हम सभी भूल कर सकते हैं। मैं भूल कर अंधर आप बता दें तो मैं कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार करूँगा।' उनकी यह विनम्रता कुछ लोगों को मुग्ध भी कर लेती थीं। जिस व्यक्ति को योग्यता, ज्ञान, पद आदि का अभिमान हो जाता है वह दूसरों के जरा से विरोध पर उनका दुश्मन हो जाता है। पर साहित्यिक-चेत्र में ऐसे लोग प्रायः उन्नति नहीं करते। यहाँ तो ऐसे व्यक्तियों की आवश्यकता है जो जीवन भर अपने को विद्यार्थी समभें और स्वाध्यायं में लगे रह कर गुरुजनों के अनुभव-जन्य ज्ञान से

नहीं, न जाने क्या समम कर लिख डाला है। वह करेक्शन देख कर प्रसन्तता हुई, मुँभलाहट-सी देख कर मजदारी भी आ। गई; और फिर लेख के जपर यह राय पड़ी कि यह लेख समभ में नहीं आता है, इसलिए लीटा दिया जाता है। यह राय क्या थी, उस अनुवाद के हज़त देना था। वह बड़ों की विनय है।"—हंस, अभिनंदनांक (अप्रेल १६३३, पृ० ३-४)

बहुत से लेखक इसी प्रकार संशोधनों से लाभ उठाया करते थे। एक स्थान पर स्वर्गीय श्री प्रेमचन्द जी ने भी लिखा है—
"नव मैंने नया नया हिन्दी लिखना सीखा था, 'सरस्वती' में भपनी कहानियाँ मेजा करता था, तव दिवेदी जी के किए हुए संशोधनों से खाभ उठाकर भविष्य में शुद्ध—हिन्दी लिखने का प्रयत्न करने के लिए, प्रस्थेक कहानी की दो प्रित करके में एक शपने पास रख बेता या श्रीर कहानी के प्रकाशित होने पर बड़ी सावधानी के साथ, मूल से मिलाकर संशोधनों को समक्षने का प्रयत्न करता था कि अमुक शब्द के स्थान पर श्रमुक शब्द क्यों रक्षा गया है श्रीर इस परिवर्तन से कहानी में कोई विशेषता श्राई है या नहीं।" पंच-परमेश्वर' शीषक कहानी उन्होंने 'पंचों में ईश्वर' के नाम से प्रकाशित होने के लिए भेजी थी। इस शीपक के बदले जाने से जो चमत्कार श्रीर नवीनता श्रागई उसे प्रेमचंद जी ने भी स्वीकार किया है।

यह तो हुई गद्य, लेख, कहानी, आदि में किये हुए संशोधनों की वात, पद्य का भी उनको इसी प्रकार सम्पादन करना पड़ता था। लेकिन पद्य का सुधार करना इतना सरल नहीं था, जितना गद्य का। पद्य में छन्द, भाषा, भाव, प्रवाह, रस आदि सभी का ध्यान रखते हुए एक शब्द भी बदल देना नहीं, न जाने क्या समक कर लिख डाला है। वह करेक्शन देख कर प्रसन्तता हुई, सुँभलाहट-सी देख कर मजदारी भी आ गई; और फिर लेख के जपर यह राय पड़ी कि 'यह लेख समक में नहीं आता है, इसलिए जौटा दिया जाता है।' यह राय क्या थी, उस अनुवाद का इजात देना था। वह करों की विनय है।' —हंस, अभिनंदनांक (अप्रेल १६३३, पृ० ३-४)

बहुत से लेखक इसी प्रकार संशोधनों से लाभ उठाया करते थे। एक स्थान पर स्वर्गीय श्री प्रेमचन्द जी ने भी लिखा है— "नव मैंने नया नया हिन्दी लिखना सीखा था, 'सरस्वती' में भपनी कहानियाँ भेजा करता था, तव दिवेदी जी के किए हुए संशोधनों से लाभ उठाकर भविष्य में शुद्ध—हिन्दी लिखने का प्रयत्न करने के लिए, प्रत्येक कहानी, की दो प्रति करके में एक श्रपने पास रख लेखा था श्रीर कहानी के प्रकाशित होने पर बढ़ी सावधानी के साथ, मूल से मिलाकर संशोधनों को समभने का प्रयत्न करता था कि श्रमुक शब्द के स्थान पर श्रमुक शब्द क्यों रक्ता गया है श्रीर हस परिवर्तन से कहानी में कोई विशेषता शाई है या नहीं।" 'पंच-परमेश्वर' शीर्षक कहानी उन्होंने 'पंचां में ईश्वर' के नाम से प्रकाशित होने के लिए भेजी थी। इस शीर्षक के नाम से प्रकाशित होने के लिए भेजी थी। इस शीर्षक के बदले जाने से जो चमत्कार श्रीर नवीनता श्रागई उसे प्रमुचंद जी ने भी स्वीकार किया है।

यह तो हुई गद्य, लेख, कहानी, आदि में किये हुए संशोधनों की वात, पद्य का भी उनको इसी प्रकार सम्पादन करना पड़ता था। लेकिन पद्य का सुधार करना इतना सरल नहीं था, जितना गद्य का। पद्य में छन्द, भाषा, भाव, प्रवाह, रस आदि सभी का ध्यान रखते हुए एक शब्द भी बदल देना पीठ पर टपका पढ़ा ती आँख मेरी खुल गईं चार बूँदों से मिले मन की लॅगीटी थुल गई। इसमें नीचे की पंक्ति उन्होंने बदलकर छापी— विशद बूँदों से मिले मन मौज मिश्रो धुल गई।''

वात यह है कि भावावेश में साधारण कवि प्रायः ऋपने को भूल कर विषय के वाहर की वातें लिख जाता है। कविता में से इन्हें हटाकर सारे पद्य का सुसंविधित कर देना साधा-रण कार्य नहीं - कविता में परिवर्तन कर देने पर भी रस, प्रवाह, भाषा आदि में किसी प्रकार का दोष न आने देने के लिए वंड़ी कुरालता स्त्रीर प्रचुर स्त्रभ्यास की स्त्रपेक्ता है। द्विवेदी जी ने इस कार्य को भी सफलता के साथ सम्पन्न किया। एक बार एक प्रसिद्ध कवि की रचना से उन्होंने साढ़े तीन छन्द (१४ पंक्तियाँ) निकालकर अपनी स्रोर से आधा छन्द (दो र्चरण) जोड़ दिया त्रौर विशेषता यह कि भाषा में किसी प्रकार का अंतर न आया, विचारों का तार न दृटा और छन्द में कहीं व्यतिक्रम न पड़ा। यह थी सम्पादन-कला और कुशलता। इसके लिए द्विवेदी जी को वहुत ही अधिक परिश्रम करना पड़ता था; चीवीसों घण्टे वे व्यस्त रहते थे। सम्पादन-कार्य के आगे जन्होंने कभी दिन की दिन और रात की रात नहीं समभा, वरन इसके लिए अपने स्वास्थ्य का — अँगरेजी कवि मिल्टन की भाँति . श्रपनी नेत्र-ज्योति का—वित्तान कर दिया; परन्तु कभी दूसरों के त्रागे एक बार भी इसकी शिकायत नहीं की। १८ वर्ष के सम्पादकीय युग में केवल एक वार ही ऐसा अवसर आया था जव द्विवेदी जी ने 'सरस्वती' के दो श्रङ्क संयुक्त निकाले थे। साथ ही प्रत्येक श्रङ्क का प्रत्येक लेख सुसम्पादित रहता था श्रीर इनका सम्पादन भी इतनी कुशलता से किया जाता था पीठ पर टप का पढ़ा ती आँख मेरी खुल गईं चार बूँदों से मिले मन की लँगोटी खुल गईं। इसमें नीचे की पंक्ति उन्होंने बदलकर छापी— विशद बूँदों से मिले मन मौज मिश्रो खुल गई।''

वात यह है कि भावावेश में साधारण कवि प्राय: अपने को भूल कर विषय के वाहर की वातें लिख जाता है। कविता में से इन्हें हटाकर सारे पद्य के। सुसंवंधित कर देना साधा-रण कार्य नहीं—कविता में परिवर्तन कर देने पर भी रस, प्रवाह, भाषा आदि में किसी प्रकार का दोष न आने देने के लिए बड़ी कुशलता और प्रचुर अभ्यास की अपेत्ता है। हिवेदी जी ने इस कार्य को भी सफलता के साथ सम्पन्न किया। एक बार एक प्रसिद्ध कवि की रचना से उन्होंने साढ़े तीन छन्द (१४ पंक्तियाँ) निकालकर अपनी खोर से आधा छन्द (दो चर्रा) जोड़ दिया और विशेषता यह कि भाषा में किसी प्रकार का अंतर न त्राया, विचारों का तार न दूटा और छन्द में कहीं व्यतिक्रम न पड़ा। यह थी सम्पादन-कला श्रीर कुशलता। इसके लिए द्विवेदी जी को वहुत ही अधिक परिश्रम करना पड़ता था; चैावीसों घएटे वे व्यस्त रहते थे। सम्पादन-कार्य के आगे जन्होंने कभी दिन की दिन और रात की रात नहीं समभा, वरन इसके लिए अपने स्वास्थ्य का—अँगरेजी कवि मिल्टन की भाँति श्रपनी नेत्र-ज्योति का-विल्यान कर दिया; परन्तु कभी दूसरों के आगे एक बार भी इसकी शिकायत नहीं की। १= वर्ष के सम्पादकीय युग में केवल एक वार ही ऐसा अवसर आया था जव द्विवेदी जी ने 'सरस्वती' के दो अङ्क संयुक्त निकाले थे। साथ ही प्रत्येक अङ्क का प्रत्येक लेख सुसम्पादित रहता था श्रीर इनका सम्यादन भी इतनी छुशलता से किया जाता था

तथा भावों का संशोधन कैसी सावधानी से करते थे और उनकी संशोधन-शैली किस प्रकार की थी। मूल्पृष्ठ में लेख हैं और शंका-स्थलों पर नम्बर/लगाकर हाशिये पर दिवेदी जी के संशोधन तथा रिमार्क दिये हैं। यह लेख पंडित देवीदत्त शुक्त का लिखा हुआ है जिसे उन्होंने दिवेदी जी की संशोधन-शैली का परिचय देने के लिए, इसी रूप में 'माधुरी' में छपाया था।

तथा भावों का संशोधन कैसी सावधानी से करते थे और उनकी संशोधन शैली किस प्रकार की थी। मूल्पृष्ठ में लेख हैं और शंका-स्थलों पर नम्बर लगाकर हाशिये पर दिवेदी जी के संशोधन तथा रिमार्क दिये हैं। यह लेख पंडित देवीदत्त शुक्त का लिखा हुआ है जिसे उन्होंने दिवेदी जी की संशोधन-शैली का परिचय देने के लिए, इसी रूप में 'माधुरी' में खपाया था।

(३) वे भी वहाँ की भाषा के ज्ञान से

(8) ×

(४) है।

(६) पर

(७) यें (८) उ

(६) हिन्दुओं (१०) अर्थात् गृह निर्माण (११) साहित्य-निपयक (१२) आ-दिस (१३) ×

(१४) अवं इतनी (१४) उसका

श्रॅंगरेज़ लाेगां को इस उदासीनता के कारणों में से मुख्य कारण यह है कि जो च्रॅंगरेज भारत में वरसों नौकरी पर रहते हैं (३) वे यहाँ देशी भाषा के ज्ञान में कोरे ही लौटते हैं। खेद के साथ कहना पड़ता है कि ऋँगरेजों और भारतवासियों के वीच श्रौर किसी वात में उतना भेद नहीं है (४) जितना कि ज्ञान सम्वन्धी साधनों के प्रति उदासीन रहने में (४)। श्रीर दुर्भाग्य से यह भेद दिन (६) दिन बढ़ता ही जा रहा है। भारत में अगिएत भाषाएँ (७) हैं। (८) इनमें उर्दू एक महत्त्वपूर्ण भाषा है। इसका कारण यह है कि उसकी उत्पत्ति का सम्बन्ध संस्कृत से भी वैसा ही है जैसा कि अरवी और फारसी से। श्रव वह केवल मुसलमानों ही की जवान-नहीं रही, लाखों हिन्दु खों का भी उसपर अधिकार है। (६) हिन्दू और मुसलमानें का संमिश्रण स्थापत्य (१०) विद्या में भी विद्यमान है। इसका उदाहरण त्रागरे का ताजमहल है। (११) साहित्यिक संमिश्रग र्कविता में तो प्रकट ही है। यद्यपि (१२) मुसर्लेमोन आक्रमण्कारियों (१३) <u>तथा</u> विजेतात्रों के सैनिकों के लश्कर से उर्दू उत्पन्न हुई है तथापि उसकी (१४) ऐसी भारी उन्नित हो गई है कि (१४) वह

 $(8) \times$ (४) है। (६) पर (७) यें (८) उ (६) हिन्दुओं (१०) अर्थात् गृह निर्माण '(११) साहित्य- . विषयक (१२) आं-द्विम _ (१३) 🗴 (१४) अव इतनी

(३) वे भी वहाँ की

भापा के ज्ञान से

श्रँगरेज़ लागाँ को इस उदासीनता के कारणों में से मुख्य कारण यह है कि जो श्रॅंगरेज भारत में वरसों नौकरी पर रहते हैं (३) वे यहाँ देशी भाषा के ज्ञान में कारे ही लौटते हैं। खेद के साथ कहना पड़ता है कि ऋँगरेजों ऋौर भारतवासियों के वीच श्रौर किसी वात में उतना भेद नहीं है (४) जितना कि ज्ञान सम्वन्धी साधनों के प्रति उदासीन रहने में (४)। श्रीर दुर्भाग्य से यह भेद दिन (६) दिन बढ़ता ही जा रहा है। भारत में अगिएत भापाएँ (७) हैं। (८) इनमें उर्दू एक महत्त्वपूर्ण भाषा है। इसका कारण यह है कि उसकी उत्पत्ति का सम्बन्ध संस्कृत से भी वैसा ही है जैसा कि अरवी और फारसी से। श्रव वह केवल मुसलमानों ही की जवान-नहीं रही, लाखों हिन्दुत्र्यों का भी उसपर अधिकार है। (६) हिन्दू और मुसलमानें। का संमिश्रग स्थापत्य (१०) विद्या में भी विद्यमान है। इसका उदाहरण श्रागरे का ताजमहल है। (११) साहित्यिक संमिश्रग कविंता में तो प्रकट ही है। यद्यपि (१२) मुसंलेमीन आक्रमणकारियों (१३) तथा विजेताओं के सैनिकों के लश्कर से उर्दू उत्पन्न हुई है तथापि उसकी (१४) ऐसी भारी उन्नित हो गई है कि (१४) वह

(२३) उस समय
के भी कुछ कवियों
की रचनाओं में
हृदयहारी भाव
पाये जाते हैं।
(२४) किसी ने
मी

(२६) वे मूल्य वान (२७) उनका (२=) ग़ालिव

(२६) ग़ाालव उस समय हुए थे (२६) वस्तुयें

(३०) श्रौर दु:ख के व्यंजक

(३१) अच्छी (३२) उन्होंने अपने मन को दारोनिक विचारों के स्रोत में

(२३) कुछ किवयों ने चमत्कारी भाव प्रकट किये थे, किंतु मौलि-कता की श्रोर (२४) घ्यान नहीं दिया। उस समय के कवियों में महाकिव गालिव का वड़ा नाम है। उनके पद्यों में केवल शब्द-वैचित्र्य तथा रूपकालंकार ही नहीं है, किंतु वे सुंदर तथा गंभीर भावों

से (२४) स्रोत-प्रोत हैं। वे पद्य हमारी

पसंद के हों चाहे न हों पर (२६) उनसें

दृद्ता त्रवस्य है। हम पर (२७) उस

दृद्ता का प्रभाव पड़ता है।

(२६) उनकी कविता का मुख्य स्वर् सर्वा ग्रुभवाद है। उनका समय वह था जब पुरानी (२६) वस्तुएँ समय के अवाह से ट्रफूटकर टुकड़े-टुकड़े हो रही थीं और श्रंतिम मुगल सम्राट् वहादुरशाह बंदी बनाकर रंगून भेजे जा चुके थे। उसी समय ग़ालिव ने मार्मिक पीड़ा (३०) तथा दुःखत्स्चक श्रपने खास विचार जगत् के सामने कविता के रूप में व्यक्त किये। मुगल-सम्राट् के पतन के साथ उन्होंने उन सब बातों का श्रंतधान होते देखा जिनको वे (३१) श्रेष्ट तथा स्वच्छ सममते थे। (३२) वे किस तरह बार-बार श्रंपने श्रापको श्रंपने

मस्तिष्क के दार्शिनिक विचारों

के भी कुछ कवियों की रचनात्रों में हृदयहारी भाव पांये जाते हैं। (२४) किसी ने भी (२५) भरे हुए (२६) वे मूल्य् वान (२७) उनका (२८) ग़ालिव उस समय हुए थे (२६) वस्तुयें (३०) श्रौर दुःख के व्यंजक (३१) স্তব্জী (३२) उन्होंने अपने मन को दाशनिक विचारों के स्रोत में

(२३) उस समय

(२३) कुछ कवियों ने :चमत्कारी प्रकट किये थे, किंतु मौलि-कता की श्रोर (२४) ध्यान नहीं दिया। उस समय के कवियों में महाकवि ग़ालिव का वड़ा नाम है। उनके पद्यों में केवल शब्द-वैचित्र्य तथा रूपकालंकार ही नहीं है, किंतु वे सुंदर तथा गंभीर भावों से (२४) श्रोत-प्रोत हैं। वे पद्य हमारी पसंद के हों चाहे न हों पर (२६) उनमें दृढ़ता श्रवश्य है। हम पर (२७) उस दृढ़ता का प्रभाव पड़ता है। (२८) उनकी कविता का मुख्य स्वर सर्वा ग्रुभवाद है। उन्का समय वह था जब पुरानी (२६) वस्तुएँ समय के प्रवाह से ट्टफूटकर दुकड़े-दुकड़े हो रही थीं श्रीर श्रंतिम मुग़ल-सम्राट् वहादुरशाह वंदी बनाकर रंगून भेजे जा चुके थे। उसी समय ग़ालिव ने मार्मिक पीड़ा (३०) तथा दुःख्रसूचक अपने खास विचार जंगत् के सामने कविता के रूप में व्यक्त किये। मुराल-सम्राट् के पतन के साथ उन्होंने उन सब बातों का अंतर्धान होते देखा जिनको वे (३१) श्रेष्ठ तथा स्वच्छ समभते थे। (३२) वे किस तरह बार-बार श्रपने श्रापको श्रपने मस्तिष्क के दार्शनिक विचारों में गर्क

(४६) हाय ! (४०) × (४१), सव नहीं। (४२) × (४३) उनमें से (४४) नीचे (४४) ×

(४६) हैं ×यें

(४७), इँगलैंड में, (४८) । (४६) × (६०) क्या मत-लव ? (६१) जगत एक ही हैं। उसमें उत्तरी, द्त्रिणी, भाग करना जुबर-

दस्ती है। पारचात्य देश क्यों न लिखें। "(४६) सव नहीं, हम लोगों के पास (४०) हाय, केवल कुछ ही गुले लाल तथा गुलाव के रूप में आये हैं (४१) "(४२) हे भगवन, (४३) कुछ लोगों के मुख कैसे सुन्दर रहे होंगे जो अव

(४४) धूल में (४४) नीचे दवे छिपे पड़े हैं।"
परन्तु ग़ालिव भूतकाल के कवि हैं।
लोग उनकी कविताएँ इसी दृष्टि से नहीं

पढ़ते कि वे प्राचीन किंव की (४६) रची हुई हैं। उनकी रचनाएँ स्मारत में उसी हिंछ से पढ़ी जाती हैं जैसे कि यहाँ (४७) (इँग्लेंड में) मिल्टन की (४८) हाँ यह (४६) वात ठीक है कि नई सन्तान को उनकी कविताओं में अर्वाचीन मानवसमाज की (६०) मिश्रित श्रांभलापाओं के भावों का दिग्दर्शन नहीं होता। जब से भारत का पारचात्य (६१) जगत् के साथ सम्बन्ध हुआ है तब से

उर्दू-साहित्य में नये-नये प्रभाव त्राप ही त्राप पड़ने लगे हैं। वह पुरानी कविता जिसका त्रादर्श फारसी कविता थी त्राध्या-त्मिक तथा प्रेम के भावों से परिपूर्ण रहती थी त्रव क्रमशः निर्वल पड़ने लगी, यहाँ तक कि विगत शताब्दी के द्वें वर्ष में उसकी

इतिश्री हो गई। महाकवि हाली ने खुलम-खुला उसके विरुद्ध कह कर उसका प्रभाव नष्ट कर डाला। (४६) हाय ! (५०)×

(४१), सव नहीं। (४२) × (४३) उनमें से

(४४) नीचे (४४)×

(४६)हेंimesयें

(४७), इँगलेंड में, (४८) । (४६) × (६०) क्या मत-लव १ (६१) जगत

लव ? (६१) जगत एक ही हैं । उसमें उत्तरी, दन्निगी,

भाग करना जबर-दस्ती है। पाश्चात्य

देश क्यों न लिखें।

"(४६) सव नहीं, हम लोगों के पास (४०) हाय. केवल कुछ ही गुले लाल तथा गुलाव के रूप में आये हैं (४१)

"(४२) हे भगवन, (४३) छछ लोगों के मुख कैसे सुन्दर रहे होंगे जा श्रव (४४) धूल में (४४) नीचे दवे छिपे पड़े हैं।"

परन्तु ग़ालिब भूतकाल के किव हैं।
लोग उनकी किवताएँ इसी दृष्टि से नहीं
पढ़ते कि वे प्राचीन किव की (४६) रची हुई
हैं। उनकी रचनाएँ आगरत में उसी
दृष्टि से पढ़ी जाती हैं जैसे कि यहाँ (४७)
(इँग्लेंड में) मिल्टन की (४८) हाँ यह
(४६) वात ठीक है कि नई सन्तान को
उनकी किवताओं में अर्वाचीन मानवसमाज की (६०) मिश्रित आभलापाओं
के भावों का दिग्दर्शन नहीं होता।
जव से भारत का पाश्चात्य (६१)

जगत के साथ सम्वन्ध हुआ है तब से उर्दू-साहित्य में नये-नये प्रभाव आप ही आप पड़ने लगे हैं। वह पुरानी कविता जिसका आदर्श फारसी कविता थी आध्या-तिमक तथा प्रेम के भावों से परिपूर्ण रहती थी

श्रव क्रमशः निर्वल पड़ने लगी, यहाँ तक कि विगत शताब्दी के द०वें वर्ष में उसकी इतिश्री हो गई। महाकिव हाली ने खुल्लम-खुल्ला उसके विरुद्ध कह कर उसका प्रभाव नष्ट कर डाला। (७) श्रीर

ऐसी करुणा जनक, ऐसी उत्तेजक (७) ऐसी सची कवित्वपूर्ण है कि उसने मुसलसान समाज के अहिद्यों तक की अपनी निद्रा से चौंका दिया।

मैंने सिद्धांतहीन, धार्मिक तथा भ्राहत्य के भावों से शून्य और विध्यामक मनुष्य देखे हैं। ये ऐसे लोग हैं जो अपने भाग-विलास के कारण दुःख शब्द का उचारण तक सुनना ग्वारा नहीं कर सकते और यदि किसी गायक ने इन लोगों के सामने कोई दुःखब्यंजक पद गा दिया तो उसकी खेर न समित्रण। अपमान-स्चक शब्दों से वह तिरस्कृत कर दिया जायगा। परन्तु ये ही लोग सुसहस के पढ़े जाने पर एतराज नहीं करते और जब तक उसका पढ़ना जारी रहता है तब तक ये लोग बैठे रोया करते हैं।

मैंने अपने देश के अन्य धर्मा-चलिन्चयों को इसके सुनने से अश्रुपात करते देखा है। और कैसा अश्रुपात जो हदयगंत दु:ख के कारण स्वतः प्रवृत्त हुए थे (८) और सचे थे।"

(८) श्रतएव

शाच्य में कविता अव तक भी हम लोगों के लिए एक जीवनी शक्ति है और हम उन भावों को व्यक्त करने में जरा भी लिज्जित नहीं होते जो वह उत्तेजित करती है। (७) और

ऐसी करुणाजनक, ऐसी उत्तेजक (७) ऐसी सची कवित्वपूर्ण है कि उसने मुसल्यान समाज के अहिंदगों तक की अपनी लिद्रा से चौंका दिया।

मेंने सिद्धांतहीन, धार्मिक तथा भ्राव्यत्व के भावों से शून्य श्रीर विषयामक मनुष्य देखे हैं। ये ऐसे लोग हैं जो श्रपने भाग-विलास के कारण दुःख शब्द का उद्यारण तक सुनना ग्वारा नहीं कर सकते श्रीर यदि किसी गायक ने इन लोगों के सामने कोई दुःखब्यंजक पद गा दिया तो उसकी खेर न समिभार। श्रपमान-स्चक शब्दों से वह तिरस्कृत कर दिया जायगा। परन्तु ये ही लोग सुसदस के पढ़े जाने पर एतराज नहीं करते श्रीर जब तक उसका पढ़ना जारी रहता है तब तक ये लोग वैठे रोया करते हैं।

मैंने अपने देश के अन्य धर्मा-वलिन्वयों को इसके सुनने से अश्रुपात करते देखा है। और कैसा अश्रुपात जो हदयगंत दुःख के कारण स्वतः प्रवृत्त हुए थे (=) श्रीर सचे थे।"

(८) अतएव

पाच्य में कियता श्रव तक भी हम लोगों के लिए एक जीवनी शक्ति है श्रीर हम उन भावों को व्यक्त करने में जरा भी लिज्जित नहीं होते जो वह उत्तेजित करती हैं। मुमे भेजिए।

फिर लिखिए और इन मंथों में वर् नई आत्मा चनक रही है जिसने भारत को जगा दिया है। म० प्र० द्वि० (१७) इक्रवाल के 'नरान' उर्दू साधी १६। ३।२० भारत का जातीय गीत के रूर में स्वी-कार किये गये हैं।

मुभे भेजिए। म० प्र० द्वि० १६।३।२० .

फिर लिखिए और इन मंथों में वह नई आत्मा चनक रही है जिसने भारत को जगा दिया है। (१७) इक्रवाल के 'तरान' उर्दू साधी भारत का जातीय जीत के हा में स्वी-कार किये गये हैं।

नाम से 'ऋनस्थिरता' शब्द की हँसी उड़ाते हुए एक लेख-माला ही निकाल दी। यह 'भारत-मित्र' में प्रकाशित हुई। इस लेख-माला का कुछ छांश भड़े विनोद का नमूना था। भाषा इसकी वड़ी ही उम्र थी। वात यह थी कि द्विवेदी जी ने अपने लेख में गुप्त जी के वँगला-अनुवाद का एक अवनरण देकर उसमें अनुवाद के दोप दिखलाये थे। वस, गुप्त जी आपे से वाहर होकर द्विवेदी जी पर वाग्वाण वरसाने लगे। 'हम पञ्चन के ट्वाला मां' जेसे वैसवाड़ी के वाक्यों का प्रयोग करके गुप्त जी ने द्विवेदी जी का उस लेख-माला में गहरा उपहास किया। इस लेखमाला में सहद्व्यता, सौजन्य और शिष्टता तक का ध्यान नहीं रक्खा गया। इस पर द्विवेदी जी वड़े चुन्ध हुए। 'कल्लू अल्हइन' के कल्पित नाम से उन्होंने 'सरगौ नरक ठेकाना नाहिं' शीर्षक आल्हा छन्द में एक मड़ीवा लिखकर गुप्त जी के भद्दे बिनोद का ताटश ही उत्तर दिया। गुप्त जी ने इस पर अपनी राय देते हुए लिखा—

'भाई वाह! बरुलू श्रवहहत का श्रावहा खूब हुश्रा। क्यों न हो, श्रपनी स्वामाविक योली में है न।"

हिवेदी जी का यह आल्हा जनवरी १६०६ की 'सरस्वती' में (भाग १, संख्या १, पृष्ठ ६८) प्रकाशित हुआ। दूसरे ही महीने में उन्होंने 'भाषा और न्याकरण' शीर्षक एक लेख लिखा, जो करवरी १६०६ की 'सरस्वती' में (भाग १, संख्या २, पृष्ठ ६०) प्रकाशित हुआ। इस लेख में हिवेदी जी ने गुप्त जी की युक्तियों का वड़े सुन्दर ढंग से न्यझय की पुट देते हुए खंडन किया। परिणाम-स्वरूप हिन्दी के तत्कालीन सभी धुरंधर विद्वान हिवेदी जी के पद्त में हो गये। हिन्दी-संसार में हलचल मच गई। हिवेदी जी के पद्त पातियों ने गुप्त जी को मुँहतीड़

नाम से 'श्रनस्थिरता' शब्द की हँसी उड़ाते हुए एक लेख-माला ही निकाल दी। यह 'भारत-मित्र' में प्रकाशित हुई। इस लेख-माला का कुछ श्रंश भई विनोद का नमूना था। भाषा इसकी वड़ी ही उप थी। वात यह थी कि द्विवेदी जी ने अपने लेख में गुप्त जी के वँगला-अनुवाद का एक अवतरण देकर उसमें अनुवाद के दोप दिखलाये थे। वस, गुप्त जी आपे से वाहर होकर द्विवेदी जी पर वाग्वाण वरसाने लगे। 'हम पश्चन के द्वाला माँ' जेसे वैसवाड़ी के वाक्यों का प्रयोग करके गुप्त जी ने द्विवेदी जी का उस लेख-माला में गहरा उपहास किया। इस लेखमाला में सहद्यता, सौजन्य और शिष्टता तक का ध्यान नहीं रक्खा गया। इस पर द्विवेदी जी वड़े चुव्ध हुए। 'कल्लू अल्हइन' के कल्पित नाम से उन्होंने 'सरगी नरक ठेकाना नाहिं' शीर्षक आल्हा छन्द में एक भड़ी वा लिखकर गुप्त जी के भदे विनोद का ताहरा ही उत्तर दिया। गुप्त जी ने इस पर अपनी राय देते हुए लिखा—

'भाई वाह! कल्लू अरुहइत का आरुहा खूब हुआ। क्यों न हो, अपनी स्वाभाविक बोली में है न।"

हिवेदी जी का यह ज्ञाल्हा जनवरी १६०६ की 'सरस्वती' में (भाग १, संख्या १, पृष्ठ ६=) प्रकाशित हुआ। दूसरे ही महीने में उन्होंने 'भाषा ज्ञोर व्याकरण' शीर्षक एक लेख लिखा, जो फरवरी १६०६ की 'सरस्वती' में (भाग १, संख्या २, पृष्ठ ६०) प्रकाशित हुआ। इस लेख में द्विवेदी जी ने गुप्त जी की युक्तियों का बड़े सुन्दर ढंग से व्यङ्गय की पुट देते हुए खंडन किया। परिणाम-स्वरूप हिन्दी के तत्कालीन सभी धुरंघर विद्वान द्विवेदी जी के पन्त में हो गये। हिन्दी-संसार में हलचल संच गई। द्विवेदी जी के पन्त पातियों ने गुप्त जी को मुँहतोड़

पत्त में थे। चक्रवर्ती जी 'भारतिमन्न' के सम्पादक थे, उन्होंने कई सम्पादकीय नीट लिख कर अपने विचारों की प्रकट किया। ये महाशय तो विभक्ति-सम्मेलन तक करने के पत्त में थे। अपने कथन की पृष्टि में इन्होंने स्वर्गीय अम्विकादत्त व्यास के लिखे हुए एक पोस्टकार्ड का व्लाक भी प्रकाशित किया, जिसमें विभक्ति सटी हुई लिखी गई थी। यह व्लाक १६०६ के अगस्त मास के 'भारतिमन्न' में छुपा था। १९ अगस्त के अङ्क में साहित्योपाध्याय वदरीनाथ शर्मा ने जो मिर्जापुर के निवासी थे, इस कार्ड का खरडन करते हुए अपना लेख लिखा। विपत्तियों में पिरडत रामचन्द्र शुक्त का लेख वड़ा सुन्दर था। यह लेख 'अभ्युद्य' के १६०६ के २३ और ३० जुलाई तथा ६ अगस्त के अङ्कों में प्रकाशित हुआ था। फिर १०, ११, २४ सितम्बर के अङ्कों में मो इन्हीं विचारों का सम- र्थन करते हुए शुक्त जो ने नोट लिखे।

प्राय: ये सभी लेख पिएडत गोविन्द्रनारायण मिश्र के विचारों को काटते थे। मिश्र जी ही इस आन्दोलन के नायक और सटाऊ-सिद्धान्त के पत्तपाती थे। उन्होंने 'विभक्ति-विचार' नाम की एक छोटी-सी पुस्तक ही इस विपय•पर लिख डाली। इसमें इन्होंने हिन्दी की विभक्तियों की शुद्ध विभक्तियाँ सिद्ध किया और यह सलाह दी कि इन्हें राव्दों से मिलाकर लिखना ही उचित होगा। इनके विचारों का खण्डन करते हुए पिएडत रामचन्द्र शुक्त और वायू भगवानदास हालना ने लेख लिखे थे।

द्विवेदी जी, एक प्रकार से, इस वादविवाद से अलग ही रहे। यह बात वास्तव में वड़े आश्चर्य की है कि उन्होंने इस आन्दोलन में भाग क्यों नहीं लिया। शायद उन्होंने इसकी पत्त में थे। चक्रवर्ती जी 'भारतिमत्र' के सम्पादक थे, उन्होंने कई सम्पादकीय नेाट लिख कर अपने विचारों की प्रकट किया। ये महाशय तो विभक्ति-सम्मेलन तक करने के पत्त में थे। अपने कथन की पृष्टि में इन्होंने स्वर्गीय अम्विकादत्त व्यास के लिखे हुए एक पोस्टकाई का ब्लाक भी प्रकाशित किया, जिसमें विभक्ति सटी हुई लिखी गई थी। यह ब्लाक १६०६ के अगस्त मास के 'भारतिमत्र' में छपा था। ३१ अगस्त के अद्भ में साहित्योपाच्याय वदरीनाथ शर्मा ने जो मिर्जापुर के निवासी थे, इस काई का खरडन करते हुए अपना लेख लिखा। विपत्तियों में परिडन रामचन्द्र शुक्त का लेख वड़ा सुन्दर था। यह लेख 'अभ्युद्य' के १६०६ के २३ और ३० जुलाई तथा ६ अगस्त के अद्धों में प्रकाशित हुआ था। फिर १०, ११, २४ सितम्बर के अद्धों में भी इन्हीं विचारों का सम- र्थन करते हुए शुक्त जो ने नेट लिखे।

प्रायः ये सभी लेख पिएडत गोविन्द्रनारायण मिश्र के विचारों को काटते थे। मिश्र जी ही इस त्र्यान्दोलन के नायक त्रोर सटाऊ-सिद्धान्त के पत्तपाती थे। उन्होंने 'विभक्ति-विचार' नाम की एक छोटी-सी पुस्तक ही इस विषय•पर लिख डाली। इसमें इन्होंने हिन्दी की विभक्तियों की शुद्ध विभक्तियाँ सिद्ध किया त्रोर यह सलाह दी कि इन्हें शब्दों से मिलाकर लिखना ही उचित होगा। इनके विचारों का खण्डन करते हुए पिएडत रामचन्द्र शुक्त त्रोर वायू भगवानदास हालना ने लेख लिखे थे।

द्विवेदी जी, एक प्रकार से, इस वादविवाद से ऋलग ही रहे। यह बात वास्तव में बड़े आश्चर्य की है कि उन्होंने इस श्रान्दोलन में भाग क्यों नहीं लिया। शायद उन्होंने इसकी "भाषा इसंकी परिमार्जित हाँ है। प्रमें क स्थलों की रचता व्याकरण-स्थुत भी है। संभव है, तीन प्रादिमयों भी शिरकद इमारी भाषा के श्रविकांश दोपों का कारण हो। श्रव्छे वेखक की भाषा कैसी होनी चाहिए, वैसी भाषा इस उस्तक की नहीं। दो-चार उदाहरण कोलिए:—

"(१) हिंदी-कविता के समान संसार में किनी भाषा की रचना ऐसी सौण्डन, और श्रुति-मधुर नहीं है। — भूमि ता, पृष्ठ ३०। किसी भाषा की रचना ऐसी सौण्डन...... नहीं है— यह वित्जुत ही अधुद्ध है। 'सौष्ठन' की जगह 'सुष्टु' चाहिए। इसके सिना सारे संसार की मापाओं के विषय में वही मनुष्य कुछ कह सकता है जो उन सबको जानता है। क्या लेखक उन सबको जानने का दावा कर सकते हैं?

"(२) हमने उनका वर्णन थोड़े में 'स्थाली पुलाक न्याय' दिखा दिया है। पृष्ठ २९५।

द्पित भाषा वा यह बहुत हुरा उदाहरण है। इस विषय के श्रिषक उदाहरण देकर हम लेख नहीं बढाना चाहते। इतने ही उदाहरण देकर 'स्थाली पुलाक न्याय' से पाठक समक्ष सकेंगे कि इसकी भाषा सदोप है या निदेषि श्रीर यदि मदोप है तो कितनी।''

इसी प्रकार अनेक स्थलों के दोप दिखाने के पश्चात् 'वाक्य और वाक्यांश-दोप', 'शब्द-दोप', 'फुटकर दोप' पर प्रकाश डालते हुए द्विवेदी जी ने लिखा—

''ब' श्रीर 'व' की तो बड़ी ही दुर्दशा हुई है। व्रजभाषा', 'वन्नभाचार्य', विरह', विषय', 'विष' श्रीर 'वियोग' श्रादि हज़ारों शब्द इसमें ऐसे हैं जिनमें 'व' के बदले 'ब' का प्रयोग हुश्रा है। लेखक महोदयों ने स्वयं श्रपने नामों के 'विहास' शब्दों में भी 'ब' का "भाषा इसंकी परिमार्जित हाँ है। प्रनेक स्थलों की रणहा ज्याकरण-स्युत भी है। संभव है, तीर प्राविमयों भी शिरकत इतारी भाषा के श्रिधिकांश दोपों का कारण हो। श्रच्छे लेखक की भाषा जैसी होनी चाहिए, वैसी भाषा इस उस्तक की नहीं। दो-चार उदाहरण कोलिए:—

"(१) हिंदी-कविता के समान संसार में कियी भाषा की रचना ऐसी सौष्ठव, छौर श्रुति-मधुर नहीं है। — भूमि हा, प्रष्ट ३०। किसी भाषा की रचना ऐसी सौष्ठव...... नहीं है — यह विव्कृत ही मश्रुद है। 'सौष्ठव' की जगह 'सुष्टु' चाहिए। इसके तिवा सारे संसार की मापाओं के विषय में वही मनुष्य कुछ कह सकता है जो उन सबके। जानता है। क्या लेखक उन सबके। जानने का दावा कर सकते हैं?

"(२) हमने उनका वर्णन थोड़े में 'स्थाली प्रताक न्याय' दिखा दिया है। पृष्ठ २१५।

दूपित भाषा ना यह बहुत बुरा उदाहरण है। इस विषय के अधिक उदाहरण देकर हम लेख नहीं बढाना चाहते। इतने ही उदाहरण देखकर 'स्थाली पुलाक न्याय' से पाठक समक्त सबेंगे कि इसकी भाषा सदोप है या निर्दोष ग्रीर यदि यदोष है तो कितनी।''

इसी प्रकार द्यानेक स्थलों के दोप दिखाने के पश्चात् 'वाक्य और वाक्यांश-दोप', 'शब्द-दोप', 'फ़टकर दोप' पर प्रकाश डालते हुए द्विवेंदी जी ने लिखा—

"'ब' श्रीर 'व' की ते। वड़ी ही हुर्दशा हुई है। वजभाषा', 'वलभाचार्य', 'विरह', विषय', 'विध' श्रीर 'वियोग' श्रादि हज़ारों संब्द इसमें ऐसे हैं जिनमें 'व' के बदले 'ब' का प्रयोग हुशा है। लेखक महोदयों ने स्वयं श्रपने नामों के 'विहारी', शब्दों में भी 'ब' का 'दिवेदी जी—'शवम' यहाँ प भोजार का निवेदा, है। दलका वह 'बच्च्य' वर्षों नहीं ?

इसी प्रकार जब पंडित रागना में राजने ने 'हिंदी-शिक्तक' न्याकरण नाम की पुस्तक में लिखानन

'तू' का संप्रदान में 'तुन्तारे लिए' पार तंत्रेण क क्रमारा 'तुन्हर्स श्रीर 'तुरहारी' है। जाती है।

तय द्वियेदी जी ने प्रणन नोट दिया कि पहाँ पर केरे लिए? श्रीर 'तेरा, तेर, नेरी' वर्यों च ते ? इसके सिवा को जाती हैं? क्यों ? 'हो जाता हैं? या 'हो जाते हैं' क्यों न होना चाहिए ? सरस्वती (११-६-४३०)

एक श्रंक में 'मंस्कृत-प्रवेशिनी' (सम्पादफ, काञ्यनीर्थ पी-लाल जैन) पर नाट देते हुए लिखा—

"द्रमके लेखक व्याकरगा-शास्त्री हैं। श्राशा है, श्राप व्याकरण की महत्त्व ख़ुब जानते होंगे। वे यह भी जानते होंगे कि व्याकरण की सत्ता सभी भाषाश्चें पर हैं। हिंदी भी एक भाषा है। श्रतएन वह भी श्रपने व्याकरण के नियमों के श्रधीन है। पर इस नियमन की बाद श्राप शायद भूल गये हों। श्रापका एक वाक्य है—'द्रूसरे भाग में शेष कुल विभक्ति श्रीर धातुत्रों के रूप प्रयोग सहित यतलाए गए हैं।' इस वाक्य में पहले तो 'विभक्ति' लिखना, फिर उसे एक वचन में रखना श्रीरों को न खटके तो न खटके, व्याकरण-शारियों को तो श्रवश्य ही खटकना चाहिए।"

सरस्वती (११-४-२७७)

ऐसे संशोधनों से लेखकों का वड़ा उपकार होता था। बहुत से लोग उनकी इन वातों की सहर्प ग्रहण कर लेते 'दिवेशी जी-'श्रवम' यहा प ोजर का विशेषा, है; धनए वह 'बहरव' वर्षों नहीं ?

इसी प्रकार जब पंडित रागना में शर्म ने 'हिंगी-शिक्षक' न्याकरण नाम की पुस्तक में तिखानन

'तू' का संप्रदान में 'तुन्हारे हिए' पार तेने रस त्रतारा 'तुन्हर्स श्रीर 'तुन्हारी' है। जाती है।

तब द्विवेदी जी ने प्राप्ता नीड दिया कि कि पर केरे लिए? श्रीर 'तेरा, तेर, तेरी' च्यां न ते १ इसके भिवा को लाति है' क्यों ? 'हो जाता है' या 'हो जाते हैं' क्यों न होना चाहिए १ सरस्वती (११-६-४३०)

एक श्रंक में 'मंस्कृत-प्रवेशिनी' (सम्पादक, काज्यतीर्ध पी-लाल जैन) पर नाट देते हुए लिखा—

"इसके लेखक व्याकरण-शास्त्री हैं। याशा है, याप व्याकरण का महत्त्व ख़ुब जानते होंगे। वे यह भी जानते होंगे कि व्याकरण की सत्ता सभी भाषायों पर है। हिंदी भी एक भाषा है। यतएन वह भी यापने व्याकरण के नियमों के य्यधीन है। पर इस नियमन की याद याप शायद भूल गये हों। यापका एक वाक्य है—'दूसरे भाग में शेष कुज विभक्ति थीर धातुओं के रूप प्रयोग सहित यतलाए गए हैं।' इस वाक्य में पहले तो 'विभक्ति' लिखना, फिर उसे एक वचन में रखना यांगे में विभक्ति' लिखना, फिर उसे एक वचन में रखना यांगे के न खटके ते। न खटके, व्याकरण-शासियों को तो अवश्य ही खटकना चाहिए।"

सरस्वती (११-४-२७७)

ऐसे संशोधनों से लेखकों का वड़ा उपकार होता था। बहुत से लोग उनकी इन वातों को सहर्प ग्रहण कर लेते उन्हें समय रामायण बनाने की लालमा हुई खीर तव उन्होंने शेष अन्य भी बनाया। एछ २०। '

इस प्रकार के लम्बे-लम्बे वाक्यों से द्विवेदी जी की बहुत चिढ़ थी। इस वाक्य पर उन्होंने श्रपना नीट ये। दिया या—

'इसमें पिछले दो 'छौर' जाने से वेतरह शिथिजता था गई। उन्हें निकाल कर उनकी जगह एक:एक पाई (,फुलस्टाप) रख देने से यह दोप दूर हो जाता।''

इसी प्रकार 'श्री समय सार-टीका' की त्र्यालोचना भी भाषा-सुधार का एक सुन्दर नमृना है। यह त्र्यालोचना त्र्यास्त १६१८की 'सरस्वती' (पृष्ठ ११०) में प्रकाशित हुई थी। पुस्तक की भूमिका के कुछ वाक्य यो थे—

"इस भाषा करने में इसने छति साइस किया है। यह काम न्याय छोर ज्याकरण के विद्वानों का था पर इसारे समान विद्वचा-रिहत ज्यक्ति का न था तो भी छात्मप्रेमवश जो यह साहस किया है उस पर विद्वज्ञन हास्य न करके कृपार्टिए द्वारा इसे छव-लोकन करेंगे छोर जहाँ ने ई भूल मालूम पहें उसे छवरय स्चित करेंगे। वर्षों कि सुमा जैये छवप ज्ञानी हारा भी भूल हो जाना सरमय है।"

द्वियेदी जी ने इस पर जी नीट लिखा यह इस प्रकार है—
"यह अध्यंत शिथिल भाषा का अच्छा नमूना है। यही बात और तरह बढ़ी, अच्छी हिंदी में लिखी जा सकती थी। ख़ैर पैली का विचार जाने दीजिए। 'इस' और भाषा' शब्दों के बीच एक की दरकार है। दूसरे वाक्य में पर शब्द व्यर्थ हैं। 'ती का इस्का ही गलत है। यह तो हो चाहए। अंतिम वाक्य का

उन्हें समय रामायण बनाने की लालसा हुई श्रीर तब उन्होंने शेय अन्य भी बनाया। एष्ट ४०।

इस प्रकार के लम्बे-लम्बे वाक्यों से द्विवेदी जी के। बहुत चिढ़ थी। इस वाक्य पर उन्होंने अपना नाट यो दिया या—

'इसमें पिछले दो 'श्रौर' जाने से बेतरह शिथिलता श्रा गई। उन्हें निकाल कर उनकी जगह पक एक पाई (,फुलस्टाप) रख देने से यह दोप दूर हो जाता।''

इसी प्रकार 'श्री समय सार-टीका' की आलोचना भी भाषा-सुधार का एक सुन्दर नमृना है। यह आलोचना अगस्त १६१=की 'सरस्वती' (पृष्ठ ११०) में प्रकाशित हुई थी। पुस्तक की भूमिका के कुछ वाक्य यो थे—

''इस भाषा करने में हमने छति साहस किया है। यह काम न्याय छौर ज्याकरण के विद्वानों का था पर हमारे समान विद्वचा- रहित ज्यक्ति का न था तो भी धारमंत्रेमवश जो यह साहस किया है उस पर विद्वजन हास्य न करके कुपार्टिष्ट द्वारा हसे छव- लोकन करेंगे छौर जहाँ वोई भूल मालूम पड़ें उसे छवश्य स्चित करेंगे। वर्षों कि मुक्त जैने छहप ज्ञानी हारा भी भूलें हो जाना सम्भव है

द्विवेदी जी ने इस पर जो नोट लिखा वह इस प्रकार है—

भीर तरह वही श्रद्धित भाषा का श्रद्धा नमुना है। यही बात श्रीर तरह वही श्रद्धी हिंदी में लिखी जा सकती थी। ख़ैर शैली का विचार जाने दीजिए। 'इस' और 'भाषा' शब्दों के बीच एक 'की' दरकार है। दूसरे वाक्य में 'परे शब्द व्यर्थ हैं। 'ती का इस्ला ही गलत है। वह तो', होना ही चाहिए। श्रंतिम वाक्य का शुद्धता और भाषा की सफाई के साथ-साथ हिन्दी का प्रचार भी बढ़ा। यह देखकर आचार्य के। बड़ी प्रसन्नता हुई। इस प्रसन्नता में विजयान्माद नहीं था, अभिमान नहीं था, केवल आत्मतुष्टि का भाव था। इसका अनुभव वही कर सकता है जो दिन-रात एक करके सची लगन के साथ परिश्रम करे और अन्त में अभिलिषत सफलता प्राप्त कर सके। शुद्धता और भाषा की सफ़ाई के साथ-साथ हिन्दी का प्रचार भी बढ़ा। यह देखकर आचार्य के। बड़ी प्रसन्नता हुई। इस प्रसन्नता में विजयान्माद नहीं था, अभिमान नहीं था, केवल आत्मतुष्टि का भाव था। इसका अनुभव वही कर सकता है जे। दिन-रात एक करके सची लगन के साथ परिश्रम करे और अन्त में अभिल्षित सफलता प्राप्त कर सके। समय साहित्य-सेवियों के दल बने थे। वे एक-दूसरे के दीप दिखाने में व्यंग्य और कटा च-पूर्ण भाषा का सहारा लेते थे। फलतः विभिन्न दलों में विरोध-भावना और भी प्रवल होती जाती थी। साहित्य के। इससे वड़ी चति पहुँच रही थी। जिन पढ़े-लिग्वे विद्वानों के हृदयों में हिन्दी-साहित्य के रिक्त अंगों की देखकर कसक उठती थी और जो उसकी उन्नति के लिए सचेत होकर प्रयत्नशील थे, व इस पत्तपातपूर्ण दोप-प्रदर्शन-कार्य को, जिसे वे समालोचना के नाम से ही पुकारते थे, देखकर मन मसोस कर रह जाते थे। ऐसी आलोचना करते समय लेखक इस वात का ध्यान अवस्य रखता था कि कहीं हमारे दलवाले इससे श्रसंतुष्ट तो नहीं हो जायँगे। यो उस समय, भमालोचना प्रायः पत्तपातपूर्ण ही होती थी और समालोचना का लत्त्य कृति न होकर व्यक्ति-विशेष रहता था। इस कथन की पुष्टि बावू रयाससुन्दरदास के एक पत्र से होती है जो उन्होंने सन् १८६ में द्विवेदी जी को लिखा था। द्विवेदीजी ने एक यथार्थ समालोचना सभा के द्वारा प्रकाशित कराते के लिए भेजी थी। उसी के उत्तर में मंत्री की हैसियत से वावृजी ने पत्र तिखा था।

काशी, २६-४-१न६६

''पूउपवर,

हमारी सभा और विशेष कर हमारे समाज की श्रवस्था विचित्र है। ये ही यहे भाग्य हैं कि सभा श्रव तक चली जाती हैं। देप श्रीर द्रोह सब स्थानों में नाश का मूल कारण हुन्ना। उसकी हमारे यहाँ न्यूनता नहीं है - लोगों के। प्रसन्न रखना यहा कठिन हैं — श्रप्रसन्न करने में विलक्ष्य नहीं लगता — सभाको चनाश्रों के यथार्थ रूप में करने से हम किसी के। भी सन्द्रष्ट न कर सकेंगे (यह श्राक्य रालत समय साहित्य-सेवियों के दल बने थे। वे एक-दूसरे के दोष दिखाने में व्यंग्य और कटा च-पूर्ण भाषा का सहारा लेते थे। फलतः विभिन्न दलों में विरोध-भावना और भी प्रवल होती जाती थी। साहित्य के। इससे वड़ी चिति पहुँच रही थी। जिन पढ़े-िलये विद्वानों के हृदयों में हिन्दी-साहित्य के रिक्त अंगों को देखकर कसक उठती थी श्रोर जो उसकी उन्नति के लिए सचेत होकर प्रयत्नशील थे, व इस पन्नपातपूर्ण दोप-प्रदर्शन-कार्य का, जिसे वे समालोचना के नाम से ही पुकारते थे, देखकर मन मसोस कर रह जाते थे। ऐसी त्रालोचना करते समय लेखक इस वात का ध्यान ऋवश्य रखता था कि कहीं हमारे दलवाले इससे श्रसंतुष्ट तो नहीं हो जायँगे। यों उस समय, ममालोचना प्राय: पत्तपातपूर्ण ही होती थी और समालोचना का लत्त्य कृति न होकर व्यक्ति-विशेष रहता था। इस कथन की पुष्टि बाबू श्याससन्दरदास के एक पत्र से होती है जो उन्होंने सन् १८६६ में द्विवेदी जी को लिखा था। द्विवेदीजी ने एक यथार्थ समालोचना सभा के द्वारा प्रकाशित कराने के लिए भेजी थी। उसी के उत्तर में मंत्री की हैसियत से वातृजी ने पत्र तिखा था।

काशी, २६-४-१८६

''पूउषवर,

हमारी सभा और विशेष कर हमारे समाज की श्रवस्था विचित्र है। ये ही यहे भाग्य हैं कि सभा श्रव तक चली जाती हैं। द्वेष श्रीर द्रोह सब स्थानों में नाश का मूल कारण हुन्ना। उसकी हमारे यहाँ क्यूनता नहीं है - लोगों के प्रसन्न रखना बड़ा कठिन हैं -श्रवसन्न करने में विजम्ब नहीं लगता—सभालोचनाश्रों के यथार्थ रूप में करने से हम किसी के भी सन्दुष्ट न कर सकेंगे (यह बाक्य रालत फा० ह गुण, रूपक त्रादि की छानवीन—की त्रोर, पहले से ही. ध्यान दिया जा रहा था। भारतेंदु हरिश्चन्द्र के समय में हम एक त्रोर वँगला-साहित्य से और दूसरी त्रोर त्रॅगरेजी-साहित्य से परिचित हुए। इसके दो सुपरिणाम हुए। पहला वँगला, त्रॅगरेजी, संस्कृत त्रादि त्रन्य भाषात्रों के प्रंथों का त्रमुवाद हिन्दी में किया जाने लगा। यह शौक इतना बढ़ता गया कि कालान्तर में त्रच्छे त्रौर बुरे सभी प्रंथों का त्रमुवाद होने लगा। पर यह हमारी चीज नहीं थी त्रौर न हम इस पर त्रभिमान ही कर सकते थे। दूसरा सुपरिणाम यह हुत्रा कि साहित्य-सेवी मौलिक प्रंथ लिखने की त्रोर प्रयन्तशील हुए।

विदेशी साहित्य के सम्पर्क में आने से सबसे बड़ा लाभ यह हुआ कि हम अपनी भाषा तथा अपने साहित्य की वास्तविक दशा से परिचित हो सके और यह भी जान सके कि हमारे लिए किस प्रकार का साहित्य उपयोगी होगा। यों दर-बारी समालोचना-पद्धित में उनयोगिताबाद की पुट भी दिखाई देने लगी। वीसवीं शताब्दी के आरंभ में होनेवाली साहित्य और समालोचना की पद्धित का अध्ययन करने से यह वात स्पष्ट हो जाती है।

प्रवृत्ति, उद्देश्य श्रीर श्रादर्श

इसके कुछ वर्ष पहले ही हिन्दी-साहित्य-चेत्र में द्वियेटीजी का प्रादुर्भाव हो चुका था। आरम्भ से उनकी प्रधान साहित्यिक प्रवृत्ति आलोचनात्मक थी। सम्पादन-कार्य प्रह्णा करने के पूर्व ही उन्होंने 'छत्तीसगढ़ मित्र' तथा अन्यान्य पत्र-पत्रिकाओं में कितपय पुस्तकों की आलोचना की थी। पाठक जी के कई काव्यों की भी वे मार्मिक और विस्तृत समालोचना कर चुके थे। उनके इन कार्यों की आलोचना करने के पहले यहाँ हम उनकी प्रयृत्ति गुण, रूपक आदि की छानवीन—की ओर, पहले से ही. ध्यान दिया जा रहा था। भारतेंदु हरिश्चन्द्र के समय में हम एक ओर वॅगला-साहित्य से और दृसरी ओर अँगरेजी-साहित्य में पिरिचित हुए। इसके दो सुपरिणाम हुए। पहला वँगला, अँगरेजी, संस्कृत आदि अन्य भाषाओं के प्रंथों का अनुवाद हिन्दी में किया जाने लगा। यह शौक इतना बढ़ता गया कि कालान्तर में अच्छे और बुरे सभी प्रंथों का अनुवाद होने लगा। पर यह हमारी चीज नहीं थी और न हम इस पर अभिमान ही कर सकते थे। दूसरा सुपरिणाम यह हुआ कि साहित्य-सेवी मौलिक प्रंथ लिखने की ओर प्रयत्नशील हुए।

विदेशी साहित्य के सम्पर्क में आने से सबसे बड़ा लाभ यह हुआ कि हम अपनी भाषा तथा अपने साहित्य की वास्तविक दशा से परिचित हो सके और यह भी जान सके कि हमारे लिए किस प्रकार का साहित्य उपयोगी होगा। यों दर-वारी समालोचना-पद्धित में उपयोगिताबाद की पुट भी दिखाई देने लगी। बीसबीं शताब्दी के आरंभ में होनेवाली साहित्य और समालोचना की पद्धित का अध्ययन करने से यह बात अप्ट हो जाती है।

प्रवृत्ति, उद्देश्य श्रीर आदर्श

इसके कुछ वर्ष पहले ही हिन्दी-साहित्य-चेत्र में द्वियेटीजी का प्रादुर्भाव हो चुका था। आरम्भ से उनकी प्रधान साहित्यिक प्रवृत्ति आलोचनात्मक थी। सम्पादन-कार्य प्रहण करने के पूर्व ही उन्होंने 'छत्तीसगढ़ मित्र' तथा अन्यान्य पत्र-पित्रकाओं में कितपय पुस्तकों की आलोचना की थी। पाठक जी के कई काव्यों की भी वे मार्मिक और विस्तृत समालोचना कर चुके थे। उनके इन कार्यों की आलोचना करने के पहले यहाँ हम उनकी प्रवृत्ति लोगों की कृपा-दृष्टि संस्कृत की त्रोर भी गई त्रौर उन्होंन, देखा-देखी संस्कृत के प्रसिद्ध प्रन्थों का त्रजुवाद करना त्रारम्भ कर दिया।

द्विवेदी जी इस अंतिम वात की सहन नहीं कर सके। उस समय संस्कृत का वे अध्ययन करते थे और जानते थे कि इस भाषा का साहित्य पारचात्य देशों के विद्वानों की लुभा चुका हैं; वे उसे वड़े श्रादर श्रीर सम्मान की दृष्टि से देखते थे। श्रतः उन्होंने सोचा कि यदि अनुवाद और टीका करने की याग्यता न रखनेवाले व्यक्तियों ने इस त्रोर क़द्म बढ़ाया और संस्कृत के प्रन्थों का अनुवाद या उनकी टीका करके उनके वास्तविक महत्त्व और सौन्दर्य का नष्ट कर दिया, तो उन प्रन्थकारों के ही नहीं, संस्कृत-भाषा त्रौर उसके साहित्य के प्रति भी हमारे हृदयों में निरादर-भाव पैदा हो जायगा श्रीर इसका प्रभाव हमारी भावी संतित पर बहुत बुरा पड़ेगा। उनका यह विचार ही संस्कृत के अनुवादों और टीकाओं की कटु-त्र्यालोचना का कारण हुआ। द्विवेदी जी का स्वयं ऐसे अनुवादकों या टीकाकारों से कोई द्वेष नहीं था जैसा कि उनके एक पत्र से स्पष्ट होता है। लाला सीताराम ने संस्कृत के कुछ प्रन्थों की टीका की। द्विवेदी जी ने उनकी तीव्र त्रालोचना की। इस पर लालाजी की स्रोर से किसी ने द्वियेदी जी की एक पत्र लिखा, जिसके उत्तर में द्विवेदी जी ने लिखा—

"I have no enmity with Lala Sita Ram, nor is there any misunderstanding between us, as you suppose. I have certainly made no attacks on him; you are no doubt, mistaken in this respect,

भावार्थ यह है कि द्विवेदी जी ने किसी द्वेप-भावना से

लोगों की कुपा-दृष्टि संस्कृत की त्रोर भी गई त्रौर उन्होंन, देखा-देखी संस्कृत के प्रसिद्ध प्रन्थों का अनुवाद करना त्रारम्भ कर दिया।

द्विवेदी जी इस अंतिम वात की सहन नहीं कर सके। उस समय संस्कृत का वे अध्ययन करते थे और जानते थे कि इस भाषा का साहित्य पाश्चात्य देशों के विद्वानों की लुभा चुका हैं: वे उसे वड़े श्रादर श्रीर सम्मान की दृष्टि से देखते थे। श्रतः उन्होंने सोचा कि यदि ऋनुवाद ऋौर टीका करने की योग्यता न रखनेवाले व्यक्तियों ने इस त्रोर क़द्म बढ़ाया और संस्कृत के प्रन्थों का ऋनुवाद या उनकी टीका करके उनके वास्तविक महत्त्व ऋौर सौन्दर्य काे नष्ट कर दिया, ताे उन प्रन्थकाराें के ही नहीं, संस्कृत-भाषा त्रौर उसके साहित्य के प्रति भी हमारे हृद्यों में निरादर-भाव पैदा हो जायगा श्रौर इसका प्रभाव हमारी भावी संतित पर बहुत बुरा पड़ेगा। उनका यह विचार ही संस्कृत के अनुवादें। और टीकाओं की कटु-त्र्यालोचना का कारण हुआ। द्विवेदी जी का स्वयं ऐसे अनुवादकों या टीकाकारों से कोई द्वेष नहीं था जैसा कि उनके एक पत्र से स्पष्ट होता है। लाला सीताराम ने संस्कृत के कुछ यन्थें की टीका की। द्विवेदी जी ने उनकी तीव्र त्यालोचना की। इस पर लालाजी की श्रोर से किसी ने द्विवेदी जी की एक पत्र लिखा, जिसके उत्तर में द्विवेदी जी ने लिखा-

"I have no enmity with Lala Sita Ram, nor is there any misunderstanding between us, as you suppose. I have certainly made no attacks on him; you are no doubt, mistaken in this respect,

भावार्थ यह है कि द्विवेदी जी ने किसी द्वेप-भावना से

बिवेदी जो का यह आदर्श अन्त तक वना रहा। समयानुसार वे और भी आगे वड़ गये। जब लोगों ने बहुत धाँघली मचाई तब उन्होंने 'समालोचना का सत्कार'-शोर्षक एक लेख दिसम्बर् १६१७ की 'सरस्वर्ता' में प्रकाशित किया। यह लेख कुछ धाँघली मचानेवालों की खबर लेने के लिए लिखा गया था। बाबू कालिदास जो कपूर ने उसके प्रतिवाद में 'समालोचना'-शीर्षक एक लेख लिखा और 'सरस्वरी' में ही प्रकाशित होने के लिए भेजा। इस लेब की स्वीकृति लिखते हुए द्विवेदी जी ने ३१-१-१६१ को जो पत्र लिखा उसका कुछ अंश यों हैं—

'मेरा लेख कुछ ख़ास श्रादिमयों के। लच्य करके लिखा गया है। उन की धूर्नता का हाल श्रापको मालूम होता तो शायद श्राप श्रपना लेख लिखने ही नहीं। ख़ैर, मतभेत बुरा नहीं।''

इतना ही नहीं, जो पुस्तकें द्वियंदी जी के पास समा-लोचनार्थ नहीं भी खाती थीं खौर उनमें कोई दोष है।ता था तो वे स्वयं खरोदकर उन्हें पड़ते थे खौर जनता के सामने उनके दोप स्मष्ट भाषा में रख देते थे। इन पुस्तकों की सूचना द्विवेदी जी को खपने मित्रों से मिल जाया करती थी।

खेर, उक्त उद्देश्य और विचार पर हृढ़ रहना वड़े साहस का कार्य था; कम से कम तत्कालीन साहित्यिक वातावरण में रहकर तीव्र और सत्य आलोचना करना आसान नथा। पर द्विवेदी जी अपने विचार पर डटे रहे। यहाँ हम एक लेख ऐसा उद्धृत करते हैं जिससे उनके समालोचना-सन्वन्धी आदर्श पर प्रकाश पड़ेगा। लेख कुछ बड़ा अवश्य हैं, पर उससे हम उस समय के साहित्यसेवियों के विचारों से भी परिचित हो सकेंगे और द्विवेदी जी ने उनकी समक्षाकर राह पर लाने की जी चेष्टा की उससे भी। लेख यों है—

दिवेदी जी का यह आदर्श अन्त तक वना रहा। समयानुसार वे और भी आगे वह गये। जब लोगों ने वहुत धाँधली मचाई तव उन्होंने 'समालोचना का सत्कार'-शोर्पक एक लेख दिसम्बर १६१७ की 'सरस्वती' में प्रकाशित किया। यह लेख कुछ धाँधली मचानेवालों की खबर लेने के लिए लिखा गया था। वाबू कालिदास जो कपूर ने उसके प्रतिवाद में 'समालोचना'-शीर्पक एक लेख लिखा और 'सरस्वती' में ही प्रकाशित होने के लिए भेजा। इस लेव की स्वीकृति लिखते हुए द्विवेदी जी ने २१-१-१६१ को जो पत्र लिखा उसका कुछ अंश यों है—

' मेरा लेख कुछ ख़ास श्रादितयों की लच्य करके लिखा गया हैं। उन की धूर्नता का हाल श्रापको मालूम हे ता तो शायद श्राप श्रपना लेख लिखने ही नहीं। ख़ैर, मतभेत दुरा नहीं।''

इतना ही नहीं, जो पुस्तकें द्विवेदी जी के पास समा-लोचनार्थ नहीं भी आती थीं और उनमें कोई दोष होता था तो वे स्त्रयं खरोदकर उन्हें पड़ते थे और जनता के सामने उनके दोप स्पष्ट भाषा में रख देते थे। इन पुस्तकों की सूचना द्विवेदी जी को अपने मित्रों से मिल जाया करती थी।

खेर, उक्त उद्देश्य श्रोर विचार पर दृढ़ रहना वड़े साहस का कार्य था; कम से कम तत्कालीन साहित्यिक वातावरण में रहकर तीव्र श्रोर सत्य श्रालोचना करना श्रासान न था। पर द्विवेदी जी श्रपने विचार पर डटे रहे। यहाँ हम एक लेख ऐसा उद्धृत करते हैं जिससे उनके समालोचना-सन्वन्धी श्रादर्श पर प्रकाश पड़ेगा। लेख कुछ वड़ा श्रवश्य हैं, पर उससे हम उस समय के साहित्यसेवियों के विचारों से भी परिचित हो सकेंगे श्रीर द्विवेदी जी ने उनकी समफाकर राह पर लाने की जी चेष्टा की उससे भी। लेख यों हैं—

को भी, हिन्दी की छोड़कर, अन्य भाषाओं के साहित्य-सेवियों की अदालत से सज़ा मिलती है।"

- सरस्वती अप्रैल १६११)

द्विवेदीजी ने 'कालिदास की निरंकुराता'—शीर्षक अपनी प्रसिद्ध लेखमाला में, पुराने समालोचकों के कथन के आधार पर, कालिदास की कृतियों में कुछ दोष दिखाये थे। उनके समकालीन संस्कृत के विद्वानों ने इसका बड़ा विरोध किया। उत्तर में द्विवेदीजी ने 'प्राचीन कवियों के काव्यों में दोपोद्धावना'-शीर्षक एक निवन्ध लिखा। यह अप्रेल, मई और जून (१६११) की 'सरस्वती' में प्रकाशित हुआ था। इसी लेख की भूमिका के तौर पर उक्त वाक्य लिखे गये हैं। रेखांकित स्थलों की व्याख्या करने का तो यहाँ स्थान नहीं हैं; हाँ उन पर गौर करने से परिस्थित और उत्तर हमारी समम में आ सकता है। अस्तु।

द्विवेदीजी ने ऋपने इसी विचार की एक जगह स्पष्ट शब्दों में इस प्रकार लिखा है—

"मित्रता के कारण किसी पुस्तक की अनुचित शशंसा करना विज्ञापन देने के सिवा और कुछ नहीं। ईप्या-हेप अथवा शतुभाव के वशीभूत होकर किसी की कृति में अमूलक दोपोट्भावना करना उससे भी बुरा काम है."

--- सरस्वती

यह तो हुई समालोचना-संबंधी त्रादर्श की वात। श्रव लेखक के श्रादर्श पर, जैसा उन्होंने समका था या वे चाहते थे, गौर कीजिए।

पुस्तक के तीन मुख्य त्रंग होते हैं—विषय, भाषा त्रौर शैली। द्विवेदीजी ने त्रपने उद्देश्य त्रौर त्रादर्श के त्रनुसार इन तीनें। को भी, हिन्दी के। छोड़कर, श्रन्य भाषाश्रों के साहित्य-सेवियों की श्रदालत से सज़ा मिलती है।"

- सरस्वती अभैल १६११)

द्विदीजी ने 'कालिदास की निरंकुराता'-शीर्षक अपनी प्रसिद्ध लेखमाला में, पुराने समालोचकों के कथन के आधार पर, कालिदास की कृतियों में कुछ दोष दिखाये थे। उनके समकालीन संस्कृत के विद्वानों ने इसका बड़ा विरोध किया। उत्तर में द्विवेदीजी ने 'प्राचीन कवियों के काव्यों में दोपोद्भावना'-शीर्षक एक निवन्ध लिखा। यह अप्रेल, मई और जून (१६११) की 'सरस्वती' में प्रकाशित हुआ था। इसी लेख की भूमिका के तौर पर उक्त वाक्य लिखे गये हैं। रेखांकित स्थलों की व्याख्या करने का तो यहाँ स्थान नहीं है; हाँ उन पर गौर करने से परिस्थिति और उत्तर हमारी समक्ष में आ सकता है। अस्तु।

द्विवेदीजी ने त्रापने इसी विचार को एक जगह स्पष्ट शब्दों में इस प्रकार लिखा है—

"मित्रता के कारण किसी पुस्तक की अनुचित प्रशंसा करना विज्ञापन देने के सिवा और कुछ नहीं। ईप्या-द्वेप अथवा शत्रुभाव के वशीभूत होकर किसी की कृति में अमूलक दोपोद्भावना करना उससे भी बुरा काम है,"

--- सरस्वती

यह तो हुई समालोचना-संबंधी आदर्श की बात। अब लेखक के आदर्श पर, जैसा उन्होंने समका था या वे चाहते थे, ग़ौर कीजिए।

पुस्तक के तीन मुख्य ऋंग होते हैं—विषय, भाषा और शिली। द्विवेदीजी ने अपने उद्देश्य और आदर्श के अनुसार इन नीनेंा प्रकाश पड़ता है। भाषा वे सरल चाहते थे, शुद्ध भी। श्रारम्भ में प्रायः दोनों ही बातें हिंदी में नहीं थीं। उन्हें इससे दुःख होता था। फलतः पिएडताऊ भाषा लिखनेवालों पर कटाइ करने में वे कोई कोरकसर न करते थे और व्याकरण श्रादि के दोष दिखाने में भी वड़ी तत्परता से काम लेते थे। स्थूल रूप से इन्हीं तीन बातों की परिचयात्मक श्रालोचना वे किया करते थे।

समालोचना

उपर कहा जा चुका है कि आरंभ से ही द्विवेदीजी की अकृति आलोचनात्मक रही है। स्वभावतः अपने साहित्यिक जीवन-काल में उन्होंने सैकड़ें पुस्तकों की अपने ढंग से आलोचना की। इन आलोचनाओं को हम दो भागों में विभाजित कर सकते हैं—

(१) संस्कृत के ग्रंथों की श्रालोचना

संस्कृत के प्रसिद्ध ग्रंथों की टीकायें शतान्दियों पहले से होती त्रा रही थीं। राजा लद्मशासिंह के समय से विद्वानों का ध्यान प्रसिद्ध ग्रंथों का अनुवाद करने की त्रोर भी गया। फलतः कुछ विद्वानों ने कालिदास के कुछ ग्रंथों का हिंदी में अनुवाद किया। द्विवेदी जी को इन अनुवादों में मूल-ग्रंथों के भाव और चित्र न मिले। अनुवाद करने की प्रथा कुछ समय पहले ही हिंदी में श्रुं आई थी। अतः अनुवादों में दोप रह जाना, किसी सीमा तक, स्वाभाविक ही था। द्विवेदी जी ने इन्हों दोषों को हूँ दना शुरू किया। संवत् १६५४ (सन् १८६७) में उन्होंने 'श्रीवेंकटेश्वर-समाचार पत्र" तथा कालाकाँकर के 'हिंदोस्थान' में लाला सीताराम वी० ए०

प्रकाश पड़ता है। भाषा वे सरल चाहते थे, शुद्ध भी। श्रारम्भ में प्रायः दोनों ही बातें हिंदी में नहीं थीं। उन्हें इससे दुःख होता था। फलतः पिडताऊ भाषा लिखनेवालों पर कटा इत करने में वे कोई कोरकसर न करते थे श्रीर व्याकरण श्रादि के दोष दिखाने में भी वड़ी तत्परता से काम लेते थे। स्थूल रूप से इन्हीं तीन बातों की परिचयात्मक श्रालीचना वे किया करते थे।

समालोचना

उपर कहा जा चुका है कि आरंभ से ही द्विवेदीजी की अकृति आलोचनात्मक रही है। स्वभावतः अपने साहित्यिक जीवन-काल में उन्होंने सैकड़ों पुस्तकों की अपने ढंग से आलोचना की। इन आलोचनाओं को हम दो भागों में विभाजित कर सकते हैं—

(१) संस्कृत के ग्रंथों की ग्रालोचना

संस्कृत के प्रसिद्ध ग्रंथों की टीकायें शताव्दियों पहले से होती आ रही थीं। राजा लक्ष्मणसिंह के समय से विद्वानों का ध्यान प्रसिद्ध ग्रंथों का अनुवाद करने की ओर भी गया। फलतः कुछ विद्वानों ने कालिदास के कुछ ग्रंथों का हिंदी में अनुवाद किया। द्विवेदी जी को इन अनुवादों में मूल-ग्रंथों के भाव और चित्र न मिले। अनुवाद करने की प्रथा कुछ समय पहले ही हिंदी में आई थी। अतः अनुवादों में दोप रह जाना, किसी सीमा तक, स्वामाविक ही था। द्विवेदी जी ने इन्हीं दोषों को दूँ दना शुरू किया। संवत् १९४४ (सन् १८६७) में उन्होंने 'श्रीवेंकटेश्वर-समाचार पत्र" तथा कालाकाँकर के 'हिंदोस्थान' में लाला सीताराम वी० ए०

'स्तुति-अंथ' तक कहने में संकोचनहीं करते। तत्परचात् 'कालि-दास की निरंकुराता' के दर्शन हुए। इस आलोचनात्मक निवन्ध में कालिदास की कृतियों में कितपय दोप—उपमा की हीनता-उद्देगजनक उक्ति, अनौचित्य-दर्शक उक्ति, व्याकरण-संबंधी अनौचित्य, नाम-संबंधी अनौचित्य, इतिहास-संबंधी अनौचित्य, यित-भंग, पुनरुक्ति, अधिकपदत्व, श्रुति-कटुत्व, क्रमभंगता आदि के दोप दिखाये हैं। यचिप पंडित जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी ने 'मनसाराम' के नाम से इस निवन्ध के विरोध में 'निरंकुराता-निद्र्शन' शीर्षक एक लम्बा-चौड़ा लेख 'भारतिमत्र' में लिखा और बाद में अनेक प्रसिद्ध विद्वानों की टिप्पिण्यों के साथ उसे पुस्तकाकार प्रकाशित भी कराया, तथािप समस्त हिंदी-भाषा-मर्मज्ञों पर द्विवेदीजी की धाक वैठ गई; सवने उनका लोहा मान लिया।

यद्यपि 'नैषध-चरित-चर्चा' के लिए श्री राधाकृष्णदास ने नागरी-प्रचारिणी सभा से ४ जनवरी सन् १८६६ में लिखा था कि "यह लेख ऋदितीय हुआ है ऐसे (ऐ एक लाइन में है और से दूसरी में) ही लेख भाषा का गौरव वढ़ा सकते हैं," तथापि दिवेदीजी के इन समालोचनात्मक निवन्धों में जिस आलोचना-पद्धति का अनुसरण किया गया है, आधुनिक दृष्टि से वह विशेष महत्त्व की न भी हो तो भी हिन्दी-साहित्य-सेवियों के लिए उस समय वही बहुत थी। लेखक या किव के हृद्य में बैठ कर पात्र, परिस्थिति और वस्तु आदि की विवेचना करना तो दूर, अपने हृद्य के भावों को आलोचना का रूप देकर साहस और निर्भयतापूर्वक व्यक्त कर देने की यह पद्धति भी, हिन्दी के लिए उस समय नई ही थी। समालोचक के लिए आलोच्य विषय का पूर्ण पंडित होना तो आवश्यक है ही, पर स्वभाव व प्रकृति की निर्भयता और विभिन्न प्रकार के प्रलोभनों को ठुकराकर

'स्तुति-श्रंथ' तक कहने में संकोचनहीं करते। तत्परचात् 'कालि-दास की निरंकुराता' के दर्शन हुए। इस आलोचनात्मक निवन्ध में कालिदास की कृतियों में कितपय दोप—उपमा की हीनता-उद्वेगजनक उक्ति, अनौचित्य-दर्शक उक्ति, व्याकरण-संवंधी अनौचित्य, नाम-संवंधी अनौचित्य, इतिहास-संवंधी अनौचित्य, यित-भंग, पुनक्कि, अधिकपदत्व, श्रुति-कटुत्व, क्रमभंगता आदि के दोप दिखाये हैं। यद्यपि पंडित जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी ने 'मनसाराम' के नाम से इस निवन्ध के विरोध में 'निरंकुराता-निदर्शन' शीर्षक एक लम्बा-चौड़ा लेख 'भारतिमन्न' में लिखा और बाद में अनेक प्रसिद्ध विद्वानों की टिप्पिण्यों के साथ उसे पुस्तकाकार प्रकाशित भी कराया, तथापि समस्त हिंदी-भापा-मर्मज्ञों पर द्विवेदीजी की धाक वैठ गई; सवने उनका लोहा मान लिया।

यद्यपि 'नैषध-चरित-चर्चा' के लिए श्री राधाक्रक्णदास ने नागरी-प्रचारिणी सभा से श्र जनवरी सन् १८६६ में लिखा था कि "यह लेख श्रद्वितीय हुआ है ऐसे (ऐ एक लाइन में हैं और से दूसरी में) ही लेख भाषा का गौरव वढ़ा सकते हैं," तथापि द्विवेदीजी के इन समालोचनात्मक निवन्धों में जिस श्रालोचना-पद्धित का श्रनुसरण किया गया है, श्राधुनिक दृष्टि से वह विशेष महत्त्व की न भी हो तो भी हिन्दी-साहित्य-सेवियों के लिए उस समय वही बहुत थी। लेखक या किव के हृद्य में बैठ कर पात्र, परिस्थिति और वस्तु श्रादि की विवेचना करना तो दूर, श्रपने हृद्य के भावों को श्रालोचना का रूप देकर साहस और निर्भयतापूर्वक व्यक्त कर देने की यह पद्धित भी, हिन्दी के लिए उस समय नई ही थी। समालोचक के लिए श्रालोच्य विषय का पूर्ण पंडित होना तो श्रावश्यक है ही, पर स्वभाव व शकृति की निर्भयता और विभिन्न शकार के श्रलोभनों को ठुकराकर बात जो उस समय वे देखा करते थे, थिवय-संबंधी थी। यदि लेखक ने किसी नये विषय पर प्रकाश डाला है और भारती-यता और प्राचीन संस्कृति के भावों का आदर किया है तो दिवेदीजी, ऐसी पुस्तक की प्रायः प्रशंसा किया करते थे। यदि लेखक अपनी मानृ-भाषा, आर्य-संस्कृति-विषयक विचारों का विरोध करता था तो द्विवेदीजी उसे बुरी तरह फटकारते थे।

दूसरी त्रोर हिंदी-लेखक भाषा त्रौर शैली के विषय में विलक्कत त्रसावधान रहते थे। त्र्याकरण की दृष्टि से शुद्धता, शेली की दृष्टि से स्थिरता त्रौर विचारों की संवद्धता उनकी पुस्तकों में नहीं दिखाई देती थी। द्विवेदीजी ने इस वात को समभा त्रौर समालोचनार्थ त्राई हुई पुस्तकों में तत्संवंधी त्रुटियों को हूँ दृ-हूँ दृकर निकालना शुरू किया। जिस लेखक ने इम विषय में धाँधली की उसकी उन्होंने बुरी तरह से ख़बर ली। फलत: नये विषयों पर पुस्तकों लिखी जाने लगीं त्रौर लेखक भाषा की शुद्धता त्रौर विचारों की स्पष्टता पर समुचित ध्यान देने लगे।

यहाँ एक वात स्मरण रखनी चाहिए। द्विवेदीजी हिंदी के पत्तपाती थे और प्राचीन संस्कृत के भक्त भी। पर हिंदी का मस्तक जिन कियों ने ऊँचा किया है, जिन कियों को हम गर्व और गौरव की दृष्टि से देखते हैं, उन तुलसीदास, स्रदास आदि के काव्यों की उन्होंने आलोचना नहीं की। इसका प्रधान कारण यही जान पड़ता है कि आरंभ में वे संस्कृत-कियों का अध्ययन करते रहे और जब 'सरस्वती' के मंपादक हो गये तब उन्हें इतना अवकाश ही नहीं मिला कि हिंदी के किवयों की कृतियों का समुचित रूप से अध्ययन करके विस्तृत आलोचना करते।

बात जो उस समय वे देखा करते थे, थिवय-संबंधी थी। यदि लेखक ने किसी नये विषय पर प्रकाश डाला है और भारती-यता और प्राचीन संस्कृति के भावों का आदर किया है तो दिवेदीजी, ऐसी पुस्तक की प्रायः प्रशंसा किया करते थे। यदि लेखक अपनी मार्र-भाषा, आर्य-संस्कृति-विषयक विचारों का विरोध करता था तो द्विवेदीजी उसे बुरी तरह फटकारते थे।

दूसरी श्रोर हिंदी-लेखक भाषा श्रोर शैली के विषय में विलकुत श्रसावधान रहते थे। त्याकरण की दृष्टि से शुद्धता, शैली की दृष्टि से स्थिरता श्रीर विचारों की संवद्धता उनकी पुस्तकों में नहीं दिखाई देती थी। द्विवेदीजी ने इस वात को समभा श्रीर समालोचनार्थ श्राई हुई पुस्तकों में तत्संबंधी तृटियों को हूँदृ-हूँदृकर निकालना शुरू किया। जिस लेखक ने इम विषय में धाँधली की उसकी उन्होंने बुरी तरह से ख़बर ली। फलत: नये विषयों पर पुस्तकों लिखी जाने लगीं श्रीर लेखक भाषा की शुद्धता श्रीर विंचारों की स्पष्टता पर समुचित ध्यान देने लगे।

यहाँ एक बात स्मरण रखनी चाहिए। द्विवेदीजी हिंदी के पत्तपाती थे और प्राचीन संस्कृत के भक्त भी। पर हिंदी का मस्तक जिन कियों ने ऊँचा किया है, जिन कियों को हम गर्व और गौरव की दृष्टि से देखते हैं, उन तुलसीदास, स्रदास आदि के काव्यों की उन्होंने आलोचना नहीं की। इसका प्रधान कारण यही जान पड़ता है कि आरंभ में वे संस्कृत-कियों का अध्ययन करते रहे और जब 'सरस्वती' के मंपादक हो गये तब उन्हें इतना अवकाश ही नहीं मिला कि हिंदी के कियों की कृतियों का समुचित रूप से अध्ययन करके विस्तृत आलोचना करते।

किंचित् व्यंग्य की पुट दे देने से उनकी इस शैली में विशेष रोचकता आगई। इस शैली का एक उदाहरण 'नैपध-चरित-चर्चा और सुदर्शन' शीर्पक लेख हैं। 'सरस्वती' में शायद यही उनका सबसे पहला लेख था। यह १६०१ के आक्टोबर मास की सरस्वती (भाग १, संख्या १०) में प्रकाशित हुआ था। इसमें द्विवेदी जी ने सुदर्शन-संपादक की 'नैपध-चरितचर्चा' की आलो-चना का उत्तर दिया है। भाषा में प्रौढ़ता है, विचारों में दढ़ता और तार्किक व्यंग्य—

''श्रीहर्ष ने क्या हमारा घोड़ा खोला था जो हम उस पर अप-्सन्न होते।''

इस शैली का दूसरा रूप 'कालिदास की निरंकुशता' के विरुद्ध लिखी गई लेखमाला के उत्तर में लिखा हुआ 'प्राचीन कियों के काव्यों की दोषोद्भावना'-शीर्षक लेख हैं। यह १६११ के अप्रैल, मई और जून मास की 'सरस्वती' में प्रकाशित हुआ था। इस लेख में द्विवेदी जी ने विभिन्न भाषा-मर्भ कों के दिखाये हुए संस्कृत-कियों के दोषों को उद्धृत करके तर्क-द्वारा यह प्रमाणित करने की चेष्टा की थी कि प्राचीन कियों के दोष दिखाना केंई पाप नहीं है, जैसा उनके कुझ विरोधी सममते थे। इस शौली का तीसरा उदाहरण 'हिंदी-भाषा की उत्पत्ति'-शीर्षक निवंध है।

(२) दूसरे प्रकार की शैली व्यंग्यपूर्ण है। यें तो द्विवेदी जी व्यंग्य के वादशाह ही थे; उनके प्रायः प्रत्येक नोट में कुछ न कुछ व्यंग्य अवश्य मिलेगा। यहाँ हम नीचे उनकी इस प्रकार की शैली के कुछ नमूने देते हैं—

'भाषापद्मव्याकरण्' की आलोचना करते हुए वे लिखते हैं— फा॰ ७ किंचित् व्यंग्य की पुट दे देने से उनकी इस शैली में विशेष रोचकता आगई। इस शैली का एक उदाहरण 'नैपध-चरित-चर्चा और सुदर्शन' शीर्षक लेख है। 'सरस्वती' में शायद यही उनका सबसे पहला लेख था। यह १६०१ के आक्टोबर मास की सरस्वती (भाग १, संख्या १०) में प्रकाशित हुआ था। इसमें द्विवेदी जी ने सुदर्शन-संपादक की 'नैपध-चरितचर्चा' की आलो-चना का उत्तर दिया है। भाषा में प्रौढ़ता है, विचारों में दढ़ता और तार्किक व्यंग्य—

''श्रीहर्ष ने क्या हमारा घोड़ा खोला था जो हम उस पर अप-सन्न होते।''

इस शैली का दूसरा रूप 'कालिदास की निरंकुशता' के विरुद्ध लिखी गई लेखमाला के उत्तर में लिखा हुआ 'प्राचीन कवियों के काव्यों की दोषोद्भावना'-शीर्षक लेख है। यह १६११ के अप्रैल, मई और जून मास की 'सरस्वती' में प्रकाशित हुआ था। इस लेख में द्विवेदी जी ने विभिन्न भाषा-मर्मक्लों के दिखाये हुए संस्कृत-कवियों के दोषों को उद्धृत करके तर्क-द्वारा यह प्रमाणित करने की चेष्टा की थी कि प्राचीन कवियों के दोप दिखाना के के प्राचीन कवियों के दोप दिखाना के हैं पाप नहीं है, जैसा उनके कुझ विरोधी समभते थे। इस शैली का तीसरा उदाहरण 'हिंदी-भाषा की उत्पत्ति'-शीर्षक निवंध है।

(२) दूसरे प्रकार की शैली व्यंग्यपूर्ण है। यों तो द्विवेदी जी व्यंग्य के वादशाह ही थे; उनके प्रायः प्रत्येक नोट में कुछ न कुछ व्यंग्य अवश्य मिलेगा। यहाँ हम नीचे उनकी इस प्रकार की शैली के कुछ नमूने देते हैं—

'भाषापद्यव्याकरण' की आलोचना करते हुए वे लिखते हैं

फा० ७

"श्रार्य-समान की कृपा से सनातनधर्मियों में भी श्रनेक संरचक उत्पन्न हो गये हैं। शास्त्रार्थ करना, लेक्चर देना और ज़रूरत पड़ने पर कीचड़ उछालना भी ये लोग ृख्व सीख गये हैं। कानपुर ज़िले के imes imes आस में imes imes imes imes रास शास्त्री नाम के एक सहीपदेशक हैं। 'यार्य-समाजियों के महासोह-निवारणार्थ ईरवर अर्ध और शास्त्रविचार में रत हैं। श्रीर सबसे बड़ी बात यह कि श्रपने प्रतिपत्ती समाजियों की बरह श्राप भी बड़े मधुरभाषी हैं। 'साइंस' के भी श्राप उत्कट ज्ञाता मालूम होते हैं, क्योंकि आपने लिखा है कि-"चन्द्रमा बिलकुत बुढ़ा हो गया है। वह ज़्यादा से ज़्यादा पर्च सौ वर्ष तक काम दे सकेगा।" त्रापकी राय है-"चैतन्यता (!) से ईश्वर-तिद्धि पुष्ट है, श्रकाट्य है, श्रतएव मान्य है"। ऐसे विद्वान् श्रीर ऐसे संस्कृतज्ञ के तकों और सिद्धा-तों पर हम जैसे अल्पज क्या कह सकते हैं ! शास्त्री जी ने पहली प्रस्तक के ५० प्रष्ट लिखकर, प्रस्तुत विषय का उपसंहार किये विना हो. उसकी समाप्ति कर दी है, श्रीर टाइटिल पेन लगाकर उसकी श्रलग पुस्तक बना डाली है। दूसरी पुस्तक का श्रारम्भ विना कुछ कहे सुने या भूमिका लिखे फिर मा वें पृष्ट से किया है। इसका कारण समक्त में नहीं श्राया। श्राज-कल तो इस तरह पुस्तक लिखी नहीं जातीं। येदों के ज़माने में लिखी जाती रही हों तो मालुम नहीं !''

 \times \times \times \times

पर व्यक्तिगत कटा इ करते समय वे व्यंजना से अधिक सहायता लेते हैं। सफट है कि इस शैली से प्रहार करने में वितरहा बढ़ने की कम संभावना रहती है और चोट भी ठीक निशाने पर बैठती है। इस ढंग के नमूने देखिए—

"खोज की त्रैवार्षिक रिपोर्ट—जिस खोज की यह रिपोर्ट है, उसके सुपिरंटेंडेंट थे श्रीयुत पंडित स्थामविहारी मिश्र, प्स॰ प्० अ

"थार्य-समान की कृपा से सनातनधर्मियों में भी धनेक संरचक उरपन्न हो गये हैं। शास्त्रार्थ करना, लेक्चर देना छौर ज़रूरत पड़ने पर कीचड़ उछालना भी ये लोग खूब सीख गये हैं। कानपुर ज़िले के 🗙 अाम में 🗙 🗙 राम शाखी नाम के एक महीपदेशक हैं। 'श्रायं-समाजियों के महामोह-निवारणार्थ ईश्वर श्रर्थ श्रीर शास्रविचार में रत हैं। श्रौर सबसे बड़ी वात यह कि श्रपने प्रतिपत्ती समाजियों की तरह त्राप भी बड़े मधुरभाषी हैं। 'साइंस' के भी त्राप उत्कट ज्ञाता मालूम होते हैं, नयोंकि आपने लिखा है कि—"चन्द्रमा विलक्कत . बूढ़ा हो गया है। वह ज़्यादा से ज़्यादा पाँच सौ वर्ष तक काम दे सकेगा।" त्रापकी राय है-"चैतन्यता (!) से ईश्वर-तिद्धि पुष्ट है, श्रकाट्य है, श्रतएव मान्य है"। ऐसे विद्वान् श्रीर ऐसे संस्कृतज्ञ के तर्की श्रीर सिद्धान्तों पर हम जैसे श्रल्पत क्या कह सकते हैं ! शास्त्री जी ने पहली पुस्तक के ५० पृष्ट लिखकर, प्रस्तुत विषय का उपसंहार किये विना हो, उसकी समाप्ति कर दी है, श्रीर टाइटिल पेज लगाकर उसकी श्रलग पुस्तक बना डाली है। दूसरी पुस्तक का श्रारम्भ बिना कुछ कहे सुने या भूमिका लिखे फिर ८१ वें पृष्ठ से किया है। इसका कारण समक में नहीं घाया। घाज-कल तो इस तरह पुस्तकें लिखी नहीं जातीं। वेदों के ज़माने में लिखी जाती रही हों तो मालुम नहीं !''

 \times \times \times \times

पर व्यक्तिगत कटा इ करते समय वे व्यंजना से ऋधिक सहायता लेते हैं। स्पष्ट है कि इस शैली से प्रहार करने में वितर डा वढ़ने की कम संभावना रहती है और चोट भी ठीक निशाने पर वैठती है। इस ढंग के नमृते देखिए—

"खोज की त्रैवार्षिक रिपोर्ट—जिस खोज की यह रिपोर्ट है, उसके सुपरिंटेंडेंट थे श्रीयुत पंडित श्यामविहारी मिश्र, एम० ए० ३ ''सरकार की हितेयणा श्रीर दान-दयालुता की एक वात लिखना हम मूलं ही गये। उसने पागलों के मनोरंजन के लिए भी यहत से प्रबंध कर रखे हैं। पागलों के लिए पचीसी, शतरंज श्रीर ताश खेज के लिए वक्त मुकरंर है। वे लीग फुटवाज श्रीर टेनिस भी खेलते हैं। हर रिवार की ढोलक वजती है, मॅजीरे की भी किट किट होती है श्रीर साथ ही दिल लुभानेवाला गाना भी होता है। जनावेश्राली, रंडियाँ भी कभी-कभी पागलखानों में छमाछम करती हुई पधराई जाती हैं। वे नाचते समय श्रपने हावभाव दिलाकर श्रीर गानर सुनाकर हर कला के पागलों के दिमाग़ की ठिकाने लाने की चेष्टा करती हैं। पर एक वात की कभी है। पागलखानों में छछ शामोक्रोव भी रहने चाहिए। उन पर वजाने के लिए श्रीर रेकार्डों के साथ एक एक रिकार्ड पीछे से वजाने के लिए, यह भी रहना चाहिए—

राज करें थांगरेज़ सदा ही।"

(सरस्वती, छाक्टोवर १६२७)

किसी विलायती डाक्टर ने आँसुओं की कीटासु-नाशक शक्ति का पता लगाकर अनेक रोगों पर उसके सकल प्रयोगों का अनुभव प्राप्त किया। विलायती पत्रों ने भी उस आविष्कार का ख़्त्र विज्ञापन किया। सामयिक वात थी और अनेखी भी थी, अतः द्विवेदी जो भी उसकी उपयोगिता की प्रशंसा कैसे न करते। पर उनकी प्रशंसा का ढङ्ग वड़ा चुटीला था व तारीफ के सिलसिले में वे लिखते हैं—

"श्रोपिधयों में काम याने के लिए यभी जैसे बहुत से घादमी अपना रक्त बेचते हैं, वैसे ही रुबकड़ कुमारियाँ श्रौर कामिनियाँ घहों श्राँसू बेचा करेंगी। इससे उन्हें न केाई कप्ट होगा और न केाई हानि ही होगी। सुबह उठीं श्रौर रोका धाँसुश्रों से एक गिलास भर दिया। 'सरकार की हितेवणा और दान-दयालुता की एक वात लिखंता हम मूलं ही गये। उसने पागलों के मनोरंजन के लिए भी यहुत से प्रबंध कर रखे हैं। पागलों के लिए पचीसी, शतरंज और ताश खेजने के लिए वक्त मुकर्रर है। वे लोग फुटवाल और टेनिस भी खेलते हैं। हर रिववार की डोलक वजती है, मँजीरे की भी किट किट होती है और साथ ही दिल लुभानेवाला गाना भी होता है। जनावेश्राली, रंडियाँ भी कभी-कभी पागलखानों में छुमाछुम करती हुई पधराई जाती हैं। वे नाचते समय अपने हावमाव दिलाकर और गानर सुनाकर हर कन्ना के पागलों के दिमारा की ठिकाने लाने की चेटा करतो हैं। पर एक बात की कमी है। पागलखानों में छुछ शामोफ़ोब भी रहने चाहिए। उन पर वजाने के लिए और रेकार्डों के साथ एक एक रिकार्ड पीछे से बजाने के लिए, यह भी रहना चाहिए—

राज करें श्रेंगरेज़ सदा ही।"

(सरस्वती, छाक्टोवर १६२७)

किसी विलायती डाक्टर ने ऋाँसुओं की कीटागु-नाशक शक्ति का पता लगाकर अनेक रोगों पर उसके सफल प्रयोगों का अनुभव प्राप्त किया। विलायती पत्रों ने भी उस आविष्कार का ख़ूब विज्ञापन किया। सामयिक वात थी और अनेाखी भी श्री, अतः द्विवेदो जो भी उसकी उपयोगिता की प्रशंसा कैसे न करते। पर उनकी प्रशंसा का ढङ्ग बड़ा चुटीला था के तारीफ के सिलसिले में वे लिखते हैं—

''श्रोपिधयों में काम श्राने के लिए श्रभी जैसे बहुत से श्रादमी श्रपना रक्त वेचते हैं, वैसे ही रुबकड़ कुमारियाँ श्रौर कामिनियाँ घड़ों श्राँसू वेचा करेंगी। इससे उन्हें न कोई कष्ट होगा श्रौर न कोई हाति ही होगी। सुबह उठीं श्रौर रोका श्राँसुश्रों से एक गिलास भर दिया। The language of the criticism as that of a mimic.

कहकर कटाच किया गया था। द्विवेदी जी ने इसका उत्तर देते हुए लिखा था—

If such is really the case the public have no reason to complain; on the other hand, they should thank me for belending instructions with amusenments.

हिनेदी जी की व्यंग्य-शेजी का यही प्रधान उद्देश्य था। समालोचना करते समय किमी लेखक या किव की हँसी, उसका अपमान करने के लिए वे नहीं करते थे। उनका उद्देश्य केवल यह था कि लेखक सावधान हो जायँ ख्रीर कोई ऐसा काम न करें जो खाचार्यत्व या पारिडत्य के खनुरूप न हो।

(३) उनकीं रौली का तीसरा हम त्रोजप्रधान है। लेखकों ने जब-जब भारतीयता की भावना का विरोध किया या त्रमुचित प्रशंसा त्रथवा दोपारोपण करने की चेष्टा की, तब-तब द्विवेदी जी ने उनको द्युरी तरह फटकारा। इस प्रकार के कथन में त्रोज का होना स्वाभाविक भी है। यहाँ हम उनकी इस शैली का एक उदाहरण देते हैं। एक महाशय ने 'क्रॉगरेजी राज्य के सुख'-शीपक एक पुस्तक लिखी। उसकी भूमिका का कुछ त्रंश यों है—

Behind and below the ostensible manifestations of loyalty and devotion, there runs an under-current of discontent and unrest brought The language of the criticism as that of a mimic.

कहकर कटाच किया गया था। द्विवेदी जी ने इसका उत्तर देते हुए लिखा था—

If such is really the case the public have no reason to complain; on the other hand, they should thank me for belending instructions with amusenments.

हिवेदी जी की व्यंग्य-शेजी का यही प्रधान उद्देश्य था। समालोचना करते समय किमी लेखक या किव की हँमी, उसका अपमान करने के लिए वे नहीं करते थे। उनका उद्देश्य केवल यह था कि लेखक सावधान हो जायँ और कोई ऐसा काम न करें जो आचार्यत्व या पारिडत्य के अनुक्ष न हो।

(३) उनकीं रौली का तीसरा रूप खोजप्रधान है। लेखकों ने जब-जब भारतीयता की भावना का विरोध किया या ख्रनुचित प्रशंसा ख्रथवा दोपारोपण करने की चेष्टा की, तब-तब द्विबेदी जी ने उनको बुरी तरह फटकारा। इस प्रकार के कथन में खोज का होना स्वाभाविक भी है। यहाँ हम उनकी इस शिली का एक उदाहरण देते हैं। एक महाशय ने 'खँगरेजी राज्य के सुख'-शीपक एक पुस्तक लिखी। उसकी भूमिका का कुछ खंश यों है—

Behind and below the ostensible manifestations of loyalty and devotion, there runs an under-current of discontent and unrest brought सभी दूध के धोये हैं; किसी में विरोध-भावना है ही नहीं। वे तो लेखक को यह मुभाना चाहते थे कि इस प्रकार, विना समभे-यूभे, वेतुकी वातें, केवल निज स्वार्थसाधन-हेतु, करना निन्दनीय है। साहित्य-सेवी होने का दावा करनेवाले महानुभावों ने भी जब इसी प्रकार की अनर्गल वातें वकी हैं तब द्विवेदी जी ने इसी राली का प्रयोग किया है। ऐसे स्थलों में उनका उद्देश्य केवल यह रहता था कि लेखक स्वयं लिजन हो और स्थिति तथा अपना उत्तरदायित्व समभकर काम करे।

दूसरों के विचार

द्विवेदी जी की इस आलोचना-पद्धति की स्वयं विवेचना करने के पहले उसके विषय में दूसरों के विचार जान लेना आवश्यक है। जब द्विवेदी जी ने 'कालिदास की निरंकुशता' दिखाने का प्रयत्न किया तब विद्वानों ने उन पर तरह-तरह के आचेप किये और कुछ तो जिरोधावेश में सज्जनता की सीमा भी पार कर गये। 'सद्धर्म-प्रचारक'-नामक पत्र के सम्पादक ने तो यहाँ तक कह डाला—

"प्रयाग की सरस्वती, पिछले वर्ष, श्रपने योग्य संपादक महावीरप्रसाद द्विवेदी के रोगार्त हो जाने से फीकी पड़ गई थी। श्रव दो मास से फिर द्विवेदी जी ने उसका संपादन-कार्य धारंभ कर दिया है। श्रापका समालोचनारूपी नश्तर दिनप्रतिदिन तेज़ हो रहा है। पहले धापने उससे पाठ्य पुस्तकों धौर बाबू सीताराम की किवतार्थों के श्रंगों की चीर-फाइ की थी। उसके पीछे भारतेन्द्र हिरिश्चंद्र जी तथा बाबू गदाधरसिंह श्रादि पुराने लेककों की सड़ी हुई भाषा के कीढ़े श्रापने निकाले थे। श्रव, कविकुलगुरु कालिदास की बारी शाई है। ऐसा दीखता है कि कविकुलगुरु की भाषा पुरानी

सभी दूध के धोये हैं; किसी में विरोध-भावना है ही नहीं। वे तो लेखक के। यह सुमाना चाहते थे कि इस प्रकार, विना समभे-वूभे, वेतुकी वातें, केवल निज स्वार्थसाधन-हेतु, करना निन्दनीय है। साहित्य-सेवी होने का दावा करनेवाले महानुभावों ने भी जब इसी प्रकार की अनर्गल वातें वकी हैं तब द्विवेदी जी ने इसी शेली का प्रयोग किया है। ऐसे स्थलों में उनका उद्देश्य केवल यह रहता था कि लेखक स्वयं लिजन हो और स्थित तथा अपना उत्तरदायित्व सममकर काम करे।

दूसरों के विचार

द्विवेदी जी की इस आलोचना-पद्धित की स्वयं विवेचना करने के पहले उसके विषय में दूसरों के विचार जान लेना आवश्यक है। जब द्विवेदी जी ने 'कालिदास की निरंकुशता' दिखाने का प्रयत्न किया तब विद्वानों ने उन पर तरह-तरह के आचेप किये और कुछ तो विरोधावेश में सज्जनता की सीमा भी पार कर गये। 'सद्धम्म-प्रचारक'-नामक पत्र के सम्पादक ने तो यहाँ तक कह डाला—

''प्रयाग को सरस्वती, पिछले वर्ष, श्रपने योग्य संपादक महावीरप्रसाद द्विवेदी के रोगार्त हो जाने से फीकी पड़ गई थी। श्रव दो मास से फिर द्विवेदी जी ने उसका संपादन कार्य श्रारंभ कर दिया है। श्रापका समालोचन रूपी नरतर दिनप्रतिद्विन तेज हो रहा है। पहले श्रापने उससे पाठ्य पुस्तकों श्रीर बाबू सीताराम की कविताश्रों के श्रंगों की चीर फाड़ की थी। उसके पीछे भारतेन्दु हरिश्चंद्र जी तथा बाबू गदाधरसिंह श्रादि पुराने लेककों की सढ़ी हुई भाषा के कीढ़े श्रापने निकाले थे। श्रव, कविकुलगुरु कालिदास की बारी श्राई है। ऐसा दीखता है कि कविकुलगुरु की भाषा पुरानी भी समालोचना करेंगे। जो दोग प्राचीनों की पुस्तकों की समा-लोचना के ख़िलाफ हैं वे, श्रीर, कतिपय हमारे श्रन्य मिश्र भी ऐसी ही तर्कना करते हैं!'

इस टिप्पणी में जा संकेत किया गया है वही व्यव-हार द्विवेदी जी के साथ, संस्कृत-कवियों के दोप दिखाने पर, किया गया था। इस विरोध का कारण जानने के लिए मैंने द्विवेदी जी की 'कालिदास की निरंकुशता' भी ग़ौर से देखी और मनसाराम जी की 'निरंकुशता-निदर्शन' का भी अध्ययन किया। ठंडे दिल से दोनों पहों के विद्वानों की कुछ सम्मतियाँ भी देख गया। द्विवेदी जी ने जो दोप दिखाये हैं वे दोप हैं या नहीं, मनमाराम जी ने उनका जो खंडन किया है, वह यथार्थ है या नहीं, इस विषय पर तो कुछ कहने की हममें याखता नहीं। हाँ, इतना लिखना हम आवश्यक समफते हैं कि पन्न-विपन्न के बहुत-से विद्वान द्विवेदी जी और उनके उद्देश्य की, कम से कम इस विषय में, समके नहीं। द्विवेदी जी ने प्राचीन कवियों की समालोचना तो की ही नहीं है। उन्होंने तो संस्कृत-समालाचकों के कालिदास की कृतियों में दिखाये हुए दोपों का श्रनुवाद-सा करके पाठकों के सामने रख दिया है। यह बात उन्होंने अपने एक पत्र में वाबू कालिदास जी कपूर की लिखी थी। पत्र ३१-१-१८ की लिखा गया था। उसमें उन्होंने लिखा था-

"निरंकुशता का उद्देश्य निंदा नहीं। उसका श्रधिकांश क्या, श्रायः सर्वेश श्राचीन टीकाकारों का ही माल है।"

अतः विरोध की कहीं गुंजाइश ही नहीं थी और यदि विरोध किया जाना ही चाहिए था तो द्विवेदी जी का नहीं, वरन भी समालोचना करेंगे। जो छोग प्राचीनों की पुस्तकों की समा-लोचना के ख़िलाफ़ हैं ने, श्रीर, कतिपय हमारे श्रन्य मिश्र भी ऐसी ही तर्कना करते हैं!''

इस टिप्पणी में जा संकेत किया गया है वही व्यव-हार द्विवेदी जी के साथ, संस्कृत-कवियों के दोष दिखाने पर, किया गया था। इस विरोध का कारण जानने के लिए मैंने द्विवेदी जी की 'कालिदास की निरंकुशता' भी ग़ौर से देखी श्रोर मनसाराम जी की 'निरंकुशता-निदर्शन' का भी श्रध्ययन किया। ठंडे दिल से दोनों पत्नों के विद्वानों की कुत्र सम्मतियाँ भी देख गया। द्विवेदी जी ने जो दोप दिखाये हैं वे दोप हैं या नहीं, मनमाराम जी ने उनका जो खंडन किया है, वह यथार्थ है या नहीं, इस विपय पर तो कुछ कहने की हममें याग्यता नहीं। हाँ, इतना लिखना हम आवश्यक सममते हैं कि पत्त-विपत्त के बहुत-से विद्वान द्विवेदी जी खौर उनके उद्देश्य की, कम से कम इस विषय में, समफे नहीं। द्विवेदी जी ने प्राचीन कवियों की समालोचना तो की ही नहीं है। उन्होंने तो संस्कृत-समालाचकों के कालिदास की कृतियों में दिखाये हुए दोपों का अनुवाद-सा करके पाठकों के सामने रख दिया है। यह बात उन्होंने अपने एक पत्र में वाबू कालिदास जी कपुर की लिखी थी। पत्र ३१-१-१८ की लिखा गया था। उसमें उन्होंने लिखा था—

"निरंकुशता का उद्देश्य निंदा नहीं। उसका श्रिधकांश क्या, श्रायः सर्वश्य प्राचीन टीकाकारों का ही माल है।"

श्रतः विरोध की कहीं गुंजाइश ही नहीं थी श्रीर यदि विरोध किया जाना ही चाहिए था तो द्विवेदी जी का नहीं, वरन ृख्द विको होवे। श्रोर कोई कार्य ज़िद्मत मेरे याग्य होय ते। विविष वसरोचरम तामील की जानेगी।

> इति ग्रुभम् । भवदीय पुस्तकाष्यच''

द्विवेदीजी ने कोई खिदमत योग्य कार्य लिखने के वजाय 'सरस्वती' (भाग १६, संख्या ४) में यह लिख दिया—

"प्क महाशय ने हिंदी का एक छोटा-सा व्याकरण बनाया है। वह 'चात्रार्थ कहा थ' है। इस पुस्तक की एक पुरानी छौर महामैली कापी से हम किसी ने कृतार्थ किया है। पुस्तक के खावरण-पृष्ठ की पोठ पर पेंसिल से लिखा हुआ उर्दू में छुछ हिसाब-किताब भी दर्ज है। इसके साथ ही एक पत्र हमें मिला है, जिस पर किसी के दस्तख़त नहीं हैं।"

यह स्पष्टवादिता लोगों को उनका विरोधी न वना देती तो क्या करती ? 'विश्वकाप' की आलोचना करते हुए द्विवेदी जी ने जून, १६२७ की सरस्वती में लिखा—

'श्रालोचना से प्रकाशकों का मतलय इस कोप की देवल प्रशंसा या विज्ञापन से है। उनके पत्र से यही बात सूचित होती है; क्योंकि उन्होंने श्रपने पत्र में लिखा है—

A good deal of the prospects of the book depends on your appreciation of its merit and public announcements of the same.

परन्तु हमारा कर्तव्य हिन्दी-विश्व-कोप के प्रकाशकों की श्राज्ञा का पालन करने के सिवा श्रीर भी कुछ है। जो सजन इस लेख को ुख्ब विको होवे। श्रीर कोई कार्य ख़िदमत मेरे याग्य होग ता जिलिए वसरोचरम तामील की जावेगी।

> इति ग्रुभम् । भवदीय पुस्तकाध्यच''

द्विवेदीजी ने कोई खिदमत योग्य कार्य लिखने के वजाय 'सरस्वती' (भाग १६, संख्या ४) में यह लिख दिया—

"एक महाशय ने हिंदी का एक छोटा-सा व्याकरण बनाया है। वह 'चात्रार्थ कहा थ' है। इस पुस्तक की एक पुरानी छोर महामैली कापी से हमें किसी ने कृतार्थ किया है। पुस्तक के धावरण-पृष्ठ की पीठ पर पेंसिल से लिखा हुआ उद् में कुछ हिसाब-किताव भी दर्ज है। इसके साथ ही एक पत्र हमें मिला है, जिस पर किसी के दस्तख़त नहीं हैं।"

यह स्पष्टवादिता लोगों को उनका विरोधी न वना देती तो क्या करती ? 'विश्वकीप' की आलोचना करते हुए द्विवेदी जी ने जून, १६२७ की सरस्वती में लिखा—

"त्रालोचना से प्रकाशकों का मतलव इस कोप की देवल प्रशंसा या विज्ञापन से है। उनके पत्र से यही बात स्चित होती है; क्योंकि उन्होंने श्रपने पत्र में लिखा है—

A good deal of the prospects of the book depends on your appreciation of its merit and public announcements of the same.

परन्तु हमारा कर्तन्य हिन्दी-विश्व-कोप के प्रकाशकों की श्राज्ञा का पालन करने के सिवा श्रीर भी कुछ है। जो सज्जन इस लेख को हिन्दी-पुस्तकों की आलोचना से होनेवाले लाए की तो उनके विरोधियों ने भी स्वीकार किया था। वे जानते थे कि उनकी की हुई आलोचना का हिन्दी में ही नहीं, उसके दाहर भी बड़ा आदर है, और जिस पुस्तक की आलोचना 'सरस्वती' में निकल जायगी उसकी थोड़ी-बहुत प्रतियाँ अवश्य विक जायँगी। 'पुस्तकाध्यच' तथा 'हिंदी-विश्व-कोप" के प्रकाराकों के उक्त पत्रों से भी यह बात स्पष्ट हो जाती है। न्वयं द्विवेदी जी ने ही इस बात की कई बार कहा था। जनवरी, सन् १६०० में ही उन्हें अपनी आलोचना-विषयक सफलता कर अनुमान हो गया था। माँसी से उन्होंने लिखा था—

The public acknowledged the good result produced by my work as a critice, and the fact of not a single newspaper contradicting the defects of the books that I have exposed, proves that the public has accepted my views. That my reviews have done ample service to the saqse of Hindi literature is evident from the action of the reviser of the 3rd Hindi Reader who has adopted nearly three-fourths of the suggestions made by me.

प्रभाव और समीचा

यद्यपि द्विवेदी जी का समालोचना-सम्बन्धी आदर्श वहुत ऊँचा था, तथापि उनकी समालोचनायें विवेचनात्मक न होकर केवल परिचयात्मक ही हैं, मनन की विशेष सामग्री उनमें नहीं है। इस बात की स्वीकार करते हुए उन्होंने एक पत्र वाबू कार्लि- हिन्दी-पुस्तकों की आलोचना से होनेवाले लाग की तो उनके विरोधियों ने भी स्वीकार किया था। वे जानते थे कि उनकी की हुई आलोचना का हिन्दी में ही नहीं, उनके दाहर भी बड़ा आदर है, और जिस पुस्तक की आलोचना 'सरस्वती' में निकल जायगी उसकी थोड़ी-यहुत अतियाँ अवश्य विक जायँगी। 'पुस्तकाध्यन्न' तथा 'हिंदी-विश्व-केष्ण' के प्रकाराकों के उक्त पत्रों से भी यह बात स्मष्ट हो जाती है। न्वयं द्विवेदी जी ने ही इस बात को कई बार कहा था। जनवरी, सन् १६०० में ही उन्हें अपनी आलोचना-विषयक सफलता कर अनुमान हो गया था। भाँसी से उन्होंने लिखा था—

The public acknowledged the good result produced by my work as a critice, and the fact of not a single newspaper contradicting the defects of the books that I have exposed, proves that the public has accepted my views. That my reviews have done ample service to the saqse of Hindi literature is evident from the action of the reviser of the 3rd Hindi Reader who has adopted nearly three-fourths of the suggestions made by me.

प्रभाव और समीचा

यद्यपि द्विवेदी जी का समालोचना-सम्बन्धी आदर्श बहुत ऊँचा था, तथापि उनकी समालोचनायें विवेचनात्मक न होकर केवल परिचयात्मक ही हैं, मनन की विशेष सामग्री उनमें नहीं है। इस बात की स्वीकार करते हुए उन्होंने एक पत्र बाबू कालि- श्रीर महेश तीनों को आवश्यकता रही है और रहेगी। यदि ब्रह्मा श्रीर विष्णु का काम होता रहा श्रीर शिव अपने वालों को साथ लेकर अपने संहार-कार्य में सं रान १ हुए तो साहित्य-सृष्टि के सभी कार्य अञ्यवस्थित हो नष्ट हा जायगे।

हाँ, यह दूसरी बात है कि एक सावारण सामाजिक व्यक्ति के लिए निष्पत्त न्यायाधीश वन जाना सरल नहीं है। सा हत्नी- न्नित की सात्त्विक प्रेरणा से प्रेरित होकर जो द्विवेदों जा समा- लोचना किया करते थे, स्वयं उनके विषय में भी यह नहीं कहा जा सकता कि वे सदैव निष्पत्त रहे हैं। निष्पत्त विवेचना का दम भरनेवालों को श्रीयुत नवीनचन्द्र का यह कथन रमरण रखना चाहिए—

'यह तो निश्चित है ही कि कोई मी मतुष्य अपने चिर मालाजित संस्कारों और धारणाओं के किन्द्र कोई बात लिख ही नहीं सन्ता। तब उसकी समाजीचना निष्मत कैने हो सकतो है ? हमारा के यह ज्याल है कि जो लोग निष्मत होने का दावा रखते हैं, वे मानों अपनी हिस्सारता सिद्ध करना चाहते हैं।''

—सरावती (भा० २३, सं० १, पृ० १७)

फिर मी हम यही कहेंगे कि सचा समालोचक साहित्य और समाज को निष्पत्त होकर आलोचना करता है। वह चाहता है कि साहित्य और समाज में छाई हुई निस्तव्यता भंग कर दी जाय और लेखकों तथा समाज के व्यक्तियों की उनकी हीनना और तुटि से इस प्रकार परिचित करा दिया जाय कि वे उन देशों और तुटियों की दूर करने के लिए कटिबद्ध हो जायँ। दिवेदी जी ने भी यही किया। समाज की वात जाने दीजिए, साहित्यिक च्रेत्र में आरंभ से ही उनका उद्देश्य उच कोटि के साहित्य की और जनता का ध्यान आकर्षित करता रहा है। श्रीर महेश तीनों की श्रावश्यकता रही है श्रीर रहेगी। यदि ब्रह्मा श्रीर विष्णु का काम होता रहा श्रोर शिव श्रवने गर्णों को साथ लेकर श्रवने संहार-कार्य में सं रग्त । हुए तो साहित्य-सृष्टि के सभी कार्य श्रव्यवस्थित हो नष्ट हा जायगे।

हाँ, यह दूसरी बात है कि एक सावारण सामाजिक व्यक्ति के लिए निष्पत्त न्यायाधोरा बन जाना सरल नहीं है। सा हत्यो- त्रित की सात्त्विक प्रेरणा से प्रेरित होकर जो दिवेदो जा समा- लोचना किया करते थे, स्वयं उनके विषय में भो यह नहीं कहा जा सकता कि वे सदैव निष्पत्त रहे हैं। निष्पत्त विवेचना का दम भरनेवालों को श्रीयुत नवीनचन्द्र का यह कथन रमरण रखना चाहिए—

'यह तो निश्चित है ही कि कोई मी मनुष्य अपने चिर मालाजित संस्कारों और धारणाओं के किन्द्र कोई वात लिख ही नहीं सकता। तब उसकी समाजीचना निष्मत कैंडे हो सकती है ? हमारा ते। यह स्वाल है कि जो लोग निष्मत होने का दावा रखते हैं, वे मानों अपनी हिस्सारता सिद्ध करना चाहते हैं।''

—सरस्वती (भा० २३, सं० १, ए० १७)

फिर भी हम यही कहेंगे कि सचा समालोचक साहित्य और समाज की निष्पत्त हे। कर चाहता है कि साहित्य और समाज में छाई हुई निस्तव्धता भंग कर दी जाय और लेखकों तथा समाज के व्यक्तियों के। उनकी ही नया और त्रुटि से इस प्रकार परिचित करा दिया जाय कि वे उन दे! यें और त्रुटियों के। दूर करने के लिए कटिबद्ध हो जायँ। दिवेदी जी ने भी यही किया। समाज की वात जाने दी जिए, साहित्यिक च्रेत्र में आरंभ से ही उनका उदेश्य उम केटि के साहित्य की और जनता का ध्यान आकर्षित करता रहा है। बड़े, सभी प्रकार के दोषों का दिग्दर्शनमात्र कराया था तथा आगे चलकर संस्कृत के अनेक सुप्रसिद्ध कवियों की विशेषता-परिचायक समीचा की थी, जिसे देखकर हिंदी-साहित्य-चेत्र में धाँधली मचानेवाले अनिधकारी लोगों ने अनिधकार की चर्चा करना ही छोड़ दिया, वह कालांतर में पूर्ण हुआ और समा-लोचना साहित्य का प्रधान अंग समभी जाने लगी। फलतः साहित्य-सेवियों का ध्यान साहित्य के इस नवीन अंग की पूर्ति की ओर भी गया। कुछ ही दिनों में आलोचना विषय पर अनुवादित और मौलिक प्रथ हिंदी में दिखाई देने लगे जिससे उन्न कोटि के साहित्य की पुस्तकें भी लिखी जाने लगीं।

बड़े, सभी प्रकार के दोपों का दिग्दर्शनमात्र कराया था तथा त्रागे चलकर संस्कृत के अनेक सुप्रसिद्ध किवयों की विशेषता-परिचायक समीचा की थी, जिसे. देखकर हिंदी-साहित्य-चेत्र में धाँधली मचानेवाले अनिधकारी लोगों ने अनिधकार की चर्चा करना ही छोड़ दिया, वह कालांतर में पूर्ण हुआ और समा-लोचना साहित्य का प्रधान अंग समभी जाने लगी। फलतः साहित्य-सेवियों का ध्यान साहित्य के इस नवीन अंग की पूर्ति की ओर भी गया। कुछ ही दिनों में आलोचना विषय पर अनुवादित और मौलिक अंथ हिंदी में दिखाई देने लगे जिससे उच कोटि के साहित्य की पुस्तकें भी लिखी जाने लगीं। लिखे थे, जिनमें पंडित प्रतापनारायण मिश्र और पंडित बालकृष्ण भट्ट के नाम विशेष श्रादर से लिये जाते हैं। मिश्र जी प्रायः सामाजिक श्रीर राजनैतिक विषयों पर लिखा करते थे; उनके साहित्यिक लेख श्रिधिक नहीं हैं। भट्ट जी के लेख श्रिधिकतर गंभीर श्रीर भावपूर्ण हैं; उनमें घनिष्ठता श्रीर व्यक्तित्व की छाप प्रत्यच्च परिलच्चित होती है। इन्हें हम साहित्यिक श्रीर कल्पना सापेच्च कह सकते हैं। इनकी समता श्रॅंगरेजी के सुप्रसिद्ध निवंधलेखक चार्ल्स लैम्ब से की जा सकती हैं।

इनके अतिरिक्त और भी दो-चार छोटे-मोटे निवन्ध-लेखक इस समय में हुए, पर वे इतनी प्रसिद्धि न पा सके। कारण यह था कि इन लेखकों का सारा ध्यान साहित्य के इसी महत्त्वपूर्ण अंग की पूर्त्ति की ओर न था। ये लोग कभी अखवार निकालते थे, कभी उपन्यास और नाटक लिखते थे और कभी कविता की आलोचना अथवा इतिहास की खोज करते थे। मिश्र जी और भट्ट जी के बाद बावू वालमुकुन्द गुप्त, पंडित गोविंदनारायण मिश्र और पंडित माधवप्रसाद मिश्र आदि का नाम आता है। इनमें गुप्त जी तो निवंधलेखक की हैसियत से प्रसिद्ध हैं और शेप दोनों लेखक अपनी शैलियों की विशेषता के कारण। यही लेखक हमें द्विवेदी-युग में ले जाते हैं।

उपर के कथन से यह वात स्पष्ट हो जाती है कि द्विवेदी जी के प्रादुर्भाव के समय हिंदी में अन्य भाषाओं की अपेत्ता साहित्यिक निबंध बहुत कम थे। जिस समय उन्होंने 'सरस्वती' का संपादनकार्य प्रहण किया, उस समय किसी की यह आशा न थी कि वे साहित्य के इस रिक्त अंश की लिखे थे, जिनमें पंडित प्रतापनारायण मिश्र और पंडित वालकृष्ण भट्ट के नाम विशेष श्रादर से लिये जाते हैं। मिश्र जी प्रायः सामाजिक श्रीर राजनैतिक विषयों पर लिखा करते थे; उनके साहित्यिक लेख श्रिधिक नहीं हैं। भट्ट जी के लेख श्रिधिकतर गंभीर श्रीर भावपूर्ण हैं; उनमें घनिष्ठता श्रीर व्यक्तित्व की छाप प्रत्यच्च परिलच्चित होती है। इन्हें हम साहित्यिक श्रीर कल्पना सापेच कह सकते हैं। इनकी समता श्रॅगरेजी के सुप्रसिद्ध निवंधलेखक चार्ल्स लैम्ब से की जा सकती हैं।

इनके अतिरिक्त और भी दो-चार छोटे-मोटे निवन्धं-लेखक इस समय में हुए, पर वे इतनी प्रसिद्धि न पा सके। कारण यह था कि इन लेखकों का सारा ध्यान साहित्य के इसी महत्त्वपूर्ण अंग की पूर्त्ति की ओर न था। ये लोग कभी अखबार निकालते थे, कभी उपन्यास और नाटक लिखते थे और कभी कविता की आलोचना अथवा इतिहास की खोज करते थे। मिश्र जी और भट्ट जी के बाद बावू वालमुकुन्द गुप्त, पंडित गोविंदनारायण मिश्र और पंडित माधवप्रसाद मिश्र आदि का नाम आता है। इनमें गुप्त जी तो निबंधलेखक की हैसियत से प्रसिद्ध हैं और शेप दोनों लेखक अपनी शैलियों की विशेषता के कारण। यही लेखक हमें द्विवेदी-युग में ले जाते हैं।

उपर के कथन से यह वात स्पष्ट हो जाती है कि द्विवेदी जी के प्रादुर्भाव के समय हिंदी में अन्य भाषाओं की अपेज़ा साहित्यिक निबंध बहुत कम थे। जिस समय उन्होंने 'सरस्वती' का संपादनकार्य प्रहण किया, उस समय किसी की यह आशा न थी कि वे साहित्य के इस रिक्त अंश की ऐसे लेख न छपते हों। जनता के लिए ये विषय नये थे, ज्यतः वह इन्हें विशेष छादर की हृष्टि से देखती थी।

हिवेदी जी के निवंधों में मुख्य पाँच विभाग किये जा सकते हैं—

१-साहित्यक।

२---जीवनियाँ।

३—त्र्याविष्कार श्रोर विज्ञान-संबंधी।

४—पुरातन्त्र श्रौर इतिहास-संबंधी।

५-- श्रारचर्य-जनक श्रीर कौतृहल-वर्द्धक ।

६--साहिन्यिक--

द्विवेदी जी के साहित्य-विषयक नियंध ४० के उपर हैं। ये विशेष खादर की हिंदि ने देखे जाते हैं। इनमें से कुछ तो भाषा खोर व्याकरण पर लिखे गये हैं, कुछ साहित्य-विवेचन पर। कुछ में यंथों का खालोचनात्मक परिचय है खोर कुछ में भाषा व साहित्य-शास्त्रीय परिचय। इस प्रकार हम इनके चार भाग पर सकते हैं—

(क) हिंदी भाषा खाँ व्याकरण-संबंधी—उस समय लेखक भाषा खाँर व्याकरण के नियमों की विशेष परवा नहीं करते थे, खतः उनके लेखों में भाषा खाँर व्याकरण-संबंधी दोगों की भरमार रहती थी। द्विवेदी जी ने ऐसे लेखकों की मावधान करने के लिए भाषा खाँर व्याकरण के दोप', 'भाषा की खनस्थिरता' खादि लेख लिखे। इन लेखों के द्वारा उन्होंने लोगों के सामने भाषा की खुद्धता का प्रश्न रक्खा। हिंदी-संसार में खपूर्व जागृति दिखाई देने लगी खाँर भाषा व व्याकरण-संबंधी वादविवाद उठ खड़े हुए। इन विवादों से भाषा खाँर शब्दों के म्यों में बहुत

ऐसे लेख न छपते हों। जनता के लिए ये विषय नयं थे, ज्यतः वह इन्हें विशेष आदर की हिंद्र में देखती थी।

हिनेदी जी के नियंधों में मुख्य पाँच विभाग किये जा सकते हें—

१—साहित्यिक।

२--जीवनियाँ।

३--- त्राविष्कार त्र्योर विज्ञान-संबंधी।

४—पुरातच्य श्रौर इतिहास-संबंधी।

५-- श्राश्चर्य-जनक श्रीर कौतृहल-वर्द्धक ।

६---साहिन्यिक---

द्वियेदी जी के साहित्य-विषयक निवंध ४० के उत्पर हैं। ये विशेष आदर की दृष्टि से देखे जाते हैं। इनमें से कुछ तो भाषा और व्याकरण पर लिखे गये हैं, कुछ साहित्य-विवेचन पर। कुछ में यंथों का आलोचनात्मक परिचय है और कुछ में भाषा व साहित्य-शास्त्रीय परिचय। इस प्रकार हम इनके चार भाग कर सकते हैं—

(क) हिंदी भाषा और व्याकरण-संवंधी—उस समय लेखक भाषा और व्याकरण के नियमों की विशेष परवा नहीं करते थे, अतः उनके लेखों में भाषा और व्याकरण-संवंधी दोषों की भरमार रहती थी। द्विवेदी जी ने ऐसे लेखकों को मावधान करने के लिए भाषा और व्याकरण के दोष', 'भाषा की अनस्थिरता' आदि लेख लिखे। इन लेखों के द्वारा उन्होंने लोगों के सामने भाषा की शुद्धता का प्रश्न रक्खा। हिंदी-संसार में अपूर्व जागृति दिखाई देने लगी और भाषा व व्याकरण-संवंधी वादविवाद उठ खड़े हुए। इन विवादों से भाषा और शब्दों के क्यों में वहुत

नहीं । हिन्दी का साहित्य इस प्रकार के नियन्थों से शून्य-सा हो रहा है। जैसे श्रीर श्रीर वार्तों में वेंगला श्रीर मराठी भाषा का साहित्य हिन्दी-साहित्य से बढ़ा हुशा है, वैसे ही वह इस विषय में भी है।"

दूसरे प्रकार के निवंध वे हैं जिनमें हिंदी-पुस्तकों की आलोचना की गई हैं। ये आलोचनायें हिन्दी की उन पुस्तकों की हैं जो द्विवेदी जी के समय में प्रकाशित होती और उनके पास समालोचनार्थ आती थीं। इनमें इतिहास, विज्ञान, भूगोल, गद्य-पद्य, नाटक, उपन्यास, जीवनचरित, धर्म आदि सभी विपयों की पुस्तकें हैं। द्विवेदी जी ने इन पुस्तकों की आलोचना करते समय नीर-चीर-विवेक का अच्छा परिचय दिया है। इनके अतिरिक्त सरकारी वार्षिक रिपोर्टी का भी आलोचनात्मक परिचय वे अपने पाठकों को समय समय पर दिया करते थे। इन समालोचनाओं से हिंदी-साहित्य के क्रूरा-करकट को छाँटने और नये होनहार लेखकों का प्रोत्साहित करने का आश्चर्यजनक कार्य हुआ।

तीसरे प्रकार के निबंध अन्य भाषाओं के यंथों की आलोचना-संबंधी हैं। जैसे मराठी के रामायण और महाभारत नामक यंथों का आलोचनात्मक परिचय। ऐसी आलोचनाओं में न केवल उनके गुण-दोषों का विवेचन किया गया है प्रत्युत उनकी तुलना में हिन्दी-साहित्य में जो कमी थी उनका भी निदर्शन किया गया है—हिंदी-लेखकों के लिए ऐसी आलोचनायें मार्गप्रदर्शन का काम करती थीं।

(घ) साहित्य-शास्त्र — 'नाट्यशास्त्र', 'हिन्दी भाषा की उत्पत्ति' शीर्षक निवंध साहित्यशास्त्र-संवंधी लेख हैं। ये लेख कुळ वड़े हैं छौर अलग-अलग पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुके नहीं । हिन्दी का साहित्य इस प्रकार के निवन्धों से शून्य-सा हो रहा है। जैसे और और बातों में वँगला और मराठी भाषा का साहित्य हिन्दी-साहित्य से बढ़ा हुआ है, बैसे ही वह इस विषय में भी है।"

दूसरे प्रकार के निबंध वे हैं जिनमें हिंदी-पुस्तकों की आलोचना की गई है। ये आलोचनायें हिन्दी की उन पुस्तकों की हैं जो द्विवेदी जी के समय में प्रकाशित होती और उनके पास समालोचनार्थ आती थीं। इनमें इतिहास, विज्ञान, भूगोल, गद्य-पद्य, नाटक, उपन्यास, जीवनचरित, धर्म आदि सभी विपयों की पुस्तकों हैं। द्विवेदी जी ने इन पुस्तकों की आलोचना करते समय नीर-चीर-विवेक का अच्छा परिचय दिया है। इनके अतिरिक्त सरकारी वार्षिक रिपोर्टी का भी आलोचनात्मक परिचय वे अपने पाठकों को समय समय पर दिया करते थे। इन समालोचनाओं से हिंदी-साहित्य के कूरा-करकट को छाँटने और नये होनहार लेखकों को प्रोत्साहित करने का आध्यर्यजनक कार्य हुआ।

तीसरे प्रकार के निवंध अन्य भाषाओं के यंथों की आलोचना-संबंधी हैं। जैसे मराठी के रामायण और महाभारत नामक यंथों का आलोचनात्मक परिचय। ऐसी आलोचनाओं में न केवल उनके गुण-दोपों का विवेचन किया गया है प्रत्युत उनकी तुलना में हिन्दी-साहित्य में जो कमी थी उनका भी निदर्शन किया गया है—हिंदी-लेखकों के लिए ऐसी आलोचनायों मार्गप्रदर्शन का काम करती थीं।

्य) साहित्य-शास्त्र - 'नाट्यशास्त्र', 'हिन्दी भाषा की उत्पत्ति' शीर्षक नियंध साहित्यशास्त्र-संयंधी लेख हैं। ये लेख कुछ बड़े हैं और ज्ञलग-ज्ञलग पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुके जायत हो और इस दिशा में उन्हें प्रोत्साहन मिले। दूसरे प्रकार की जीवनियाँ—यथा मायकेल मधुसूद्नदत्त, नवीन-चन्द्र राय व रवीन्द्रनाथ ठाकुर की इस उद्देश्य से लिखी गई थीं कि इन महापुरुषों को देश-विदेश में जो ख्याति प्राप्त हुई है उससे प्रभावित होकर लोग हिंदी-सेवा की खोर भुकें और साथ ही यह भी देख सकें कि इन मनस्वियों की सेवा और आराधना से इनकी मातृभाषा कैसी श्रीसम्पन्न हो गई है और हमारी मातृभाषा हिंदी अव तक कैसी रंक और हीन वनी हुई है। इस प्रकार के लेख 'सुकवि-संकीर्तन' में संगृहीत हैं।

- (ख) विद्वानों, इतिहास-वेत्ताओं और वक्ताओं की जीवनियाँ—द्विवेदी जी ने ऐसे जिन व्यक्तियों के विषय में लिखा
 है, वे प्राय: सभी भारतवासी थे; पर अधिकांश अपनी मातृ-भापा
 कें। छोड़कर विदेशी भाषाओं में लिखा करते थे। उनका
 संन्तिप्त परिचय देकर द्विवेदी जी उनसे अपनी मातृभाषा कें।
 अपनाने और उसी में लिखने का अनुरोध किया करते थे।
 उनके इस उद्योग से हिंदी की कई प्रतिभाशाली लेखक प्राप्त
 हो गये थे। यहामहोषाध्याय डाक्टर गंगानाथ का का
 नाम भी उन्हीं लेखकों में आता है, जो पहले अँगरेजी
 में ही लिखते थे, पर द्विवेदी जी की प्रेरणा से हिंदी में भी
- (ग) शाहों, सुल्तानों और अमीरों की जीवनियाँ—इनमें से जो ऐतिहासिक हैं उन के लिखने का उद्देश्य यह था कि उनसे पाठकों का मनोविनोद भी हो और साथ ही साथ उन्हें इतिहास का भी ज्ञान हो। कुछ जीवनियों में ऐसे तथ्य भी दिये गये हैं जिन्हें किसी कारणवश उस समय के इतिहास-लेखक छिपाना चाहते थे। फलतः इतिहास के थिदार्थियों

जायत हो और इस दिशा में उन्हें प्रोत्साहन मिले। दूसरे प्रकार की जीवनियाँ—यथा मायकेल मधुसूदनदत्त, नवीन-चन्द्र राय व रवीन्द्रनाथ ठाकुर की इस उद्देश्य से लिखी गई थीं कि इन महापुरुषों को देश-विदेश में जो ख्याति प्राप्त हुई है उससे प्रमावित होकर लोग हिंदी-सेवा की ग्रोर कुकें और साथ ही यह भी देख सकें कि इन मनस्वियों की सेवा और ज्याराधना से इनकी मात्रभाषा कैसी श्रीसम्पन्न हो गई है और हमारी मात्रभाषा हिंदी अब तक कैसी रंक और हीन वनी हुई है। इस प्रकार के लेख 'सुकवि-संकीर्तन' में संगृहीत हैं।

- (ख) विद्वानों, इतिहास-वेत्ताओं और वक्ताओं की जीव-नियाँ—द्विवेदी जी ने ऐसे जिन व्यक्तियों के विषय में लिखा है, वे प्रायः सभी भारतवासी थे; पर ऋधिकांश ऋपनी मातृ-भापा की छोड़कर विदेशी भाषाओं में लिखा करते थे। उनका संचिप्त परिचय देकर द्विवेदी जी उनसे ऋपनी मातृभाषा के। ऋपनाने और उसी में लिखने का ऋनुरोध किया करते थे। उनके इस उद्योग से हिंदी की कई प्रतिभाशाली लेखक प्राप्त हो गये थे। महामहोषाध्याय डाक्टर गंगानाथ भा का नाम भी उन्हीं लेखकों में आता है, जो पहले ऋँगरेजी में ही लिखते थे, पर द्विवेदी जी की प्रेरणा से हिंदी में भी
- (ग) शाहों, सुल्तानों श्रौर श्रमीरों की जीवनियाँ—इनमें से जो ऐतिहासिक हैं उन के लिखने का उद्देश्य यह था कि उनसे पाठकों का मनोविनोद भी हो श्रौर साथ ही साथ उन्हें इतिहास का भी ज्ञान हो। कुछ जीवनियों में ऐसे तथ्य भी दिये गये हैं जिन्हें किसी कारणवश उस समय के इतिहास-लेखक छिपाना चाहते थे। फलतः इतिहास के थिद्यार्थियों

विरुद्ध उन्होंने कई स्वतंत्र लेख व कवितायें लिखी थीं। उस समय के सुधारकों का परिचय लिखने में भी द्विवेदी जी का खास ध्येय यही था जि जनता समाजगत वुराइयों के। समभ जाय और सुधारकों के वतलाये हुए मार्ग पर चलकर अधिक से अधिक उन्नति कर सके।

३-- श्रादिष्कार श्रीर विज्ञान-संबंधी--

विज्ञान हिंदी के लिए विलक्कल ही नया विषय था और पहले-पहल द्विवेदी जी ने ही इस पर लिखना शुरू किया। इस प्रकार के निवंध भी अधिकतर 'सरस्वती' के संपादनकाल में ही लिखे गये थे। इनका लिखने में दूसरी पुस्तकों—विशेष कर अँगरेजी पत्र-पत्रिकाओं—से विशेष सहायता ली गई थी। आविष्कार और विज्ञान-संवंधी लेखों की आवश्यकता और महत्ता पर 'शिज्ञा' नाम की पुस्तक की भूमिका (ए० ४,४) में द्विवेदी जी लिखते हैं—

"ध्यापार धंधा करके यथेष्ट धन-संपादन का जा मार्ग स्पेन्सर ने वतलाया है वह थौर भी अधिक महत्त्व-पूर्ण है। क्योंकि, इस समय, इस विषय में हमारे देश की दशा थत्यन्त हीन है। रही है। हम लोगों को पेट भर खाने तक की नहीं मिलता। इस श्रवस्था में, सामाजिक या राजनैतिक विषयों की उन्नति होना शायः असंभव है। जा भूखा है वह समाज का क्या सुधार करेगा? उससे राजनैतिक विषयों की उन्नति की श्राशा रखना केवल दुराशा है। इसलिए हम लोगों को उदरपूर्ति के लिए पहले प्रवत्न करना चाहिए। इस विषय में हमारा एक-मात्र त्राता विज्ञान है। वैज्ञानिक शिक्षा को स्पेन्सर ने इसा लिए प्रधानता दो है और सब तरह की शिक्षाओं में इसी को सबसे अधिक उपयोगी वतलाया है। इस शिक्षा की श्रोर ध्यान देना प्रत्येक भारतवासी का परम कर्तक्य होना चाहिए।"

विरुद्ध उन्होंने कई स्वतंत्र लेख व किवतायें लिखी थीं। उस समय के सुधारकों का परिचय लिखने में भी द्विवेदी जी का खास ध्येय यही था जि जनता समाजगत वुराइयों के समभ जाय और सुधारकों के वतलाये हुए मार्ग पर चलकर अधिक से अधिक उन्नति कर सके।

३-- श्रा६ क्तार श्रीर विज्ञान-संवंधी--

विज्ञान हिंदी के लिए विलक्कल ही नया विषय था और पहले-पहल द्विवेदी जी ने ही इस पर लिखना शुरू किया। इस प्रकार के निवंध भी अधिकतर 'सरस्वती' के संपादनकाल में ही लिखे गये थे। इनका लिखने में दूसरी पुस्तकों—विशेष कर अँगरेजी पत्र-पत्रिकाओं—से विशेष सहायता ली गई थी। आविष्कार और विज्ञान-संवंधी लेखों की आवश्यकता और महत्ता पर 'शिन्ता' नाम की पुस्तक की भूमिका (पृ० ४,४) में द्विवेदी जी लिखते हैं—

"व्यापार-धंधा करके यथेष्ट धन-संपादन का जो मार्ग स्पेन्सर ने बतलाया है वह धौर भी अधिक महत्त्व-पूर्ण है। क्योंकि, इस समय, इस विषय में इमारे देश की दशा खत्यन्त हीन है। रही है। हम लोगों को पेट भर खाने तक को नहीं मिलता। इस ख्रवस्था में, सामाजिक या राजनैतिक विषयों की उन्नति होना प्रायः असंभव है। जो भूखा है वह समाज का क्या सुधार करेगा ? उससे राजनैतिक विषयों की उन्नति की धाशा रखना केवल दुराशा है। इसलिए इम लोगों को उदरपूर्ति के लिए पहले प्रवत्न करना चाहिए। इस विषय में इमारा एक-मात्र त्राता विज्ञान है। वैज्ञानिक शिचा को स्पेन्सर ने इसा लिए प्रधानता दो है और सब तरह की शिचाओं में इसी को सबसे खिक उपयोगी बतलाया है। इस शिचा की और ध्यान देना प्रत्येक भारतवासी का परम कर्तव्य होना चाहिए।"

संगृहीत हैं। यह पुस्तक गंगा-पुस्तक-माला-कार्यालय, लखनऊ, से प्रकाशित हुई है। इसमें 'एक योगी की साप्ताहिक समाधि', 'आकाश में निराधार स्थिति', 'अंतःसान्तित्व-विद्या', 'परलोक से प्राप्त हुए पत्र', 'एक ही शरीर में अनेक आत्मायें' आदि अनेक आश्चर्य-जनक एवं कौत्हल-वर्ष्ठक विषयों पर लिखे हुए निवंधों का समावेश है। इस पुस्तक के आगंभ में परिचय देते हुए द्विवेदी जी ने लिखा है—

'इस संग्रह में २२ लेख हैं। कुछ पुराने हैं, कुछ थोड़े ही ममय पूर्व के लिखे हुए हैं। जे। पुराने हैं. वे पुराने होकर भी पुराने नहीं। एक तो भूली हुई पुरानी बात भी सुनने पर नई मालूम होती है। दूसरे, इस पुस्तक में जिन विषयों का उल्लेख है, उनमें में ध्रिधकांश पुराने हो ही नहीं सकते।''

इन निवंधों की उपयोगिता पर भी हम श्रपनी श्रोर से कुछ न कह कर द्विवेदी जी का कथन ही दोहरा देना उचित सम-भते हैं—

''कामों से छुटी मिलने पर, मनोरंजन की इच्छा रखनेवाले पुस्तकप्रेमी इसके पाठ से थपने समय का सद्वय कर सकते हैं; थीर सम्भव है, इससे उन्हें कुछ नई वातें मालूम हो जायें।'

संत्तेप में द्विवेदी जी ने प्रायः सभी विषयों पर लेख लिखे हैं। उनमें से अनेक थिपय तो उस समय के लिए विलक्कल नये ही थे। यदि उनका इतना प्रचार हो गया है तो इसका श्रेय द्विवेदी जी के अतिरिक्त किसे दिया जाय ? वीसवीं शताब्दी के आरंभ में निवंध-रचना की ओर साहित्य-सेवियों का ध्यान आकृष्ट करनेवाले द्विवेदी जी ही थे। उनको रास्ता दिखाने के लिए उन्होंने लार्ड बेकन के कुछ निवंधों का विकत-विचार- संगृहीत हैं। यह पुस्तक गंगा-पुस्तक-माला-कार्यालय, लखनऊ, से प्रकाशित हुई है। इसमें 'एक योगी की साप्ताहिक समाधि', 'आकाश में निराधार स्थिति', 'श्रंतःसानित्व-विद्या', 'परलोक से प्राप्त हुए पत्र', 'एक ही शरीर में अनेक आत्मायें' आदि अनेक आरचर्य-जनक एवं कौतृहल-वर्द्धक विपयों पर लिखे हुए निवंधों का समावेश है। इस पुस्तक के आगंभ में परिचय देते हुए द्विवेदी जी ने लिखा है—

'इस संग्रह में २२ लेख हैं। कुछ पुराने हैं, कुछ थे। हे ही समय पूर्व के लिखे हुए हैं। जा पुराने हैं, वे पुराने होकर भी पुराने नहीं। एक तो भूजी हुई पुरानी बात भी सुनने पर नई मालूम होती है। दूसरे, इस पुरतक में जिन विषयों का उल्लेख है, उनमें से अधिकांश पुराने हो ही नहीं सकते।''

इन निवंधों की उपयोगिता पर भी हम श्रपनी श्रोर से कुछ न कह कर द्विवेदी जी का कथन ही दोहरा देना उचित सम-भते हैं—

"कार्मों से छुटी मिलने पर, मनोरंजन की इच्छा रखनेवाले पुस्तकप्रेमी इसके पाठ से अपने समय का सद्व्यय कर सकते हैं; श्रौर सम्भव है, इससे उन्हें कुछ नई वातें मालूम हो जायें।

संत्तेप में द्विवेदी जी ने प्रायः सभी विपयों पर लेख लिखे हैं। उनमें से अनेक विपय तो उस समय के लिए विलक्ठल नये ही थे। यदि उनका इतना प्रचार हो गया है तो इसका श्रेय द्विवेदी जी के अतिरिक्त किसे दिया जाय ? वीसवीं शताब्दी के आरंभ में निवंध-रचना की ओर साहित्य-सेवियों का ध्यान आकृष्ट करनेवाले द्विवेदी जी ही थे। उनको रास्ता दिखाने के लिए उन्होंने लार्ड बेकन के कुछ निवंधों का विकन-विचार- हिंदी-साहित्य के रिक्त अंगों की पूर्ति करने के लिए उत्साहित किया। अपने इस प्रयत्न में उन्हें आशातीत सफलता भी मिली। उनकी इच्छा पूर्ण हुई और हिंदी की दिन-दिन उन्नति होने लगी। एक शब्द में द्विवेदी जी के लेखों का यही महत्त्व है।

पुस्तकॅ

सुप्रसिद्ध अँगरेजी लेखक जानसन की सब पुस्तकें प्रकाशित होने के बाद फांस, जर्मनी और इटली के बड़े-बड़े विद्वानों ने आश्चर्य से कहा था—इतना काम तो कई साहित्यिक संस्थाओं का होना चाहिए—शायद कई 'अकेडमी' मिल कर भी इतने थोड़े समय में इतना नहीं लिख सकतीं जितना इस एक व्यक्ति ने अपने जीवनकाल में लिखा है। यही बात द्विवेदी जी के विषय में भी कही जा सकती हैं। मोटे तौर पर दो-एक विद्वानों ने, जिनमें श्रीयुत शिवपूजनसंहाय जी और पंडित यज्ञ-दत्त जी शुक्त बी० ए० का नाम विशेष 'उल्लेखनीय हैं, हिसाब लगाकर अनुमान किया है कि लगभग रेप्र वर्ष के अंदर द्विवेदी जी ने लगभग रेप्र हजार पृष्ठ—एक वर्ष में लगभग १ हजार पृष्ठ—लिखे हैं। इनमें अधिकांश लेख हैं, जो प्रायः सभी पुस्तकों के रूप में संकितत हो चुके हैं। संपादकीय टिप्पिएयाँ और एक-एक, दो-दो सकों के छोटे-छोटे नोट अभी वाक़ी हैं। उनकी पुस्तकों की सूर्चा इस प्रकार है—

पद्य

(१) विनय-विनोद (१८८६) (२) विहार-झाटिका (१८६०) (३) स्नेहमाला (१८६०) (४) ऋतु-तरंगिणी (१८६१) (५) गंगालह्री (१८६१ अनुवाद) (६) देवीस्तुतिशतक (१८६२) (७) महिम्न-स्तोत्र (८) कुमार-संभव-सार (कालिदास के कुमार फा० ६ हिंदी-साहित्य के रिक्त अंगों की पूर्ति करने के लिए उत्साहित किया। अपने इस प्रयव्न में उन्हें आशातीत सफलता भी मिली। उनकी इच्छा पूर्ण हुई और हिंदी की दिन-दिन उन्नति होनं लगी। एक शब्द में द्विवेदी जी के लेखों का यही महत्त्व है।

पुस्तकॅ

सुप्रसिद्ध श्रॅगरेजी लेखक जानसन की सब पुस्तकें प्रकाशित होने के बाद फांस, जर्मनी श्रोर इटली के बड़े-बड़े विद्वानों ने श्राश्चर्य से कहा था—इतना काम तो कई साहित्यिक संस्थाश्रों का होना चाहिए—शायद कई 'श्रकेडमी' मिल कर भी इतने थोड़े समय में इतना नहीं लिख सकतीं जितना इस एक व्यक्ति ने श्रपने जीवनकाल में लिखा है। यही बात द्विवेदी जी के विषय में भी कही जा सकती है। मोटे तौर पर दो-एक विद्वानों ने, जिनमें श्रीयुत शिवपूजनसंहाय जी श्रोर पंडित यज्ञ दत्त जी श्रक्त बीठ ए० का नाम विशेष 'उल्लेखनीय हैं, हिसाव लगाकर श्रनुमान किया है कि लगभग २५ वर्ष के श्रंदर द्विवेदी जो ने लगभग २५ हजार पृष्ठ—एक वर्ष में लगभग १ हजार पृष्ठ—िलखे हैं। इनमें श्रिधकांश लेख हैं, जो प्रायः सभी पुस्तकों के रूप में संकलित हो चुके हैं। संपादकीय टिप्पिएयाँ श्रीर एक-एक, दो-दो सकों के छोटे-छोटे नोट श्रभी वाकी हैं। उनकी पुस्तकों की सूची इस प्रकार है—

पद्य

(१) विनय-विनोद (१८८६) (२) विहार-झाटिका (१८६०) (३) स्नेहमाला (१८६०) (४) ऋतु-तरंगिणी (१८६१) (५) गंगालहरी (१८६१ अनुवाद) (६) देवीस्तुतिशतक (१८६२) (७) महिम्न-स्तोत्र (८) कुमार-संभव-सार (कालिदास के कुमार फा० ६

परिचय भी है। 'किरातार्जुनीय के कतिपय दोप और गुगा। शीर्पक नोट वड़े महत्त्व का है। यह भूमिका ४४ प्रष्ठों में समाम हुई है । (२०) त्र्यालोचनांजलि (१६२० लेखां का संयह) (२१) त्राख्यायिका सप्तक (१६२७ वँगला, श्रॅगरेजी श्रोर संस्कृत-भाषात्रों की भिन्न-भिन्न पुस्तकों के त्राधार पर १६०२, ३,४ श्रीर १३ में लिखी हुई सात कथा-प्रधान कहानियाँ) (२२) के विद-कीर्तन (१६२७) (२३) विदेशी विद्वान् (१६२७, लेखों का संप्रह) (२४) प्राचीन चिह्न (१६२७) (२४) चरित-चर्या (लेखों का संग्रह) (२६) पुरावृत्त (१६२७) (२७) लोग्रर प्राइमरी रीडर (२८) अपर प्राइमरी रीडर (२६) शिचा-सरोज (रीडर पाँचवाँ भाग) (३०) वालवोध या वर्ण-बोध (प्राइमर) (३१) जिले कानपुर का भूगोल (३२) आध्यात्मिकी (१६२६) (३३) श्रौद्योगिकी (१६२०) (३४) रसज्ञ-रंजन (१६२०) (कविता विप-यक लेखों का संग्रह) (३४) कालिनास (१६२०) (३६) वैचिन्न चित्रण (३७) विज्ञानवार्ता (१६३०, विज्ञानसंवंधी लेखों का संप्रह) (३८) चरित्र-चित्रण (जून १६२६ लेखों का संप्रह) (३६) विज्ञ-विनोद (४०) समालोचना-समुचय (त्रालोच-नात्मक लेखों का संमह--१६२८), (४१) वांग्विलास, (४२) साहित्य-संदर्भ (१६२४--पुरातन विषयों त्रौर पुरातन पुस्तकों-संबंधी २० त्रालोचनात्मक लेखों का संग्रह) (४३) वनिता-विलास १६१६–१६०३,४, १३ में लिखे हुए १० क्रियों के परिच-यात्मक जीवनचरितों का संग्रह) (४४) सुकवि-संकीर्तन (१६२२-लेखों का संप्रह) (४४) प्राचीन पंडित और कवि (१६५६ अन्य भाषाओं—विशेष कर मराठी और अँगरेजी—के आधार पर लिखे हुए जीवन-चरित) (४६) संकलन (१६३१) (४७) विचार्-विमर्श (१६३१) (४८) पुरातत्त्वप्रसंग (जनवरी १६२६-इसी विषय के लेखों का संप्रह) (४६) साहित्यालाप (लेखों का संप्रह)

परिचय भी है। 'किरातार्जुनीय के कतिपय दोप और गुगा शीर्पक नोट वड़े महत्त्व का है। यह भूमिका ४४ पृष्ठों में समाम हुई है। (२०) त्र्यालोचनांजिल (१६२० लेखों का संयह) (२१) त्राख्यायिका सप्तक (१६२७ वँगला, श्रॅंगरेजी श्रौर संस्कृत-भाषाओं की भिन्न-भिन्न पुस्तकों के आधार पर १६०२, ३,४ श्रीर १३ में लिखी हुई सात कथा-प्रधान कहानियाँ) (२२) के विद-कीर्तन (१६२७) (२३) विदेशी विद्वान् (१६२७, लेखों का संप्रह) (२४) प्राचीन चिह्न (१६२७) (२४) चरित-चर्या (लेखों का संग्रह) (२६) पुरावृत्त (१६२७) (२७) लोत्र्यर प्राइमरी रीडर (२८) अपर प्राइमरी रीडर (२६) शिचा-सरोज (रीडर पाँचवाँ भाग) (३०) बालवोध या वर्ण-बोध (प्राइमर) (३१) जिले कानपुर का भूगोल (३२) आध्यात्मिकी (१६२६) (३३) त्र्यौद्योगिकी (१६२०) (३४) रसज्ञ-रंजन (१६२०) (कविता विप-यक लेखों का संप्रह) (३४) कालिग्रस (१६२०) (३६) वैचित्रय चित्रण (३७) विज्ञानवार्ता (१६३०, विज्ञानसंबंधी लेखों का संप्रह) (३८) चरित्र-चित्रण (जून १६२६ लेखों का संप्रह) (३६) विज्ञ-विनोद (४८) समालोचना-समुचय (त्रालोच-नात्मक लेखों का संग्रह--१६२८), (४१) वांग्विलास, (४२) साहित्य-संदर्भ (१६२४—पुरातन विषयों त्र्यौर पुरातन पुस्तकों-संबंधी २० त्रालोचनात्मक लेखों का संग्रह) (४३) वनिता-विलास १६१६-१६०३,४, १३ में लिखे हुए १० कियों के परिच-यात्मक जीवनचरितों का संग्रह) (४४) सुकवि-संकीर्तन (१६२२-लेखों का संप्रह) (४४) प्राचीन पंडित और कवि (१६५/: अन्य भाषात्रों-विशेष कर मराठी और अँगरेजी-के आधार पर लिखे हुए जीवन-चरित) (४६) संकलन (१६३१) (४७) विचार्-विमर्श (१६३१) (४८) पुरातत्त्वप्रसंग (जनवरी १६२६-इसी विपय के लेखों का संग्रह) (४६) साहित्यालाप (लेखों का संग्रह)

वेदना' (नेपध-चरित-चर्चा पर 'सरस्वती'--२५-५८५०) में मिल सकते हैं। वास्तव में उनके प्रायः सभी अनुवादित प्रथी में उनकी भाषा-राली क्रमशः विकसित हुई है। इन सबमें भाषा-संस्कार के इतिहास की प्रचुर सामग्री मिलगी; किंतु इनमें द्वियेदी जी का यह व्यक्तित्व यहुत-कुछ हूँ दुने पर ही मिलेगा जो इस समय हम लोगों के सामने विशद रूप में आया है। उन्हें पड़कर साहित्य का कोई विद्यार्थी संभवत: यह नहीं कह सकेगा कि यह दिवेदी जी की ही लेखनी है, और किसी की नहीं। स्राज से सौ वर्ष के वाद का विद्यार्थी तो कदाचित स्रोर भी द्विविधा में पड़ेगा। बात यह है कि द्विवेदी जी ने खड़ी बोली की भाषा-शैली की व्यवस्था अवश्य की है; उसमें निश्चय ही उनका निजत्य हो, किंतु यह व्यवस्था उनकी क़लम के मँजने पर ही हुई है और वह निजत्व आते-आते आया है। उन्होंने केवल दूसरों की भाषा का ही नहीं, श्रपनी भाषा का भी मार्जन किया हैं। उनकी शब्द-संपत्ति स्त्रीर भाषा की संघटित प्रतिमा कालां-तर में प्रतिष्ठित हुई है। * परंतु यह होते हुए भी हमें मान्ना पड़ेगा कि उनके अनुवादित ग्रंथ भी मौलिक का-सा आनंद देते हैं ऋौर उनसे मनोरंजन के साथ-साथ ज्ञान-प्रापि भी होती है।

द्धि० अ० ग्रंथ० पृ० १ प्रस्तावना ।

वेदना' (नेपध-चरित-चर्चा पर 'सरस्वती'--२५-'र ५१२) में मिल सकते हैं। वास्तव में उनके प्रायः सभी अनुवादित पंथी में उनकी भाषा-राली क्रमशः विकियत हुई है। इन गबमें भाषा-संस्कार के इतिहास की प्रचुर सामगी मिलगी; किंतु इनमें द्वियेदी जी का यह व्यक्तित्व यहुत-कुछ हूँ ढ़ने पर ही मिलेगा जो इस समय हम लोगों के सामने विशद म्प में त्राया है। उन्हें पड़कर साहित्य का कोई विद्यार्थी संभवतः यह नहीं कह सकेगा कि यह दिवेदी जी की ही लेखनी है, श्रौर किसी की नहीं। स्राज से सौ वर्ष के बाद का विद्यार्थी तो कदाचित स्रौर भी द्विविधा में पड़गा। बात यह है कि द्विवेदी जी ने खड़ी बोली की भाषा-शेली की व्यवस्था अवश्य की है; उसमें निश्चय ही उनका निजत्व हो, किंतु यह व्यवस्था उनकी क़लम के मँजने पर ही हुई है और वह निजत्व आते-आते आया है। उन्होंने केवल दूमरों की भाषा का ही नहीं, श्रपनी भाषा का भी मार्जन किया हैं। उनकी शब्द-संपत्ति स्त्रीर भाषा की संघटित प्रतिमा कालां-तर में प्रतिष्ठित हुई है। परंतु यह होते हुए भी हमें मान्ना पड़ेगा कि उनके अनुवादित ग्रंथ भी मौलिक का-सा आनंद देते हैं ऋौर उनसे मनोरंजन के साथ-साथ ज्ञान-प्रापि भी होती है।

द्धि० अ० ग्रंथ० ए० १ प्रस्तावना ।

फंपादिक रीतादिशन फीओं भई विनास की निश्चिर निरुक्त भवे कीन्त्री श्वनल प्रकार ॥ इम शाया रमयुक्त सुद् एत ध्या यत्रल दानि । इटि फाह धर्यो गर्भी सम्बन लागत ग्लानि ॥ वानि यसास्थिति इन सर्च नर सुग नयम विहान । उदर दिमायन भाग हति फहत येन अति दीन ॥ या दिन कीं जीन्या नविद्र करों न पत्न विदार । नुति मत कन फुन की घर तू जानु शतार ॥ शासकान रविकिरण सम केमन लाले पान। कर शरपा श्रक चल्नती मही प्रवा द्रयान ॥ शनि व्यापाल शिविषेत में जे नर निरय प्रमात। तिनक्द कब्हें गामहं चूनि न वर्त सुनात॥ प्रतिबन द्यति धन पानवनि दाये सरवस्तुन्द । हाच्छ्न फल सब काल में देत लेन धानंद्र॥ दाम राम मरिता निकट मधुर खुशांतल वारि। येकि सृद्व कीमन नवड फीजे सेन सँवारि॥ तक नीच तन धन हित गाय धनीन द्वार। भोगत यह संताप धर सहत कलेस धपार ॥ शै त शिला विस्तीर्ण शित शय्या सुखद बनाय। धरत ध्यान तय शुक्रचित कानन काम नमाय।। श्रवनी-श्रवनी कर गये जे दिन माँगत म्यान। हैं सि प्रावन तथ सुमिरि तिन सकत गात पुलकात ॥ योगीरवर निज योगवत्त समदरशी सत्र काल। चिदानंद चिंतन चतुर परत न मायाजाल ॥ जिन तन सन धारपन कियो रहे ज्ञान महं पूरि । तिन चरणन की रेगुका मेरी जीवन-मूरि॥

कंपादिक शेतादिशन कंश्मी भहे विनास की गिरिवर निरम्म भवं कीन्द्री धनना प्रकाश ॥ इस शारा रमयुक संदुषात्र धर यहरल दानि। हृदि फाह धरणी गर्मी समुभन लागत रलानि॥ तानि यगास्थिति इन सर्च नर युग नयम विहान । उदर दिगायन भाग इति फहत येन अति दीन ॥ या दिन की जींच्या नवदि करों न पछ विचार । तृति मृत फन फुन की घर यू जानु धनार॥ प्रातकान रविकिरण सम केमन लाले पान। कर शरपा ग्रह चल् नहीं पदी प्रदा दस्यान ॥ शति व्याकत श्राधिके में जे नर निस्य प्रमात। तिनका कबहै नामहें जुनि न दर्त सुनात॥ प्रतिबन छति धन पत्रवनि छ।ये तरुवावृनद् । ष्ट्राच्युत फल सब काक में देत लेन यागंद्।। द्यम राम मरिता निकट मधुर सुशीतल वारि। वैक्ति सहूल कीमना नवड फोजे सेन सँवारि॥ तक नीच जन धन हित जाय धनीन दुवार। भोगत यह संताप धर सहत कलेस धपार ॥ शैज शिला विस्तीर्ण शित शब्या सुखद बनाय। धरत ध्यान तव शुद्रचित कानन काम नमाय॥ श्रपनी-श्रपनी कर गये जे दिन माँगत म्यान। हँमि प्रावत तथ सुमिरि तिन सकल गात पुलकान ॥ योगीखर निज योगवज्ञ समदरशी सत्र काल। चिदानंद चिंतन घतुर परत न मायाजाल ॥ जिन तन मन धरपन कियो रहे ज्ञान महें पूरि। तिन चरणन की रेग्रका मेरी जीवन-मूरि॥

नहीं रह गया है। फलतः उन्होंने प्रजभाषा को छो। कर छात्री वाली में कविता करना आरंग कर दिया। खड़ी बोली की उनकी पहली कविना 'बलीवर्द' नाम की हैं। यह १६ श्राक्टोबर सन १६०० में 'श्रीवेद्दाटेरवर-समाचार'में छुत्री शी । नव वे कॉमा में जीव आईव पीव रेलवे के दक्षा में काम करने थे। उनकी रचनायें 'भारत-भित्र', 'हिंदी-वंगवासी' खादि तत्कालीन पत्नों में प्रकाशित हुआ करती थीं । 'सरम्थती' के प्रकाशित होने पर उन्होंने उसमें भी छुपने को छापनी रचनायें भेजी। 'हीपर्यान्यचन-वागा-वर्ला' (फिरातार्जुनीय के प्रथम सर्गान्तर्गन युधिष्ठिर है। द्रीपदी की उत्ति)-शीर्षक उनकी कथिना 'सरस्वनी' (नवस्वर १६००) में छपी थी। इसके तगभग तीन वर्ष,पहले (१२ टिसंबर सन १८६६ में) उन्होंने जीधर-सप्रक नामक कविता लिखी थी, जिसमें पाठक जी की कीमल-कांत-पदावली. भाषा की नकाई, उक्तियों की मुन्दर तथा मार्मिक व्यंतना श्रीम काव्य-माधुर्क्य पर मुग्ध होकर द्विवेदी जी ने उन्हें गीतगोविंद के रचिता 'जयदेव' का अवतार और खड़ी बोली के आधुनिक प्रगतिन्युग का ज्याद्याचार्य साना था। इस 'मप्तक' से हमें द्विवेदी जी की मनोवृत्ति का भी पना लग जाता है; क्योंकि स्वड़ी बोली की दीन-हीन दशा का चित्र म्वीचते हुए उन्होंने पाठक जी में इस कलंक का धान की प्रार्थना की थी।

'मरस्वती' के संपादक होने के बाद उन्होंने स्वयं इस कभी को दूर करने का प्रयत्न किया और अन्य कियों को भी खड़ी बोली में ही किवता करने के लिए प्रोत्साहन दिया। उनकी फुटकर किवताओं का पहला संप्रह 'काव्य-मंजूपा' के नाम सं १६०३ में प्रकाशित हुआ था। उसमें सन् १८६५ से १६०२ तक की ३३ रचनायें—१६ ब्रजमापा की, द संस्कृत की और ६ खड़ी

नहीं रह सया है। फननः उन्होंने प्रजसाया को छो। कर छारी वाली में कविता करना आरंग कर दिया। खड़ी बोली की उनकी पहली कविना 'वलीवर्द' नाम की हैं। यह १६ 'ब्राक्टोबर सन १६०० में 'श्रीवेद्दुटेश्वर-गमाचार'में खुरी थी। नव वे काँसी में जीव आईव पीव रेलवे के दक्षा में काम काने थे। उनकी रचनार्ये 'भारत-मित्र', 'हिंदी-वंगधामी' 'प्रादि तत्कालीन पत्रों में प्रकाशित हुआ करती थीं । 'सर्वती' के प्रकाशित होने पर उन्होंने उसमें भी छपने को अपनी रचनायें भेजी। 'हीपर्व-बचन-वाण-वर्ला' (फिरातार्ज्जनीय के प्रथम सर्गान्तर्गन व्धिष्ठिर है द्रीपदी की उत्ति)-शीर्षेक उनकी कविना 'सरस्वती' (नवस्वर १६००) में छपी थी। इसके तमभग तीन वर्ष,पहले (१२ दिसंबर सन १८६६ में) उन्होंने जीधर-सप्रका नामक कांबता लिखी थी, जिसमें पाठक जी की कोमल-कांत-परावली. भाषा की नकाई, उक्तियों की मुन्दर तथा मार्मिक व्यंजना श्रीर काव्य-माधुर्य्य पर मुग्ध होकर द्विवेदी जी ने उन्हें गीतगोविंद के रचयिता 'जयदेव' का अवतार और खड़ी बोली के आधुनिक प्रगति-युग का आद्याचार्य माना था। इस 'सप्तक' से हमें द्विवेदी जी की मनोवृत्ति का भी पना लग जाता है; क्योंकि खड़ी वोली की दीन-हीन दशा का चित्र खींचते हुए उन्होंने पाठक जी में इस कलंक का थाने की प्रार्थना की थी।

'मरस्वती' के संपादक होने के बाद उन्होंने स्वयं इस कभी को दूर करने का प्रयत्न किया और अन्य कवियों को भी खड़ी बोली में ही कविता करने के लिए प्रोत्साहन दिया। उनकी फुटकर कविताओं का पहला संप्रह 'काव्य-मंजूपा' के नाम सं १६०३ में प्रकाशित हुआ था। उसमें सन् १८६४ से १६०२ तक की ३३ रचनायें—१६ ब्रजभाषा की, द संस्कृत की और ६ खड़ी मेरे इमेर्ड्स व्यापि स्थानीयाँ भित्तारियमें मुख्याँ वेषुसंख्या मार्ग्स वृत्ति मन्तिमः श्रीमासुन्य सर्विधि राजस्तायम् असम्बर्धाः

---गरराती

×

स्वर्गीय पंडित पड़मानिंद रामी की मृत्यु से उपन जनत २० जुलाई, सन १६३२ के उन्तोंने के ब्लोफ किस्ये रे। वे अन्तरत १६३२ के 'विज्ञाल-नामन' के 'ज्ञानिंद-प्रेट'क सुन्ध्रित पर प्रकाशित हुए से । ब्लोक इस महार हैं—

नाते दिवं स्थान सुराज पश्चानंह निवय स्था अस्ति साथि समेत सन्त्रे ।

क्यार्द भवारशमनस्त्रमृष्टानिकः प्राप्ते हमेन विधिना यहुपज्ञितेन ॥

अ अ अ
मंत्रकृष नेऽथ संस्था वधायतापं
सम्यं वदावि हदयं शतधा प्रयाति ।
श्वानंत्र्य निर्गत्युनेर्मन दोलशास्यं
श्वास्तिष्यं सम्बद्धि सम्बद्धि विनिश्चिनोमि ॥

एक पत्र पर श्लोक में दी हुई उनकी सम्मति इस प्रकार है—

सुरेश्वरः श्रीभगवागनन्तः सुरेशविंहस्य यशस्त्रोतु । यस्य प्रसादारवरशेवभूग पत्रं प्रशन्तं च कुमारनाम ।

द्विवेदी जी की उक्त किवतायें किस कोटि की हैं, हिंदी-साहित्य में उनको कोई म्थान दिया जा सकता है या नहीं, दूसरों के विचार उनकी किवता के संबंध में क्या रहे हैं, ख्रादि की विवेचना करने के पहले हम विषय, भाषा ख्रीर छंद-विषयक ऐसा ही विषय द्विवेदी जी को पसंद था और उसी प्रकार के भावों को व्यक्त करनेवाले वाबू मैं शिलीशरण गुप्त का वे आदर करते थे। उनकी 'भारत-भारती' का उन्होंने हृदय से अभिनंदन किया था। साथ ही सभाज में प्रचलित अन्य क्रुरीतियों का विश्व खींचकर उन्हें दूर कराने का भी उन्होंने प्रयक्त किया। ऐसी कविताओं के लिए व्यंग्य की आवश्य कता होती हैं। इसका एक उदा-हरण यहाँ हम देते हैं। कान्यकुट्य बाहाणों का एक 'कनौजिया सम्मेलन' सन् १६०५ में होली के दिनों में हुआ था। इसमें दिवेदों जी ने ठहरौनी की निंदा करते हुए एक मजाक किया था—

इरा देर के लिए समिम्प थाप पोडशी काँरी हैं, समा कीनिए असभ्यता वह, हम आमीस अनारी हैं। मान लीनिए, नेन्न शापके कानों तक वह आपे हैं, पीन परोधर देख आपके कुंतर कुंम लगाये हैं।

साहित्य-देत्र में घाँघली मचानेवाले प्रंथकारों की खबर लेने के लिए उन्होंने 'ग्रंथकार-लच्चण' शीर्षक एक कविता लिखी थी, जो 'सरस्वती' (भा० २, सं० ८) में छपी थी। इसका कुछ ग्रंश यों है—

> इधर-उधर से जोड़ बटोर जिखते हैं जो तोड़-मरोड़

इस प्रदेश में वे ही पूरे ग्रंथकार कहलाते हैं।

'विधि-विडंबना'-शीर्षक कविता में एक स्थल पर उन्होंने लिखा है—

> ग्रुद्धाशुद्ध शब्द तक का है जिनकाे नहीं विचार। विख्वाता है उनके कर से नये नये अख़वार।।

ऐसा ही विषय द्विवेदी जी को पसंद था और रसी प्रकार के भावों को व्यक्त करनेवाले वावू मैं थेलीशरण गृप्त का वे आदर करते थे। उनकी 'भारत-भारती' का उन्होंने हृदय से अभिनंदन किया था। साथ ही समाज में प्रचलित अन्य कुरीतियों का विश्व खींचकर उन्हें दूर कराने का भी उन्होंने प्रयक्त किया। ऐसी कविताओं के लिए व्यंग्य की आवश्य कता होती है। इसका एक उदा-हरण यहाँ हम देते हैं। कान्यकुट्य बाह्यणों का एक 'कनौजिया सम्मेलन' सन् १६०४ में होली के दिनों में हुआ था। इसमें हिवेदो जी ने ठहरीनी की निंदा करते हुए एक मजाक किया था—

ज़रा देर के लिए समिम्प याप पोडशी काँरी हैं, चमा कीजिए यसभ्यता यह, हम यामीण यनारी हैं। मान लीजिए, नेन्न शापके कानों तक पढ़ आपे हैं, पीन परोधर देख यापके कुंतर कुंम लगाये हैं।

साहित्य-चेत्र में धाँधली मचानेवाले यंथकारों की खबर लेने के लिए उन्होंने 'प्रंथकार-लच्चा' शीर्षक एक कविता लिखी थी, जो 'सरस्वती' (भा० २, सं० ८) में छपी थी। इसका कुछ अंश यों है—

> इधर-उधर से जोड़ बटोर जिखते हैं जो तोड़-मरोड़

इस प्रदेश में वे ही पूरे प्रथकार कहलाते हैं।

'विधि-विडंबना'-शीर्षक कविता में एक स्थल पर उन्होंने लिखा है-

> श्रद्धाश्रद्ध शब्द तक का है जिनकाे नहीं विचार। विखवाता है उनके कर से नये∙नये श्रख़वार‼

सुरम्यता ही जमधीन बांति है; श्रह्ण श्रारमा रस है मेरोहरे। शरीर तेरा सब शब्दमाय है; नितांत निष्कर्षः वहीं, यहीं, यहीं।

उपर कहा गया है कि इएरंम में द्वितेशी ही ब्रजमापा में किवता किया करते थे; बाद में उन्होंने खड़ी दोन्ती को अपना लिया। पर खड़ी बोली की उनकी प्रारंभिक किवताओं से स्वर्णिय पंडित श्रीधर पाठक जी तथा स्वर्गीय पंडित नाथूराम शंकर जी की रचनाओं में कहीं कहीं ब्रजमापा की पुट सिलती हैं। किसी सीमा तक यह स्वामाविक भी था। द्विवेदी जी तब सस्क्रत-कियों का अध्ययन कर रहे थे। इसका भी उनके विचारों पर बड़ा प्रभाव पड़ा। यहाँ उनकी उरा समय की एक किवता उदाहरणार्थ दी जाती है। विषय पर संस्कृत-साहित्य के दार्शनिक विचारों का स्पष्ट प्रभाव है। और भाषा—

क्या वस्तु मृत्यु ? जिसके भय से विचारे।
होते प्रकंप परिपूर्ण मनुष्य सारे।
क्या विह्न है ? विणिख है ? यहि है विपारी ?
किंवा विद्याले तमनोम हदांगधारी ?
पृथ्वी - रामुद्र - सरिता - नर - नाग - सृष्टि;
मांगल्य - मूल - मयं वारिद् वारिवृष्टि।
कर्तार कोन इनका ? किस हेतु नाना—
व्यापार - भार सहता - रहता महाना ?
विस्तीर्ण विश्व रच लाभ न जो उठाता;
स्वष्टा समर्थ फिर क्यों उसके। बनाता ?
जो हानि लाभ कुछ भी उसके। न होता;
तो मूल्यवान् फिर क्यों निज काल खेता ?

सुरम्यता ही जमनीन नांति है; श्राहत्य झारण रस है मरोहरे। शरीर तेरा सब शब्दम, ए हैं; नितांत निष्कर्ष, यही, यही,

ऊपर कहा गया है कि इल्संभ में द्वितेशी की जनभाषा में किवता किया करते थे; बाद में उन्होंने खड़ी देग्ली को अपना लिया। पर खड़ी वोली की उनकी प्रारंभिक कविताओं से स्वर्गिय पंडित श्रीधर पाठक जी तथा स्वर्गीय पंडित नाथ्राम शंकर जी की रचनाओं में कहीं कहीं अजभाषा की पुट सिलती है। किसी सीमा तक यह स्वाभाविक भी था। द्विवेशी जी तब सस्कत-कवियों का अध्ययन कर रहे थे। इसका भी उनके विचारों पर वड़ा प्रभाव पड़ा। यहाँ उनकी उन समय की एक कविता उदाहरणार्थ दी जाती है। विषय पर संस्कृत-साहित्य के दाशीनक विचारों का स्पष्ट प्रभाव है। और भाषा—

क्या वस्तुं मृत्यु ? जिसके भय से विचारे। होते प्रकंप परिपूर्ण मनुष्य सारे। क्या विह्न है ? विश्वित है ? यहि है विपारी ? किंवा विश्वांत-तर्म-तोम द्रद्रांगधारी ? पृथ्वी - रामुद्र - सारिता - नर - नाग - सृष्टि; मांगल्य - मृल - मयं वारिद् वारिवृष्टि। कर्तार कौन इनका ? किस हेतु नाना— व्यापार - भार सहता - रहता महाना ? विस्तीर्थ विश्व रच लाभ न जो उठाता; स्रष्टा समर्थ फिर क्यों उसको बनाता ? जो हानि-लाभ कुछ भी उसको न होता; तो मूल्यवान् फिर क्यों निज काल खेता ? तपोबली फ़ाजों के अपर एक व्यक्षे हो। लाता है, मेरा तुप्रसोध साधव है, रायों कही तू जाता है।

भाषा की शुद्धता के वाद भगत की राग्नता का प्रस्त उपस्थित हुआ। पहले लोग जड़ी दोलो में कांवना करनेवाली का ही विरोध करते थे। पर तब खड़ी धोलो का उत्तार वढ़ने लगा और बहुतों ने जजमाया को छीड़कर दुसो में क्रियता करना शुरू कर दिया तय लोगों ने यह भगड़ा उठाया कि कविता की भागा सरल हो या क्रिप्ट । द्विवेदी जी के रासकालीन बहुत-से विद्वान् क्षिष्ट भाषा के पत्तपाती थे। आरंभ की दिलेवी जी की कविताओं की भाषा भी क्तिष्ट ही है; इसके दो-एक उदाहरण 'कविता-कलाप' में भी मिलने हैं। पर कालान्तर में वे सरल मापा के पद्माती हो गये। उनका कथन था कि हिंदी के अतिरिक्त सभी उन्नत भाषाओं में भद्य और पद, दोनों की भाषा एक ही है। त्र्यतः हमारा कर्तव्य भी यही हैं कि अन्य सभ्य समाजों की तरह जिस भाषा में गद्य लिखा जाता है उसी में कविता भी करें। दूसरा कारण यह भी था कि द्विवेदी जी हिंदी-भाषा को लरल बनाकर उसका प्रचार-प्रकार वढ़ाना चाहते थे। यहाँ 'कबिया-कलाप' से उनकी वीन वाल की भाषा की कविता का एक नजूना दिया. जाता है—

^{*} इनते हैं, उनक मन में उस समय विलियम वर्डस्वर्थ का यह पुराना सिद्धान्त मो कुछ जम गया था कि गव और पद्य का विन्यास पद्य ही प्रकार का होना चाहिए। वर्डस्वर्थ अपने इस सिद्धान्त पर स्थिर न रह सका, कालान्तर में उसका यह सिद्धान्त असंगत सिद्ध हुपा—उरक्रप्ट कविताओं में उसका पालन न असा जा सका। द्विवेदी जो ने भा वरावर उक्त मिद्धान्त के अनुकूल रचना नहीं की है। अपनी किवता में अनुप्रास व कामलकांतपदावली का व्यवहार उन्होंने किया है।

तपोबली इतजों के अपर एक व्यक्षे हो। जाता है, मेरा तूझमोद साधाउ है, राफो कहीं तू काता है।

भाषा की शुद्धता के बाद भगत की राम्तता का प्रस्त उपस्थित हुआ। पहले लोग ज्वड़ी बोलो में कांबना करनेवाली का ही विरोध करते थे। पर तब खड़ी धोलो का एचार वढ़ने लगां और बहुतों ने जनमाना की छिङ्कर रूपों ने जियता करना शुरू कर दिया तव लोगों ने यह भगड़ा ज्ञापा कि कविता की भागा सरल हो या क्रिप्ट । द्विनेदी जी के समकालीन बहुत-से विद्वान् किए भाषा के पत्तपाती थे। आरंभ की क्रिकेटी जी की कविताओं की सापा भी किए ही है; इसके दो-एक उदाहरण 'कविता-कलाप' में भी मिलने हैं। पर कालान्तर में वे सरल मापा के पदमाती हो गये। उनका कथन था कि हिंदी के अतिरिक्त सभी उन्नत भाषाओं में भन्न और पद्म, श्रन्य सभ्य समाजों की तरह जिस भाषा में गद्य तिखा जाता है उसी में कविता भी करें। दूसरा कारण यह भी था कि द्विवेदी जी हिंदी-भाषा को सरल वनाकर उसका प्रचार-प्रसार 'वढ़ाना चाहते थे। यहाँ 'कथिया-कलाप' से उनकी दोलवाल की भाषा की कविता का एक नजूना दिया. जाता है—

^{*} जुनते हैं, उनक मन में उस समय विलियम वर्डस्वर्थ का यह पुराना सिद्धान्त मो कुछ जम गया था कि गय छोर पद्य का विन्यास एक ही प्रकार का होना चाहिए। वर्डस्वर्थ अपने इस सिद्धान्त पर स्थिर न रह सका, कालान्तर में उसका यह सिद्धान्त असंगत सिद्ध हुपा—उरम्ग्ट कविताओं में उसका पालन न उसका वर्ष सका। द्विवेदी जो ने भा वरावर उक्त मिद्धान्त के अनुकृत रचना नहीं की है। अपनी कविता में अनुप्रास व कामलकांतपदावली का व्यवहार उन्होंने किया है।

वस्तुतः हुआ भी ऐसा ही। पहले तो लोग द्विवेदी जी की वातों का विरोध करते रहे; पर अंत में उन्होंने उनका कहना मान लिया। यह बात उन्होंने स्वसम्पादित 'कविता-कलाप' को भूमिका में, २ करवरी, १६०६ में लिखी है—

"किसी-किसी की राय है कि बोल-चाल की भाषा में श्रम्छी किता नहीं हो सकती।पर इस पुस्तक में श्रिध कांश कितायों बोल-चाल की भाषा में हैं श्रीर उनमें शब्दों का श्रंग भंग बहुत कम हुआ है। इस नये ढंग की कितत में 'सरस्वती' में प्रकाशित होते देख बहुत लोग श्रव इनकी नक्षज श्रिकता से करने लगे हैं।"

द्विवेदी जी के इस कथन का यह तात्पर्य नहीं है कि वे व्रजमापा या अन्य भाषा की किंवताओं का आदर नहीं करते थे। संस्कृत की किंवता का तो उन्होंने अनुवाद किया ही है; व्रजमापा और उर्दू की किंवता का भी वे आदर करते थे। इस कथन की पुष्टि उनके इस वाक्य से होती है—

"कविता यदि सरस और भावमयो है ता उसका अवश्य आदर होगा—भाषा उसकी चाहे बन की हे। चाहे उर्दू ।"

—सरस्वती (१**४-**४-२२८)

साहित्य-सेवा में पदार्पण करने के पहले, विद्यार्थी की हैसियत से, द्विवेदी जी कुछ दिनों तक वंवई की छोर रहे थे । वहाँ उनका परिचय मराठी-भाषा से हुआ था। उन्होंने उसका थोड़ा-बहुत अध्ययन किया। इस भाषा के साहित्य से वे वड़े प्रभावित हुए। मराठी-कविता में संस्कृत के छंदों का अधिकतर ज्यवहार होता. है। द्विवेदी जी संस्कृत के विद्यार्थी थे और उसके कवियों की सरस और मनोहर उक्तियों का आनंद ले

वस्तुतः हुआ भी ऐसा ही। पहले तो लोग द्विवेदी जी की वातों का विरोध करते रहे; पर अंत में उन्होंने उनका कहना मान लिया। यह वात उन्होंने स्वसम्पादित 'कविता-कलाप' को भूमिका में, २ करवरी, १६०६ में लिखी है—

"किसी-किसी की राय है कि बोल-चाल की भाषा में अच्छी किवता नहीं हो सकती।प्र इस पुस्तक में अधिकांश किवतायें बोल-चाल की भाषा में हैं छोर उनमें शब्दों का छंग-भंग बहुत कम हुआ है। इस नये ढंग की किवतायें 'सरस्वती' में प्रकाशित होते देख बहुत लोग अब इंनकी नक्षज अधिकता से करने लगे हैं।"

द्विवेदी जी के इस कथन का यह तात्पर्य नहीं है कि वे व्रजमापा या अन्य भाषा की किवताओं का आदर नहीं करते थे। संस्कृत की किवता का तो उन्होंने अनुवाद किया ही है; व्रजमापा और उर्दू की किवता का भी वे आदर करते थे। इस कथन की पुष्टि उनके इस वाक्य से होती है—

"कविता यदि सरस स्रोर भावमयो है ता उसका स्रवश्य स्रादर होगा—भाषा उसकी चाहे बन की है। चाहे उद्दें।"

--- सरस्वती (१४-४-२२**८**)

साहित्य-सेवा में पदार्पण करने के पहले, विद्यार्थी की हैसियत से, द्विवेदी जी कुछ दिनों तक वंवई की छोर रहे थे। वहाँ उनका परिचय मराठी-भाषा से हुआ था। उन्होंने उसका थोड़ा-बहुत अध्ययन किया। इस भाषा के साहित्य से वे बड़े प्रभावित हुए। मराठी-कविता में संस्कृत के छंदों का अधिकतर ज्यवहार होता. है। द्विवेदी जी संस्कृत के प्रियार्थी थे और उसके किवयों की सरस और मनोहर उक्तियों का आनंद ले

तक पहुँचाया जाय. जिससे हिंदी का प्रचार-प्रमार वह । संस्कृत-भाषा और हिंदू-मंस्कृति के पत्तपाती वे थे ही । उनके इस आदर्श की दूसरों ने भी समका और वहुनों ने संस्कृत के वृत्तीं की अपना लिया ।

पर द्विवेदी जी छंद की किश्रता की आतमा नहीं मानते थे। उनका कथन था कि छंद किश्रता के लिए उसी प्रकार है, जैसा कामिनी का सोंदर्य बढ़ाने के लिए अलंकार। कुड़ लोग कहा करते हैं कि विशेष छंदों का प्रयोग करने से ही किश्रता में माधुर्य रहना है। द्विवेदी जी ऐसे कथन का भी थिरोध करने थे। वे 'अभिज्ञाचर' के भी पचपाती थे। संभव है, इसका कारण उनका संस्कृत का अध्ययन हो। इस बात को उन्होंने वंग-किश्र माइकेल मधुस्दनदत्त के जीवनचरित में स्वीकार किया था। उन्होंने लिया है—

'वय इस प्रकार के (श्रमित्राचर) छंद येंगजा में लिखे जा सकते हें श्रीर यही योग्यता से जिये जा सकते हैं तथ हिंदी में भी उनका लिखा जाना संभव है। लियनेवाला श्रव्हा श्रीर योग्य होना चाहिए।''

---सग्स्वती (जुनाई-स्थगस्त, १६०३)

प्राचीन दरवारी-श्रालोचना-प्रणाली के पत्पाती कविता में शुभाशुभ गणों का बहुत श्रिधिक ध्यान रखते थे। सुनते हैं, श्रिशुभ गणों के कविता के श्रारंभ में श्राजाने से लेखक या उनके संवंधियों का दुरा फल भुगतना पड़ता हैं। जिनके ऐसे विचार हैं वे छंद में एक मात्रा के भी वड़ जाने पर हाय-जीवा मचा देते हैं। इसका एक उदाहरण हैं—

> पाद पीठ की शोभित करते हुए इन्द्र ने इतने पर

तक पहुँचाया जाय. जिससे हिंदी का प्रचार-प्रमार बढ़े। संस्कृत-भाषा और हिंदू-संस्कृति के पत्तपाती वे थे ही। उनके इस स्रादर्श के। दूसरों ने भी समका और बहुतों ने संस्कृत के इतों के। स्रपना लिया।

पर द्विवेदी जी छंद को किंवता की धातमा नहीं मानते थे। उनका कथन था कि छंद किंवता के लिए उसी प्रकार है, जैसा कामिनी का सोंदर्य बढ़ाने के लिए ध्रलंकार। कुछ लोग कहा करते हैं कि विशेष छंदों का प्रयोग करने से ही किंवता में माधुर्य रहता है। द्विवेदी जी ऐसे कथन का भी विरोध करते थे। वे 'श्रमित्राचर' के भी पच्चपाती थे। संभव है, इसका कारण उनका संस्कृत का ध्रध्ययन हो। इस बात को उन्होंने बंग-किंव माइकेल मधुस्दनदत्त के जीवनचरित में स्वीकार किया था। उन्होंने लिखा है—

''बय इस प्रकार के (श्रमित्राचर) छंद वेंगका में लिखे जा सकते हें श्रीर यदी योग्यता से जिये जा सकते हैं तब हिंदी में भी उनका लिखा जाना संभव हैं। लियनेवाला श्रद्धा श्रीर योग्य होना चाहिए।''

---सग्रवती (जुनाई-ध्यगस्त, १६०३)

प्राचीन दरवारी-त्रालोचना-प्रणाली के पत्नाती कविता में शुभाशुभ गणों का बहुत श्रिधिक ध्यान रखते थे। सुनते हैं, त्राशुभ गणों के कविता के त्रारंभ में त्राजाने से लेखक या उनके संविधियों की बुरा फल भुगतना पड़ना हैं। जिनके ऐसे विचार हैं वे छंद में एक मात्रा के भी वड़ जाने पर हाय-जीवा मचा देते हैं। इसका एक उदाहरण हैं—

पाद पीठ के। शोभित करते हुए इन्द्र ने इतने पर Sanskrit in Hindi. Above all it is certain and admitted by all connected with Hindi Literature that you have shown a path, quite new and better to the persent generation of Hindi writers.

-Baij Nath Gyani Dutt

संस्कृत-कविता के प्रेमी संस्कृत-वृत्तों की हिंदी में प्रचितत होते देखकर बड़े प्रसन्न हुए। श्री राधाचरण गोस्वामी भी ऐसे ही व्यक्तियों में से थे। वे वैजनाथ ज्ञानीदत्त जी से भी आगे चढ़ गये। अपने पत्र के साथ, द्विवेदी जी की प्रशंसा में, उन्होंने कई छंद लिखकर भेजे थे। उस पत्र में उन्होंने द्विवेदी जी से निवेदन करते हुए लिखा—

'श्रापकी सहृद्यता, मर्मज्ञता, काव्यासिकता ने मुक्ते प्रापकी स्तुति करने को प्रोक्ताहित किया श्रीर विशेषतः श्राप वसन्ततिलका छंदों में को किवता-रचना करते हैं. बहुत ही मधुर हैं। पर इसका श्रास्वादन बहुत थोड़ा मिला। कुछ विशेष किवता इन्हीं छंदों में कीजिए ते। बढ़ा सुख हो।

9

श्रहो महाबीरग्रसाद भाई जो तें नई कान्यसुधा वहाई पीवें तक तृप्ति न नेक श्राई करें कहाँ जों तुमरी वहाई

₹

ममंज्ञ हो सहद्यी रसिकायगण्य हिंदीहितैपि जन तो सम नाहिं श्रन्य Sanskrit in Hindi. Above all it is cert in and admitted by all connected with Hindi Literature that you have shown a path, quite new and better to the persent generation of Hindi writers.

. -Baij Nath Gyani Dutt

संस्कृत-कविता के प्रेमी संस्कृत-वृत्तों के। हिंदी में प्रचलित होते देखकर बड़े प्रसन्न हुए। श्री राधाचरण गोस्वामी भी ऐसे ही व्यक्तियों में से थे। वे वैजनाथ ज्ञानीदत्त जी से भी त्रागे बढ़ गये। त्रापने पत्र के साथ, द्विवेदी जी की प्रशंसा में, उन्होंने कई छंद लिखकर भेजे थे। उस पत्र में उन्होंने द्विवेदी जी से निवे-दन करते हुए लिखा—

"श्रापकी सहृदयता, मर्भज्ञता, काव्यश्सिकता ने मुक्ते श्रापकी स्तुति करने को शोरताहित किया और विशेषतः श्राप वसन्ततिलका छंदों में को कविता रचना करते हैं, बहुत ही मधुर हैं। पर इसका श्रास्वादन बहुत थोड़ा मिला। कुछ विशेष कविता इन्हीं छंदों में कीजिए ते। बढ़ा सुल हो।

3

थहो महाबीरगसाद भाई नो तें नई कान्यसुधा वहाई पीवें तऊ तृप्ति न नेक थाई करें कहाँ नों तुमरी वहाई

₹

ममंज्ञ हो सहृद्यी रसिकायगण्य हिंदीहितैपि जन तो सम नाहि अन्य िद्विवेदी जी की ७० वीं वर्षगाँठ के अवसर पर आज सं लगभग ६ वर्ष पहले यह लिखा गया था । लेख का कुछ श्रंश यों है—

"श्रीमान द्विवेदों जो ने श्राजन्म सरस्वती की उपासना करके, प्रेमियों के सारस्वतपान कराकर ऐसा श्रपना लिया है कि "वसुधेव कुटुन्वकम्' होकर श्राप बैठ गये। श्रापने श्रनेक विषयों पर हृदयगम कान्य लिखे हैं। श्रापका वैशिष्ट्य यह है कि पहले हिंदी के लिए जो छंद श्रपरिचित थे श्रथीत – शाहू ल विक्रीहित, स्नम्धरा, मालिनी, शिखरिणी श्रादि, इनमें भाषा कान्य लिखकर श्रापने छंदःशास्त्र की महिमा बढ़ाई है। श्रापकी कृति श्रस्यन्त सरल, सुगम व उद्योधक है। जरावस्था को उद्देश कर इस नरदेह का जो लिखत वर्णन करके भगवदनुग्रह की श्राकांचा प्रदर्शित की है, वह श्रापका कान्य हिन्दी-ग्रागन-मण्डल में प्रतिभासंपन्न है।"

- हंस, श्रमिनंदर्गक (श्रप्रैल १६३३, पृष्ट १३)

इन तीनों अवतरणों से एक वात वड़े महत्त्व की ज्ञात होती है। वह यह कि तीनों ही लेखकों ने द्विवेदी जी को इसी कारण इतना महत्त्व दिया है कि उन्होंने संस्कृत के झंदों का हिंदी में प्रचार किया, जैसा उनके पहले प्रायः किसी ने नहीं किया था। इन लेखकों ने न तो उनके भावों की प्रशंसा की है और न भाषा की। वास्तव में १८०० तक की उनकी रचनायें भाषा और भाव की दृष्टि से विशेष अनुकरणीय थीं भी नहीं। उनका उद्देश्य और लच्य भी निश्चित नहीं था। इसी से इस विषय के संबंध में स्वयं वैजनाथ जी ने अपने उपर्युक्त पत्र में लिखा है—

But to make your influence felt deeply it is necessary that you should lay the G...dalation

िं द्विवेदी जी की ७० वीं वर्षगाँठ के अवसर पर आज से लगभग ६ वर्ष पहले यह लिखा गया था । लेख का कुछ श्रंश यों हैं—

"श्रीमान द्विवेदी जी ने श्राजनम सरस्वती की उपासना करके, प्रेमियों के सारस्वतपान कराकर ऐसा श्रपना लिया है कि "वसुधेव कुटुम्बकम्' होकर श्राप बैठ गये। श्रापने श्रनेक विषयों पर हृदयाम काव्य लिखे हैं। श्रापका वैशिष्ट्य यह है कि पहले हिंदी के लिए जो छंद श्रपिश्चित थे स्थात – शार्टू विक्रीहित, स्नम्धरा, मालिनी, शिखरिणी श्रादि, हनमें भाषा काव्य लिखकर श्रापने छंदःशास्त्र की महिमा बढ़ाई है। श्रापनी कृति श्रस्थन्त सरल, सुगम व उद्योधक है। जरावस्था को उद्देश्य कर इस नरदेह का जो लिखत वर्णन करके भगवदनुग्रह की श्राकांचा प्रदर्शित की है, वह श्रापका काव्य हिन्दी-गगन-मण्डल में प्रतिभासंपन्न है।"

हंस, श्रमिनंदर्नाक (श्रप्रैल १६३३, पृष्ट १३)

इन तीनों अवतरणों से एक वात वड़े महत्त्व की ज्ञात होती है। वह यह कि तीनों ही लेखकों ने द्विवेदी जी को इसी कारण इतना महत्त्व दिया है कि उन्होंने संस्कृत के छंदों का हिंदी में प्रचार किया, जैसा उनके पहले प्रायः किसी ने नहीं किया था। इन लेखकों ने न तो उनके भावों की प्रशंसा की है और न भाषा की। वास्तव में १८०० ते की उनकी रचनायें भाषा और भाव की दृष्टि से विशेष अनुकरणीय थीं भी नहीं। उनका उद्देश्य और लच्य भी निश्चित नहीं था। इसी से इस विषय के संबंध में स्वयं वैजनाथ जी ने अपने उपर्युक्त पत्र में लिखा है—

But to make your influence felt deeply it is necessary that you should lay the G...dalation

में सफल हो सकेगा, इसमें सन्देह है। द्विवेदी जी में कल्पना की विशेष उड़ान तो नहीं थी, पर सुधार करने की सात्त्विक भावना उनमें इतनी प्रवल थी कि अवसर पाने पर वे अपने को रोक ही न पाते थे; उनका स्वभाव ही ऐसा था। वे चाहते थे कि जितने भी व्यक्तियों का उनसे संबंध है उनमें किसी प्रकार का भी ऋवगुरा न रह जाय। 'सरस्वनी' के संपादक, हिंदी-भाषा-भाषी और अंत में भारतीय होने के नाते उनका संबंध भारत के निवासियों तक ही सीमित नहीं था और वे सभी के। ऋपना संदेश सुनाना चाहते थे ! यहाँ तक कि उनके प्रायः प्रत्येक परिच्छेद में किसी न किसी प्रकार का उद्देश्य अवश्य निहित है और कविता के लिए तो प्रायः वे विषय ही ऐसा चुनते थे जिसमें उन्हें खूव उपदेश देने का अवसर प्राप्त हो सके। यही कारण है कि उनकी कवितायें काव्य-कला की कसौटी पर कसे जाने पर खरी न उतरीं। उनमें श्रंतरंग की शोभा की श्रपेना भाव-विन्याम का चमत्कार ही ऋधिक है। 'वे उपदेशप्रधान हैं, वस्तु की व्यंजना करती हैं। श्रांतर के तारों का भनकारती नहीं, वाहर ही ठक-ठक करके चुप हो जाती हैं।' उनमें हृदय-स्पर्श करने की विशेष चमता नहीं। यों हम कह सकते हैं कि द्विवेदी जी को मुक्तक पद्यों की अपेता छोटे-छोटे कथानकों में अधिक सफलता मिली है। इसके दो कारण हो सकते हैं। पहला, द्विवेदी जी की उपदेशात्मक कथानकप्रियता। उनकी कविता में भारतेंदु हरिश्चंद्र की-सी कल्पना की कमनीय शक्ति के दर्शन नहीं होते। वारतव में घटना का सूत्र ऐसे कवियों के लिए अत्यंत आवश्यक है जो अन्य कार्यों में संलग्न रहकर कविता के लिए भी समय निकालना चाहता है। कथानक की रोचकता ही उसकी कविता का आकर्षण रहता है। फिर मुक्तक की प्रणाली

में सफल हो सकेगा, इसमें सन्देह है। द्विवेदी जी में कल्पना की विशेष उड़ान तो नहीं थी, पर सुधार करने की सात्त्विक भावना उनमें इतनी प्रवल थी कि अवसर पाने पर वे अपने को रोक ही न पाते थे; उनका स्वभाव ही ऐसा था। वे चाहते थे कि जितने भी व्यक्तियों का उनसे संबंध है उनमें किसी प्रकार का भी अवगुण न रह जाय। 'सरस्वनी' के संपादक, हिंदी-भाषा-भाषी और द्यंत में भारतीय होने के नाते उनका संबंध भारत के निवासियों तक ही सीमित नहीं था और वे सभी के। ऋपना संदेश सुनाना चाहते थे ! यहाँ तक कि उनके प्रायः प्रत्येक परिच्छेद में किसी न किसी प्रकार का उद्देश्य अवश्य निहित है और कविता के लिए तो प्रायः वे विषय ही ऐसा चुनते थे जिसमें उन्हें ख़ूव उपदेश देने का अवसर प्राप्त हो सके। यही कारण है कि उनकी कवितायें काव्य-कला की कसौटी पर कसे जाने पर खरी न उतरीं। उनमें श्रंतरंग की शोभा की अपेना भाव-विन्याम का चमत्कार ही अधिक है। 'वे उपदेशप्रधान हैं, वस्तु की व्यंजना करती हैं। श्रंतर के तारों के। भनकारती नहीं, वाहर ही ठक-ठक करके चुप हो जाती हैं।' उनमें हृदय-स्पर्श करने की विशेष चमता नहीं। यों हम कह सकते हैं कि द्विवेदी जी को मुक्तक पद्यों की अपेचा छोटे-छोटे कथानकों में अधिक सफलता मिली है। इसके दो कारण हो सकते हैं। पहला, द्विवेदी जी की उपदेशात्मक कथानकप्रियता। उनकी कविता में भारतेंदु हरिश्चंद्र की-सी कल्पना की कमनीय शक्ति के दर्शन नहीं होते। वास्तव में घटना का सूत्र ऐसे कवियों के लिए अत्यंत आवश्यक है जो अन्य कार्यों में संलग्न रहकर कविता के लिए भी समय निकालना चाहता है। कथानक की रोचकता ही उसकी कविता का त्राकर्पण रहता है। फिर मुक्तक की प्रणाली उसमें काव्यकला का वास्तविक जीवन-स्पंटन क ही कहीं हैं"। ग्रस्तु।

इस विषय में हिवेदी जी का वारतिवक नहत्त्व यह है कि उनके "शुद्ध सात्त्विक छाचार ने कविता के क्षेत्र को प्रभावित किया। इस च्रेत्र में उनकी सबसे बड़ी देन खड़ी बोली, भाषा की सकाई छौर लंस्कुनवृत्तों का प्रवेश है छौर सबके पीछे हैं वह सात्त्विक प्रेरणा, जो उनके जीवन के मूल से उच्छ्वसित होकर उनकी साहित्य-सेवा के कोने-कोने में फेल गई।" दूसरे शब्दों में उनके व्यक्तित्व ने छापने समय के प्रायः सभी कवियों पर कुछ न कुछ प्रभाव अवश्य डाला। 'सर्खनी' में जितनी कवितायें प्रकाशित होती थीं, उन पर दिवेदी जी की छाप रपष्ट है। 'क्षिता-कलाप' की मूमिका में उन्होंने लिखा है—

"चित्र-कला श्रीर कविता का घनिष्ठ संबंध है। दोनों में एक प्रकार का श्रनेखा साहरय है। दोनों का नाम भिन्न-भिन्न प्रकार के हरयों श्रीर मनोविकारों की चित्रित करना है। जिस बात की चित्रकार चित्र द्वारा व्यक्त करता है, उसी बात की किब किवता द्वारा व्यक्त कर सकता है। किवता भी एक प्रकार का चित्र है। किवता के श्रवण से श्रानंद होता है; चित्र के दर्शन से। विव श्रीर चित्रकार में किसका श्रासन उद्य है इसका निर्णय करना कितन है; क्योंकि किसी चित्र के भाव की किवता द्वारा व्यक्त करने से जिस प्रकार श्रलोंकिक श्रानंद की वृद्धि होती है, उसी प्रकार के किवता-गत किसी भाव के चित्र द्वारा स्पष्ट करने से भी असकी वृद्धि होतो है। चित्र देखने से नेत्र वृद्ध होते हैं, किवता पढ़ने या सुनने से कान।"

पर विषय-संबंधी यह आदर्श और अंतः करण की स्पर्श करनेवाली चमता द्विवेदी जी और उनके शिष्य-वर्ग की उसमें काव्यकला का वास्तविक जीवन-स्पंत्रन क हैं। कहीं हैं"। त्रस्तु ।

इस विषय में द्विवेदी जी का वारतियक नहत्त्व यह है कि उनके "शुद्ध सात्त्विक ग्राचार ने कविता के चेत्र को प्रभावित किया। इस चेत्र में उनकी सबसे वड़ी देन खड़ी बोली, भाषा की सफाई श्रीर लंक्कुनवृत्तों का प्रवेश हैं श्रीर सबके पीछे हैं वह मात्त्विक प्रेरणा, जो उनके जीवन के मूल से उच्छ्वसित होकर उनकी साहित्य-सेवा के कोने-कोन में फेल गई।" दूसर शब्दों में उनके व्यक्तित्व ने श्रपने समय के प्रायः सभी कवियों पर कुछ न कुछ प्रभाव श्रवश्य डाला। 'सरस्वर्ता' में जितनी कवितायें प्रकाशित होती थीं, उन पर द्विवेदी जी की छाप रपष्ट है। 'कविता-कलाप' की भूमिका में उन्होंने लिखा है—

"चित्र-कला श्रीर कविता का घनिष्ठ संबंध है। दोनों में एक प्रकार का श्रनेखा साहश्य है। दोनों का नाम भिन्न-भिन्न प्रकार के दृश्यों श्रीर मनोविकारों की चित्रित करना है। जिस बात के चित्रकार चित्र द्वारा व्यक्त करता है, उसी बात की किंव किंवता द्वारा व्यक्त कर सकता है। किंवता भी एक प्रकार का चित्र है। किंवता के श्रवण से श्रानंद होता है; चित्र के दर्शन से। विच श्रीर चित्रकार में किसका श्रासन उच है इसका निर्णय करना कठिन है; क्योंकि किसी चित्र के भाव की कंविता द्वारा व्यक्त करने से जिस प्रकार श्रलोंकिक श्रानंद की वृद्धि होती है, उसी प्रकार के कविता-गत किसी भाव के चित्र द्वारा स्पष्ट करने से भी उसकी वृद्धि होती है। चित्र देखने से नेत्र नृप्त होते हैं, कविता पढ़ने या सुनने से कान।"

पर विषय-संवंधी यह आदर्श और श्रंतःकरण के। स्पर्श करनेवाली चमता द्विवेदी जी और उनके शिष्य-वर्ग की साहित्य के विस्तृत प्रांगण में स्थापित कर श्राचार्य महावीर-प्रसाद जी द्विवेदी ने मंत्र-पाठ-द्वारा देश के नवयुववसमुदाय को एक अत्यंत शुभ मुहूर्त में आमंत्रित किया और उस घट में कविता की प्राण-प्रतिष्ठा की।" श्रांज जिन सत्कवियों के द्वारा हिंदी-साहित्य के काव्य के श्रंग की पूर्ति हो रही हैं और जिन पर हमें अभिमान है वे किसी समय द्विवेदी जी के शिष्य रह चुके हैं। दूसरे शब्दों में पंडित श्रीधर पाठक की लगाई हुई जिस होटी पौद को सींचने और अनुप्राणित करने में उन्होंने लगन और साधना से योग दिया था वही उनके जीवन के उत्तराई-काल में पक्षवित हो गई। साहित्य के विस्तृत प्रांगण में स्थापित कर आचार्य महावीर-प्रसाट जी द्विवेदी ने मंत्र-पाठ-द्वारा देश के नवयुवक समुदाय को एक अत्यंत शुभ मुहूर्त में आमंत्रित किया और उस घट में कविता की प्राण्-प्रतिष्ठा की।" आंज जिन सत्कवियों के द्वारा हिंदी-साहित्य के काव्य के अंग की पूर्ति हो रही है और जिन पर हमें अभिमान है वे किसी समय द्विवेदी जी के शिष्य रह चुके हैं। दूसरे शब्दों में पंडित श्रीधर पाठक की लगाई हुई जिस छोटी पीट को सींचने और अनुप्राणित करने में उन्होंने लगन और साधना से योग दिया था वही उनके जीवन के उत्तराई-काल में पह्नवित हो गई। श्रीर ध्यान नहीं देते श्रीर न उसके भावों के। समक्षने की ही चेष्टा करते हैं। भाषा की क्षिष्टता श्रीर दुरुहता से, वास्तव में, लेखक की विद्वत्ता भी प्रकट नहीं होती। वास्तविक विद्वत्ता तो जन-साधारण के। श्रपने विचारों से परिचित करा सकने में, श्रपना संदेश सभी तक पहुँच! सकने में, है। क्या कालिदास श्रीर तुलसीदास ऐसी रचना नहीं कर सकते थे जिसको वड़े-बड़े विद्वान् भी न समक पाते ? पर उन्होंने वैसा नहीं किया, श्रपनी सरल श्रीर सरस रचना के लिए ही वे श्राज विश्व में प्रसिद्ध हैं।

द्विवेदी जी भी इसी सिद्धांत के पत्तपाती थे। उनके प्राद्धभीव के समय खड़ी वोली के तीन रूप मिलते थे। पहला भाषा का संस्कृतमय रूप जिसके जन्मदाता राजा लच्मण्सिंह सममे जाते थे। दूसरा हिंदी का वह रूप जिसमें अरवी-फारसी के शब्दों का बाहुल्य था ऋौर राजा शिवप्रसाद जिसके पद्मपानी थे। हिंदी के इस रूप का प्रचार मुसलमानों में तो था ही, हिंदुओं को भी इसे प्रहण करना पड़ा था। तीसरे मन के प्रद-र्शक भारतेंदु वाबू हरिश्चंद्र थे। उनके हृद्य में देश-प्रेम का स्रोत प्रवाहित हो रहा था, वे भारत की स्वतंत्रता के लिए. स्वयं अनवरत परिश्रम करते थे और चाहते थे कि सभी भारतवासी इसे अपना कर्तव्य समभें। अपना यह संदेश दूसरों तक पहुँ-चाने के लिए उन्हें हिंदी के उस रूप का प्रचार करना पड़ा जिसे जन-साधारण सरलता से समभ सके। इसलिए उनकी भाषा में त्रावश्यकतानुसार भावों को स्पष्ट करने के लिए ही शब्दों का प्रयोग होता था। ये शब्द संस्कृत के भी होते थे त्रीर अरवी-फारसी के भी-कुछ अँगरेजी शब्दों का प्रयोग भी होने लगा था। सर्वसाधारए की वोलचाल की भाषा यही थीं।

श्रीर ध्यान नहीं देते श्रीर न उसके भावों की सम्भने की ही नेष्टा करते हैं। भाषा की क्रिष्टता श्रीर दुरूहता से, वास्तव में, लेखक की विद्वत्ता भी प्रकट नहीं होती। वास्तविक विद्वत्ता तो जन-साधारण की श्रपने विचारों से परिचित करा सकने में, श्रि। क्या कालिदास श्रीर तुलसीदास ऐसी रचना नहीं कर सकते थे जिसको वड़े-बड़े विद्वान भी न समभ पाते? पर उन्होंने वैसा नहीं किया, श्रपनी सरल श्रीर सरस रचना के लिए ही वे श्राज विश्व में प्रसिद्ध हैं।

द्विवेदी जी भी इसी सिद्धांत के पत्तपाती थे। उनके प्रादुर्भाव के समय खड़ी वोली के तीन रूप मिलते थे। पहला भाषा का संस्कृतमय रूप जिसके जन्मदाता राजा लद्मण्सिंह समभे जाते थे। दूसरा हिंदी का वह रूप जिसमें अरवी-फारसी के शब्दों का बाहुल्य था ऋौर राजा शिवप्रसाद जिसके पच्चपानी थे। हिंदी के इस रूप का प्रचार मुसलमानों में तो था ही, हिंदुओं को भी इसे प्रहण करना पड़ा था। तीसरे मप के प्रद-र्शक भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र थे। उनके हृद्य में देश-प्रेम का स्रोत प्रवाहित हो रहा था, वे भारत की स्वतंत्रता के लिए स्वयं च्यनवरत परिश्रम करते थे चौर चाहते थे कि सभी भारतवासी इसे अपना कर्तव्य समभें। अपना यह संदेश दूसरों तक पहुँ-चाने के लिए उन्हें हिंदी के उस रूप का प्रचार करना पड़ा जिसे ्जन-साधारण सरलता से समफ सके। इसलिए उनकी भाषा में त्रावश्यकतानुसार भावों का स्पष्ट करने के लिए ही शब्दों का प्रयोग होता था। ये शब्द संस्कृत के भी होते थे और अरवी-फारसी के भी—कुछ चँगरेजी शब्दों का प्रयोग भी होने ृ लगा था। सर्वसाधारण की वोलचाल की भाषा यही थीं।

में प्रचितत भाषा को अपनाकर अपना संदेश भारत के वर्चे-वचे तक पहुँचा देना चाहा। कुछ लोगों ने इसका विरोध किया; पर बहुतों ने इसे अपनाया भी। द्विवेदी जी भी ऐसे ही लोगों में थे। वे सरल से सरल भाषा लिखने के पद्म में थे—न संस्कृत शब्दों का विरोध या वहिष्कार करते थे, न अरवी-कारसी का ही। उनका मत था कि प्रचलित शब्दों के। अपना लेना ही हिंदी-भाषा-भाषियों के लिए उपयुक्त होगा, चाहे ये शब्द संस्कृत के हों, चाहे अरबी-फारसी या अँगरेजी के । इसी से उनकी भाषा में न तो संस्कृत के तत्कालीन पचपातियों का-सा सामासिक शब्द-जाल है और न उर्दू-लेखकों की भाषा की कलावाजियाँ या चुलवुलाहट। इनकी भाषा में सजीवता है और स्वाभाविकता भी, जिसकी पढ़ कर और समभकर पाठक मुद्ति हो जाता है। उनकी साया के इस गुण पर बहुत से लोग लट्टू थे, और हैं भी। अक्टूबर सन् १६३४ के 'विशाल-भारत' में उसके संपादक पंडित वनारसीदास चतुर्वेदी ने उनके एक पत्र की अपने नोट के साथ प्रकाशित किया था। यह पत्र उनके स्वभाव का द्योतक तो है ही, साथ ही, उनकी भापा का भी नमूना है। पत्र चतुर्वेदी जी को ही लिखा गया था जो इस प्रकार है-

दौलतपुर (रायवरेली)

१४-५-३४

''नमस्कार,

१९ मई का कार्ड मिला। यह जानकर बड़ी ख़ुशी हुई कि श्रापके वर्मा की मेरे पुराने सेहरवान बाबू कृष्णदास जी के भती के हैं।

में प्रचितत भाषा की अपनाकर अपना संदेश भारत के बच्चे-वचे तक पहुँचा देना चाहा। कुछ लोगों ने इसका विरोध किया; पर बहुतों ने इसे अपनाया भी। द्विवेदी जी भी ऐसे ही लोगों में थे। वे सरल से सरल भापा लिखने के पत्त में थे—न संस्कृत शब्दों का विरोध या वहिष्कार करते थे, न अरवी-फारसी का ही। उनका मत था कि प्रचलित शब्दों की श्रपना लेना ही हिंदी-भाषा-भाषियों के लिए उपयुक्त होगा, चाहे ये शब्द संस्कृत के हों, चाहे अरबी-फारसी या अँगरेजी के । इसी से उनकी भाषा में न तो संस्कृत के तत्कालीन पचपातियों का-सा सामासिक शब्द-जाल है और न उर्दू-लेखकों की भाषा की कलावाजियाँ या चुलवुलाहट। इनकी भाषा में सर्जावता है और स्वाभाविकता भी, जिसका पढ़ कर और समभकर पाठक मुद्ति हो जाता है। उनकी भाषा के इस गुरा पर बहुत से लोग लट्टू थे, और हैं भी। अक्टूबर सन् १६३४ के 'विशाल-भारत' में उसके संपादक पंडित वनारसीदास चतुर्वेदी ने उनके एक पत्र की अपने नोट के साथ प्रकाशित किया था। यह पत्र उनके स्वभाव का द्योतक तो है ही, साथ ही, उनकी भापा का भी नमूना है। पत्र चतुर्वेदी जी को ही लिखा गया था जो इस प्रकार है—

दौलतपुर (रायचरेली)

१४-५-३४

''नमस्कार,

११ मई का कार्ड मिला। यह जानकर बड़ी , प्रुशी हुई कि श्रापके वर्मा की मेरे पुराने सेहरवान बाबू कृष्णदास जी के भतीजे हैं। वे उसे अस्वीकार कर देते। 'श्रेष्ट', 'श्रेष्टतर' 'श्रेष्टतम' और 'सर्वश्रेष्ट' आदि के व्यवहार का उन्होंने विरोध किया। 'नोकदार नाक' के वदले 'नोकदारी नासा' उन्हें नहीं रूच सकती थी। संस्कृत से एक श्रेणी नीचे का अपभ्रंश, जो हिंदी में अपना लिया जाता है, द्विवेदी जी भी अपना लेते हैं, परंतु इसके आगे वे आप नहीं वढ़ते । यदि द्विवेदी जी पर उर्दू शब्दों को अहण करने का दोप लगाया जाता था तो भी वे शांत रह कर ही दोपारोपण करनेवालों को सममाया करते थे। यह वात लगभग २० वर्ष पहले उन्होंने वादू कालिदास जी कप्र, एम० ए०, एल० टी०, को एक पत्र में लिखी थी। पत्र यों हैं—

डाकखाना दौलतपुर (रायवरेली)

१४-३-१=

''महाशयः

पत्र मिला; धन्यवाद । मेरी वही राय है जो श्रापकी है। मैं तद्वनुसार वर्ताय भी करता हूँ। सरल लिखने की चेष्टा करता हूँ। उर्दू भिन्न भाषा नहीं, श्ररवी-फ़ारमी के जो शब्द पचिलत हैं उन्हें मैं हिंदी ही के शब्द समफता हूँ। मेरे लेख, इस वात के प्रमाण हैं। पहले लेश लिखा करते थे। कहते थे कि यह हिंदी के विगाइ रहा है। पर श्रव नहीं बोजते। श्रीर लोग भी 'सरस्वती' का श्रनुकरण करने लगे हैं।

भवदीय स॰ प्र॰ द्विवेदीं⁹

^{*} द्वि॰ प्र० यः—प्रस्तावना ।

वे उसे अस्वीकार कर देते। 'श्रेष्ट', 'श्रेष्टतर' 'श्रेष्टतम' और 'सर्वश्रेष्ट' आदि के व्यवहार का उन्होंने विरोध किया। 'नोकदार नाक' के वदले 'नोकयती नासा' उन्हें नहीं रूच सकती थी। संस्कृत से एक श्रेणी नीचे का अपभ्रंश, जो हिंदी में अपना लिया जाता है, द्विवेदी जी भी अपना लेते हैं, परंजु इसके आगे वे आप नहीं वद्रते । यदि द्विवेदी जी पर उर्दू शक्तों को अहण करने का दोप लगाया जाता था तो भी वे शांत रह कर ही दोपारोपण करनेवालों के सममाया करते थे। यह वात लगभग २० वर्ष पहले उन्होंने वाबू कालिदास जी कप्र, एस० ए०, एल० टी०, को एक पत्र में लिखी थी। पत्र यों हैं—

डाकखाना दौलतपुर (रायवरेली)

१४-३-१८

''महाशयः

पत्र मिला; धन्यवाद । मेरी वही राय है जो श्रापकी है। मैं तदनुसार वर्काय भी करता हूँ। सरल लिखने की चेष्टा करता हूँ। उद्भीमन्न भाषा नहीं, श्ररवी-फ़ारसी के जो शब्द पचितत हैं उन्हें में हिंदी ही के शब्द सममता हूँ। मेरे लेख, इस बात के प्रमाण हैं। पहले लोग लिखा करते थे। कहते थे कि यह हिंदी की विगाद रहा है। पर श्रय नहीं बोजते। श्रीर लोग भी 'मरस्वती' का श्रनुकरण करने लगे हैं।

भवदीय म० प्र० द्विवेदी्^श

:

^{*} द्वि » अ० य »— प्रस्तावना ।

अन्य किसी राष्ट्रीय भाषण से प्रभावित होकर उसे नहीं बहुण किया। इसका तात्पर्य यह नहीं कि वे राष्ट्रीयता या भारतीयता के विरुद्ध थे; उनका पुनीत उहेश्य यह था कि यदि भाषा को सरल बना दिया जायगा तो जनता—केवल साधारण हिंदी जाननेवाली भी—यह जान सकेगों कि आज संसार में क्या हो रहा है; उसका ज्ञान दढ़ेगा। उनका विश्वास था कि भाषा का मुख्य उद्देश्य यही है कि जन साधारण उसे समफ कर कुछ ज्ञानार्जन करे। 'सरस्वती' में (भाग १६, संख्या १ पृ० ५१) उन्होंने इस बात को स्पष्ट करते हुए लिखा है—

"हिंदी में यदि कुछ लिखना हो तो भाषा ऐसी लिखनी चाहिए लिसे केवल हिंदी जानगेवाले भी सहन ही में समम लायें। संस्कृत श्रौर श्रॅंगरेज़ी शब्दों से लदी हुई भाषा से पांडित्य चाहे भले ही अकट हो पर उससे ज्ञान श्रानंददान का उदेश श्रधिक नहीं सिद्ध हो सकता।"

सन् १६२८ के अक्टूबर की 'सरस्वती' में 'भारतीय भाषाओं का अन्वेषण' शीर्षक द्विवेदी जी का एक नोट प्रकाशित हुआ था। डाक्टर प्रियर्सन साह्च ने (Sir George Abraham Grierson, K. C. I. E., Ph. D., D. Litt., L. L. D., I, C. S.—Retired—) भारत का भाषाओं और वोलियों के विषय में अन्वेषण करके १३ भागों में अपनी रिपोर्ट प्रकाशित की थी, उसी के विषय में द्विवेदी जी का यह नोट था। प्रियर्सन साह्च ने भारतीय भाषाओं की संख्या १७६ और वोलियों की संख्या १४४ बताई। द्विवेदी जी ने इस विषय में कुछ नहीं कहा; पर उन्हें इसका दुःख अवश्य हुआ कि हिंदी या हिंदुस्तानी के प्रचार-प्रसार पर प्रियर्सन साह्य ने जानते हुए भी कुछ नहीं लिखा। अतः उन्होंने यह नोट दिया—

अन्य किसी राष्ट्रीय भाषण से प्रभावित होकर उसे नहीं प्रहण किया। इसका तात्पर्य यह नहीं कि वे राष्ट्रीयता या भारतीयता के विरुद्ध थे; उनका पुनीत उद्देश्य यह था कि यदि भाषा को सरल बना दिया जायगा तो जनता—केवल साधारण हिंदी जाननेवाली भी—यह जान सकेगो कि आज संसार में क्या हो रहा है; उसका ज्ञान दहेगा। उनका विश्वास था कि भाषा का मुख्य उद्देश्य यही है कि जन साधारण उसे समक्ष कर कुछ ज्ञानार्जन करे। 'सरस्वती' में (भाग १६, संख्या १ पृ० ४१) उन्होंने इस बात की स्पष्ट करते हुए लिखा है—

"हिंदी में यदि कुछ जिखना हो तो भाषा ऐसी जिखनी चाहिए जिसे केवल हिंदी जाननेवाले भी सहज ही में समक जायें। संस्कृत श्रीर श्रॅंगरेज़ी शब्दों से लदी हुई भाषा से पांडित्य चाहे भले ही अकट हो पर उससे ज्ञान श्रानंददान का उद्देश श्रधिक नहीं सिद्ध हो सकता।"

सन् १६२८ के अक्टूबर की 'सरस्वती' में 'भारतीय भाषाओं का अन्वेषणा' शीर्षक द्विवेदी जी का एक नोट प्रकाशित हुआ था। डाक्टर ग्रियर्सन साहब ने (Sir George Abraham Grierson, K. C. I. E., Ph. D., D. Litt., L. L. D., I, C. S.—Retired—) भारत की भाषाओं और वोलियों के विषय में अन्वेषण करके १३ भागों में अपनी रिपोर्ट प्रकाशित की थी, उसी के विषय में द्विवेदी जी का यह नोट था। ग्रियर्सन साहब ने भारतीय भाषाओं की संख्या १७६ और वोलियों की संख्या ४४४ बताई। द्विवेदी जी ने इस विषय में कुछ नहीं कहा; पर उन्हें इसका दुःख अवश्य हुआ कि हिंदी या हिंदुस्तानी के प्रचार-प्रसार पर ग्रियर्सन साहब ने जानते हुए भी कुछ नहीं लिखा। अतः उन्होंने यह नोट दिया—

"जिस तरह शहर के पोषण और उसस के लिए बाहर के साथ पदार्थी की श्रावश्यकता होती है, हैसे ही सजीव भाषाओं का बाद के लिए विदेशी अब्दों और आवों के संग्रह की श्रावश्यकता होती है। हो संग्रह की श्रावश्यकता होती है। जो भाषा ऐसा नहीं करती या जिसमें ऐसा होना बंद हो जाता है, वह उपवास-सी करती हुई, किसी दिन मुद्दी नहीं तो निर्जीव-सी जरूर हो जाती है। दूसरी भाषाओं के ग्रव्हों और भावों के ग्रव्हण कर लेने की शक्ति रहना ही सजीवता का कत्त्रण में भीर जीवित भाषाओं का यह स्वभाव, प्रयस्त करने पर भी, पिरव्यक्त नहीं हो सकता।"

यहाँ तक वे परोज्ञ रूप में भूसिका के ढंग पर अपने उद्देश्य से पाठकों को पिरिचित कराते रहे, पर फिर अपने को रोक न सके और मातृशापा हिंदी के प्रेम के आयेश में कह चले—

"हमारी हिंदी सजीव भाषा है। इसी से, संपर्क के प्रभाव में उसने अरबी-फ्रारसी और तुर्की भाषाओं तक के शब्द प्रहण कर लिये हैं और अब अँगरेज़ी भाषा के भी शब्द प्रहण करनी जा रही है। इसे दोष नहीं गुण ही समभाना चाहिए। क्योंकि अपनी इस प्राहिका-शक्ति के प्रभाव से हिंदी घपनी वृद्धि ही कर रही है, हांच नहीं। उयों-उयों उसका प्रचार बढ़ेगा त्यों-त्यों उसमें नये-नये शब्दों का आगमन होता जायगा। हमें केवल यह देखते रहना चाहिए कि इस संमिश्रण के कारण कहीं हमारी भाषा अपनी विशेषता को सो तो नहीं रही है—कहीं बीच-बीच में अन्य भाषाओं के बेमेल शब्दों के थेगा से वह अपना रूप विकृत को नहीं कर रही है।"

जैसा ऊपर लिखा जा चुका है, हिंदी की माहिका-शक्ति के विषय में जनता का ध्यान त्राकर्षित करने और सरल भाषा "निस तरह शहरेर के प्रेयण और उसस के लिए वादा के साध पदार्थों की आवश्यकता होती है, वैसे ही सजीव भाषाओं का बाद के लिए विदेशी शब्दों और भावों के संग्रह भी आवश्यकता होती. है। जो भाषा ऐसा नहीं करती या जिसमें ऐसा होना वंद हो जाता है, वह उपवास-सी करती हुई. किसी दिन सुद्री नहीं तो निर्जीव-सी जरूर हो जाती है। दूसरी भाषाओं के ग्रब्दों और भावों के ग्रहण कर लेने की शक्त रहना ही सजीवता का जनगा है और जीवित भाषाओं का यह स्वभाव, प्रयस्त करने पर भी, परित्वक्त नहीं हो सकता।"

यहाँ तक वे परोच्च रूप में—भूमिका के ढंग पर—अपने उद्देश्य से पाठकों को परिचित कराते रहे, पर फिर अपने को रोक न सके और माल्यापा हिंदी के प्रेम के आपेश में कह चले—

"हमारी हिंदी सजीव भाषा है। इसी से, संपर्क के प्रभाव के उसने अरबी-फारसी और तुर्की भाषाओं तक के शब्द प्रहण कर लिये हें और अब अँगरेज़ी भाषा के भी शब्द ग्रहण करती जा रही है। इसे दोष नहीं गुण ही समक्षना चाहिए। क्योंकि अपनी इस ग्राहिका-शक्ति के प्रभाव से हिंदी घपनी चृद्धि ही कर रही है, हांच नहीं। उपों-ज्यों उसका प्रचार बढ़ेगा त्यों-त्यों उसमें नये-नये शब्दों का आगमन होता जायगा। हमें केवल यह देखते रहना चाहिए कि इस संमिश्रण के कारण कहीं हमारी भाषा अपनी विशेषता को खो ते। नहीं रही है—कहीं बीच-बीच में अन्य भाषाओं के वैमेल शब्दों के योग से वह अपना रूप विकृत तो नहीं कर रही है।"

जैसा ऊपर लिखा जा चुका है, हिंदी की याहिका-शक्ति के विषय में जनता का ध्यान त्राकपित करने और सरल भाषा

प्रचार के लिए भी सभी सुदूर प्रांतों में लोग संलग्न हैं। हिंदी को राष्ट्रभाषा समभा जाने लगा है और प्रायः सभी इस वात को स्वीकार भी करने लगे हैं। इसका श्रेय द्विवेदी जी के अतिरिक्त किसे दिया जाय? हिंदी-भाषा के विशाल और विस्तृत साम्राज्य की नींव डालनेवाला इनके अतिरिक्त हम किसे कह सकते हैं?

अचार के लिए भी सभी सुदूर प्रांतों में लोग संलग्न हैं। हिंदी को राष्ट्रभाषा समभा जाने लगा है और प्रायः सभी इस वात को स्वीकार भी करने लगे हैं। इसका श्रेय द्विवेदी जी के अतिरिक्त किसे दिया जाय? हिंदी-भाषा के विशाल और विस्तृत साम्राज्य की नींच डालनेवाला इनके अतिरिक्त हम किसे कह सकते हैं?

हो सकती हैं; लेकिन ऐसा होता नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति का अपना एक प्रिय विषय होता है और उसी के अनुसार उसकी एक निजी शैली रहती है। द्विवेदी जी इस नियम के अपवाद माने जा सकते हैं। वे संपादक थे और उनका प्रादुर्भाव ऐसे समय में हुआ था जब इतिहास, पुरातत्त्व, विज्ञान, अध्यात्मविद्या, संपत्तिशास्त्र, शासन-पद्धति त्रादि विपय न तो साहित्य के श्रंतर्गत ही समभे जाते थे श्रोर न इन विषयों के लेख ही प्रकाशित होते थे। जब उन्होंने ऐसे ही कुछ नवीन विषयों पर लेख लिखे और लिखवाये, तव उनकी विभिन्न शेलियों का प्रचितत हो जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। ऐसा प्रभाव उन पर उस समय नहीं पड़ सकता था जब पाश्चात्य देशों की तरह यहाँ उन्हें केवल संपादकीय कार्य करना पड़ता। उन देशों में उक्त सभी विषय साहित्य के अन्तर्गत समभे जाते हैं श्रीर पत्र-पत्रिका श्रों में इन विषयों के लेख प्रकाशित होते रहते हैं। पर वहाँ प्रधान संपादक को ही सभी विषयों का मर्मज होने की त्रावश्यकता नहीं, उनकी सामान्य योग्यता ही अपेत्तित होती है त्रीर उसकी सहायता के लिए, मुख्य-मुख्य विपयों के ज्ञाता अनेक उप-संपादक रहते हैं।

पर उपर्युक्त सभी विषय द्विवेदी जी के प्रिय विषय नहीं थे। उनका उद्देश्य और लच्य हिंदी-भाषा का परिष्कार, उमका प्रचार और हिंदी-साहित्य की उन्नति करना रहा था। इसके लिए उनकी आलोचना के प्रचलित ढंग का आश्रय लेना पड़ा था। यों उन्होंने एक विशिष्ट लेखनराली—आलोचनात्मक— को जन्म दिया जो उनकी निजी रोली है। उनकी आलोचनात्मक रोली के हम ३ भेद कर सकते हैं—

⁽१) त्रादेशपूर्ण, (२) छोजपूर्णः (३) भावपूर्णः ।

हो सकती हैं; लेकिन ऐसा होता नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति का

अपना एक प्रिय विषय होता है और उसी के अनुसार उसकी एक निजी शैली रहती है। द्विवेदी जी इस नियम के अपवाद माने जा सकते हैं। वे संपादक थे श्रीर उनका प्रादुर्भाव ऐसे समय में हुआ था जव इतिहास, पुरातत्त्व, विज्ञान, अध्यात्मविद्या, संपत्तिशास्त्र, शासन-पद्धति त्र्यादि विपय न तो साहित्य के श्रंतर्गत ही सममें जाते थे श्रोर न इन विपयों के लेख ही प्रकाशित होते थे। जब उन्होंने ऐसे ही कुछ नवीन विषयों पर लेख लिखे और लिखवाये, तव उनकी विभिन्न शेलियों का प्रचलित हो जाना केाई आश्चर्य की वात नहीं है। ऐसा प्रभाव उन पर उस समय नहीं पड़ सकता था जव पाश्चात्य देशों की तरह यहाँ उन्हें केवल संपादकीय कार्य करना पड़ता। उन देशों में उक्त सभी विषय साहित्य के अन्तर्गत समके जाते है श्रीर पत्र-पत्रिकाश्रों में इन विषयों के लेख प्रकाशित होते रहते हैं। पर वहाँ प्रधान संपादक को ही सभी विषयों का मर्मन होने की त्रावश्यकता नहीं, उनकी सामान्य योग्यता ही त्र्रपेद्गित होती है और उसकी महायता के लिए, मुख्य-मुख्य विपयों के ज्ञाता श्रनेक उप-संपादक रहते हैं।

पर उपर्युक्त सभी विषय द्विवेदी जी के प्रिय विषय नहीं थे। उनका उद्देश्य और लच्य हिंदी-भाषा का परिष्कार, उनका भचार और हिंदी-साहित्य की उन्नति करना रहा था। इसके लिए उनकी आलोचना के प्रचलित ढंग का आश्रय लेना पड़ा था। यों उन्होंने एक विशिष्ट लेखनराली—आलोचनात्मक— को जन्म दिया जो उनकी निजी रीलो हैं। उनकी आलोचनात्मक रीली के हम ३ भेद कर सकते हैं—

(१) त्रादेशपूर्ण, (२) छोजपूर्ण. (३) भावपूर्ण।

"जी मनुष्य अपनी संतित के जोवन को ययाशक्ति सार्थक करने की येग्यता नहीं रखने अयदा जान बूक्त कर उप नरफ्रध्यान नहीं देते, उनकी पिता बनने का अधिकार नहीं; उनकी पुत्रीत्पादन करने का अधिकार नहीं; उनको विवाह करने का अधिकार नहीं।"

— 'शिचा' भूमिका पृ० २

इन अवतरणों के। यदि उचित ढंग से पेंदा जाय तो सुननेत्रालों पर अवश्य ही प्रभाव पड़ेगा। यही इस शैली की विशेषता है और यही इसका उद्देश्य।

(३) भावपृर्ण

तीयर। शैं भी भावपूर्ण है। भावावेश में मचे हृदयोद्गार इसी में प्रकट किये जाते है। इस प्रकार की शेली के जन्मदाता ठाकुर जगमोहनसिंह थे और भारतेन्द्र हरिश्चन्द्र की रचनाओं में भी इस शेली के दर्शन होते हैं। यहाँ द्विवेदी जी की इस प्रकार की शेली के दो छोटे-छोटे उदाहरण दिये जाते हैं। एक 'पृथिवी-प्रदित्तणा'-नामक पुस्तक की आलोचना से और दूसरा पंडित वालकुष्ण भट्ट के देहांत पर दिये हुए नोट से। दोनों सचे हृदयोद्गार के उदाहरण हैं—

'क्स-मरहू ह भारत, तुम कत्र तक श्रम्य हार में पड़े रहोगे ? प्रकाश में श्राते के निए तुम्ह रे हृदय में क्या कभी सिद्च्छा ही नहीं जायत होती ? पचहीन पत्तां की तरह क्यां तुम्हें श्रयने पीं बड़े से बाहर निकज़ने का भाहन नहीं हाता ? क्या तुम्हें श्रयने पुगने दिनां की कभा याद नहीं श्राती ?''

—सरस्वती (ग्रास्न १६१४)

'भट्ट जी, तुम्हारे शरीर-त्यांग का समाचारे सुनका वद्ये फा० १२ "जी मनुष्य यपनी संतति के जीवन की ययाशक्ति सार्थक करने की योग्यता नहीं रखने अयग जान बूम कर उम नरफ ध्यान नहीं देते, उनकी पिता वनने का अधिकार नहीं; उनकी पुत्रोत्पादन करने का अधिकार नहीं; उनकी दीवाह करने का अधिकार नहीं।"

— 'शिचा' भूमिका पृ० २

इन अवतरणों की यदि उचित ढंग से पैदा जाय तो सुनने प्रात्तों पर अवश्य ही प्रभाव पड़ेगा। यही इस शैली की विशेषता है और यही इसका उद्देश्य।

(३) भावपूर्ण

तीयरा शैं नी भावपूर्ण है। भावावेश में मचे हदयोद्गार इसी में प्रकट किये जाते हैं। इस प्रकार की शैं जो के जन्मदाता ठाकुर जगमोहनसिंह थे और भारतेन्द्र हरिश्चन्द्र की रचनाओं में भी इस शें जी के दर्शन होते हैं। यहाँ द्विवेदी जी की इस प्रकार की शें जी के दो छोटे-छोटे उदाहरण दिये जाते हैं। एक 'पृथिवी-प्रदित्तणा'-नामक पुस्तक की आलोचना से और दूसरा पंडित वालकृष्ण भट्ट के देहांत पर दिये हुए नोट से। दोनों सचे हदयोद्गार के उदाहरण हैं—

'कृत-मराह् ह भारत, तुम कब तक श्रन्थ हार में पड़े रहोगे ? प्रकाश में श्राने के निए तुम्ह रे हृदय में क्या कभी सिद्च्छा ही नहीं जाग्रत होती ? पत्तहीन पत्ती की तरह क्यों तुम्हें श्रपने पींनड़े से बाहर निकज़ने का भाहन नहीं हाता ? क्या तुम्हें श्रपने पुगने दिनां की कभी याद नहीं श्राती ?''

—सरस्वती (अगस्न १६१४)

"भट्ट जी, तुम्हारे शरीर-त्याग का समाचार सुनकर वद्धे फा० १२ ह्ररण देखिए। पहला उदाह्ररण 'मानृभाषा के द्वारा शित्ता'-शीर्षक नोट से हें। यह नोट बंगाल, मदरास श्रीर बंबई के विश्वविद्यालयों में इतिहास, भूगोल श्रीर गणित श्रादि की शिला शिलार्थियों की मानृभाषा में ही दिये जाने पर लिखा था—

''यच्छी यात है। ग्रुभ लच्च हैं। जागृति के चिद्ध हैं। श्रंध-विश्वाम का पटल हट रहा है। विवेकसूर्य की किरणें फैलने कगी हैं। पारचास्य सम्पता के श्रमिमानी श्रीर श्रेंगरेनो-भाषा के ज्ञानी भी श्यम जागे हैं। श्रपनी भाषा के द्वारा शिद्धा देने के लाभ उनकी समक में श्राने लगे हैं।''

-सरस्वती (नवन्वर १६१६)

दूसरा उदाहरण एक पत्र का कुछ छंश है, जो द्विवेदी जी ने वाबू कालिदास जी कपूर को लिखा था। कपूर साहव उनके दर्शनार्थ कानपुर जाना चाहते थे। पत्र तिखकर अनुमि माँगी। उसी के उत्तर में द्विवेदी जो ने २० मई सन् १६१६ को लिखा—

''ब्राइए । कृषा की जिए । ३१ मई तक में यहीं रहूँगा । शहर से ३ मीत दूर जंगल में, मीज़ा जुड़ी कजाँ के सामने रहता हूँ।''

आलोचनात्मक शैती के जिन तीन प्रकारों को ऊपर नम-भाने की चेष्टा की गई है उनमें तत्कालीन साहित्यिक परिस्थिति आदि का चित्र है। बात यह है कि शैली के उक्त तीनों प्रकारों की आवश्यकता निरोन अमसरों पर ही पड़नी हैं। लगभग २० वर्ष द्विवेदी जी 'सरस्वती' के संपादक रहे और अंत तक परि-स्थिति में बहुन अधिक परिनर्जन नहीं हुआ। यही कारण है कि प्रायः प्रत्येक मात को 'सरखां' में उक्त तोनों शैजियां तूके न ने हरण देखिए। पहला उदाहरण 'मातृभाषा के द्वारा शिला'-शीर्षक नोट से हैं। यह नोट बंगाल, मदरास और बंबई के विश्वविद्यालयों में इतिहास, भूगोल और गणित आदि की शिला शिलार्थियों की मातृभाषा में ही दिये जाने पर लिखा था—

'खन्दी बात है। ग्राम लग्नण हैं। जागृति के निद्ध हैं। श्रंध-निरवास फा पटन हट रहा है। निवेक्सपूर्य की किरणें फैलने कगी हैं। पारचात्य सम्प्रता के श्राममानी श्रीर श्रेंगरेनो-भाषा के ज्ञानी भी स्वयं जागे हैं। श्रयनी भाषा के द्वारा शिद्धा देने के लाभ उनकी समफ में श्राने लगे हैं।"

-सरस्वती (नवन्वर १६१६)

दूसरा उदाहरण एक पत्र का कुछ छंश है, जो द्विवेदी जी ने वाबू कालिदास जी कपूर को लिखा था। कपूर साहब उनके दर्शनार्थ कानपुर जाना चाहते थे। पत्र जिखकर अनुमिन माँगी। उसी के उत्तर में द्विवेदी जो ने २० मई सन् १६१६ को लिखा—

''श्राह्ण । कृषा कीजिए । ३१ मई तक में यहीं रहूँगा । शहर से ३ मीस दूर जंगल में, मीझा जुहो कजा के सामने रहता हूँ ।''

आलोचनात्मक शैजी के जिन तीन प्रकारों को उत्तर सम-माने की चेष्टा की गई है उनमें तत्काज़ीन साहित्यिक परिस्थिति आदि का चित्र है। वात यह है कि शैली के उक्त तीनों प्रकारों की आवश्यकता निरोन अनसरों पर ही पड़नी है। लगभग २० वर्ष द्विवेदी जी 'सरस्वनी' के संपादक रहे और अंत तक परि-स्थिति में वहुन अधिक परिनर्जन नहीं हुआ। यही कारण है कि प्राय: प्रत्येक मात को 'सर खों' में उक्त तोनों शैजियां नूके न ने यदि सूच्म दृष्टि से देखा जाय तो उनको व्यंग्यात्मक शैली आलोचनात्मक शैली से पृथक् नहीं की जा सकती। इसका कारण स्पष्ट है। जिस उद्देश्य और आदर्श को लेकर उन्होंने साहित्य में पदार्पण किया था और जिसके लिए उन्होंने आवास्मक शैली की आवश्यकता पड़ी थी, उसी के लिए उन्होंने प्रायः व्यंग्य का भी प्रयोग किया है। इस शैली में ओज तो वर्तमान है ही; साथ ही व्यंग्य का जो पुट है वह भी वहुत ही चुटीला है। उदाहरण देखिए—

"िकतनी लज्जा, कितने दुख, कितने परिताप की वात है कि विदेशी लोग इतना कष्ट उठाकर धौर इतना धन खर्च करके संस्कृत सीखें और संस्कृत-साहित्य के जन्मदाता भारतवासियों के वंशज फ़ारसी श्रोर श्राँगरेज़ी की शिचा के सद में मतवाले हे। कर यह भी न जाने कि संस्कृत नाम किस चिड़िया का है ? संस्कृत जानना तो दूर की वात है, हम लीग अपनी मातृभाषा हिंदी भी तो बहुधा नहीं जानते हैं, ख़ौर जा लाग जानते भी हैं उन्हें हिंदी लिखते शरम ख़ाती है। इन मातृभाषा-द्रोहियों का ईश्वर कल्याण करे। सात समुद्र पार कर इँग्लेंडवाले यहाँ धाते हैं, और न जाने कितना परिश्रम श्रीर खर्च उठाकर यहाँ की भाषायें सीखते हैं। फिर अनेक उत्तमात्तम ग्रंथ लिखकर ज्ञान वृद्धि करते हैं। उन्हीं के ग्रंथ पढकर हम लेग श्रयनी भाषा श्रीर श्रपने साहित्य के तत्त्वज्ञानी बनते हैं। ख़ुद कुछ नहीं करते। सिर्फ व्यर्थ कालातिपात करते हैं। ग्रॅंगरेज़ी लिखने की योग्यता का प्रदर्शन करते हैं। घर में घेर श्रंधकार है, उसे तो दूर नहीं करते. विदेश में, नहाँ गैस श्रीर विजली की राशनी है। रही है, चिराग जलाने दौदते हैं।"

उक्त त्रवतरण में हमें उनकी चुटीली स्त्रोज-पूर्ण स्त्रालोचना के साथ मार्मिक व्यंग्य भी मिलता है। इस मार्मिकता स्त्रीर यदि सूद्तम दृष्टि से देखा जाय तो उनकी व्यंग्यात्मक शैली जालोचनात्मक शैली से पृथक् नहीं की जा सकती। इसका कारण स्पष्ट है। जिस उद्देश्य और आदर्श को लेकर उन्होंने साहित्य में पदार्पण किया था और जिसके लिए उन्हों आलोचनात्मक शैली की आवश्यकता पड़ी थी, उसी के लिए उन्होंने प्रायः व्यंग्य का भी प्रयोग किया है। इस शैली में ओज तो वर्तमान है ही; साथ ही व्यंग्य का जो पुट है वह भी वहुत ही चुटीला है। उदाहरण देखिए—

"िकतनी लज्जा, कितने दुख, कितने परिताप की वात है कि विदेशी लोग इतना कष्ट उठाकर धौर इतना धन खर्च करके संस्कृत सीखें श्रीर संस्कृत साहित्य के जन्मदाता भारतवासियों के वंशज फ़ारसी और अँगरेज़ी की शिचा के सद में मतवाले हे। कर यह भी न जाने कि संस्कृत नाम किस चिड़िया का है ? संस्कृत जानना ते। दूर की वात है, हम लीग अपनी मातृभाषा हिंदी भी ते। बहुधा नहीं जानते हैं, और जा जाग जानते भी हैं उन्हें हिंदी जिखते शरम आती है। इन सातृभाषा-द्रोहियों का ईश्वर कल्याण करे। सात समुद्र पार कर इँग्लेंडबाले यहाँ श्राते हैं, श्रौर न जाने कितना परिश्रम श्रौर -ब्रर्च उठाकर यहाँ की भाषायें सीखते हैं। फिर ग्रानेक उत्तमोत्तम यंथ लिखकर ज्ञान वृद्धि करते हैं। उन्हीं के यंथ पढ़कर हम लेाग **ग्र**पनी भाषा ग्रौर श्रपने साहित्य के तत्त्वज्ञानी बनते हैं। ख़ुद कुछ नहीं करते । सिर्फ़ व्यर्थ कालातिपात करते हैं । श्राँगरेज़ी लिखने की चाग्यता का प्रदर्शन करते हैं। घर में घार ग्रंधकार है, उसे ता दूर नहीं करते. विदेश में, जहाँ गैस श्रौर विजली की रोशनी है। रही है, चिराग जलाने दौदते हैं।"

उक्त अवतरण में हमें उनकी चुटीली खोज-पूर्ण खालोचना के साथ मार्मिक व्यंग्य भी मिलता है। इस मार्मिकता और my criticisms are "Vague, worthless and nonsense" (nonsensical?). And, pray, what do you think of Lala Sita Ram's Version of Kali Dasa? Perhaps, most faithful, most worthy and most sensible? Is it not?

इस कथन में पहले दो वाक्यों में ऋधिक गहराई तो अवश्य है, पर चुटीलापन और मार्मिकता विशेष मात्रा में नहीं। लेकिन इसके बाद ही वे लिखते हैं—

Well, you are welcome to entertain that. (कटा है) but this you should bear in mind, that the opinion of a person who does not even give his full name in his communication, who has never appeared in public print and whose career, as a literary man in Hindi has hither-to been unknown, can only be taken for it is worth, and no more.

चुटीले व्यंग्य का एक और नमूना देखिए। पंडित प्रभुदयाल मिश्र ने कालिदास के 'मेयदूत' का उर्दू में अनुवाद किया। उसमें वहुत से दोष थे। उन दोपों को दिखाने के बाद द्विवेदी जी ने लिखा—

'जा लेखक छः मात्राय्योंवाले चित्रकूट थ्रौर पाँच मात्राय्योंवाले दामागीरी को 'संस्कृत ज्ञवान में व्यव्जन सममना है वह यदि व्यास, वाल्मीकि थ्रौर कालिदास की कविता का मर्म सममने वैठे तो उसके साहस की प्रशंसा अवश्य की जा सकती है, उसकी योग्यता की नहीं।'

--सरस्वती १७-६ प्र० ४१६

my criticisms are "Vague, worthless and nonsense" (nonsensical?). And, pray, what do you think of Lala Sita Ram's Version of Kali Dasa? Perhaps, most faithful, most worthy and most sensible? Is it not?

इस कथन में पहले दो वाक्यों में ऋधिक गहराई तो ऋवश्य है, पर चुटीलापन ऋौर मार्मिकता विशेष मात्रा में नहीं। लेकिन इसके वाद ही वे लिखते हैं—

Well, you are welcome to entertain that. (कटा है) but this you should bear in mind, that the opinion of a person who does not even give his full name in his communication, who has never appeared in public print and whose career, as a literary man in Hindi has hither-to been unknown, can only be taken for it is worth, and no more.

चुटीले व्यंग्य का एक और नमूना देखिए। पंडित प्रभुदयाल मिश्र ने कालिदास के 'मेयदूत' का उर्दू में अनुवाद किया। उसमें बहुत से दोष थे। उन दोपों को दिखाने के बाद द्विवेदी जी ने लिखा—

'जा लेखक छः मात्राश्रोंवाले चित्रकृट श्रोर पाँच मात्राश्रोंवाले दामागीरी को 'संस्कृत ज़बान में व्यव्जन' समक्षना है वह यदि व्यास, वालमीकि श्रोर कालिदास की कविता का मर्म समक्षने बैठे तो उसके साहस की प्रशंसा श्रवश्य की जा सकती है, उसकी योग्यता की नहीं।'

—सरस्वती १७-६ पु० ४१६

इड्डी के मांस नज़र नहीं आता । सफ़ाई के इन्स्पेक्टर हैं लाला सतगुर-दास । आपकी इन्स्पेक्टरी के ज़माने में, हिसाय से कम तनख़वाह पाने के कारण, मेहतर लोग तीन दफ़ें हड़ताल कर चुके हैं। फ़ज़ूल ज़मीन के पक इकड़े का नीलाम था। सेठ सर्वमुख उसके तीन हज़ार देते थे। पर उन्हें वह इकड़ा न मिला। उसके ६ महीने वाद म्यूनि-सिपेलिटी के मेंवर पंडित सत्यसर्वस्व के ससुर के साले के हाथ वही ज़मीन हज़ार पर बच्च दी गई।"

उन्होंने एक बार लिखा था—''महसनों थौर हँसी-मज़ाक़ के लेखों से मनोरं जन ही नहीं होता; जेखक यदि विज्ञ थौर योग्य है तो वह ऐसे लेखों से समाज थौर साहित्य के दोपों को दूर करने की चेष्टा करता थौर इनके द्वारा उन्हें लाभ पहुँचा सकता है थौर दंडनीय व्यक्तियों का शासन भी कर सकता है। हिंदी में साहित्य के इस खंश की बहुत कमी है।

-सरस्वती १६-१-५० ६१

द्विवेदी जी के इस आदर्श को ध्यान में रखते हुए यदि हम ऊपर दिया हुआ अवनरण पढ़ें नो हमारा विशेष मनोरंजन होगा और हम यह समक सकेंगे कि किस अवसर पर वे इस प्रकार की शैली का प्रयोग करते थे।

एक वार शिवचरणदास नाम के किसी सज्जन ने १४ जान स्ट्रीट, श्रक्सफर्ड से १४ जनवरी १६०६ को 'सरस्वती' लौटाते हुए लिखा—

''वारह मयस्य' के भेजे हुए Article में जो छांत में १ वा १ शब्द हैं उनकी न तेा वहाँ पर ज़रूरत है और न वह शोभा देते हैं, पर यह साफ़ दिखाते हैं कि दास्यभाव अभी हम भारतवर्षीयों के मनों के भीतर पूरी तरह से वस रहा है।" हड्डी के मांस नज़र नहीं थाता । सफ़ाई के इन्स्पेक्टर हैं लाला सतगुर-दास । थापकी इन्स्पेक्टरी के ज़माने में, हिसाय से कम तनख़वाह पाने के कारण, मेहतर लोग तीन दफ़ें हड़ताल कर चुके हैं । फ़ज़ूल ज़मीन के एक इकड़े का नीलाम था । सेठ सर्वमुख उसके तीन हज़ार देते थे । पर उन्हें वह इकड़ा न मिला । उसके ६ महीने वाद म्यूनि-सिपेलिशी के मेंवर पंडित सत्यसर्वस्व के ससुर के साले के हाथ वही ज़मीन हज़ार पर वच्च दी गई।"

उन्होंने एक वार लिखा था—''महसनों श्रीर हँसी-मज़ाक़ के लेखों से मनोरं जन दी नहीं होता; लेखक यदि विज्ञ श्रीर योग्य है तो वह ऐसे लेखों से समाज श्रीर साहित्य के दोपों की दूर करने की चेटा करता श्रीर इनके द्वारा उन्हें लाभ पहुँचा सकता है श्रीर दंडनीय व्यक्तियों का शायन भी कर सकता है। हिंदी में साहित्य के इस श्रंश की बहुत कमी है।

- सरस्वती १६-१-५० ६१

द्विवेदी जी के इस आदर्श को ध्यान में रखते हुए यदि हम उत्पर दिया हुआ अवनरण पढ़ें नो हमारा विशेष मनोरंजन होगा और हम यह समभ सकेंगे कि किस अवसर पर वे इस प्रकार की शैली का प्रयोग करते थे।

एक वार शिवचरणदास नाम के किसी सज्जन ने १४ जान स्ट्रीट, श्रक्सफर्ड से १४ जनवरी १६०६ को 'सरस्वती' लौटाते हुए लिखा—

"वारह मयत्य' के भेजे हुए Article में जा श्रंत में 8 वा ४ शब्द हैं उनकी न तो वहाँ पर ज़रूरत है श्रीर न वह शोभा देते हैं, पर यह साफ़ दिखाते हैं कि दास्यभाव श्रभी हम भारतवर्षीयों के मनों के भीतर पूरी तरह से वस रहा है।" भापा तथा साहित्य की तत्कालीन परिस्थित से ही रहा है। साहित्य, भाषा श्रोर श्रालोचनादर्श-संबंधी जो बाद-विवाद हिंदी-साहित्य-त्तेत्र में छिड़ा हुआ था और एक-दूसरे पर जो आत्तेप किये जा रहे थे उनमें भाग लेकर आत्तेपों का उत्तर देते हुए-यह ठीक है कि वे प्रायः वाद-विवाद से दूर रहना चाहते थे—उन्होंने जिस शैली को अपनाया, 'सरस्वती' और उससे संबंधित व्यक्तियों पर लांछन लगाने-वाले व्यक्तियों को मुँह-तोड़ जवाब देने के लिए और अयोग्य तथा अनधिकारी व्यक्तियों के साहित्यसंसार में पदार्पण करने और घाँधली मचाने से रोकने के लिए-तत्परता के साथ उनका मुँह वंद करने के लिए उन्होंने जिस शैली का अवलंव प्रहर्ण किया, उसमें हास्य और व्यंग्य की चुलबुलाहट में मिलकर मार्मिकता, कटाच श्रौर चुटीलापन ही दिखाई देता है; जिसका कारण उनकी साहित्य-विषयक सद्भावना थी; जो उत्तरदायित्य के विचार से उत्तेजित होकर उनके उप स्वभाव के कारण स्वयं उप्र-रूप में दिखाई देती हैं । इस शैली का आरंभ प्रायः तर्क-वितर्क से होता है। पहले वे विवादमस्त विषयों की गुरिथयों के। सुलकाकर सामने रखने की चेष्टा करते थे। इसका उदाहरण हमें 'श्रीहर्ष का समय', 'वेद' इत्यादि शीर्षक निवंधों में मिलता है। द्विवेदी जी की यह तर्कशैली वड़ी प्रौढ़ है। इसमें स्वाभाविक स्त्रोज है, हास्य है स्त्रौर गंभीरता है। श्रोज के दो कारण हैं। पहला, विशेष अध्ययन श्रीर दूसरा, उनका स्वभाव। व्यंग्य का प्रयोग वे तभी करते थे जब उन्हें ज्ञात हो जाता था कि कोई छोटे मुँह वड़ी वात कह रहा है या ऋपनी योग्यता का अनुचित प्रयोग कर रहा है। ऋपना कथन प्रमाणित करने के लिए वे अन्य विद्वानों की सम्मतियाँ तथा उनकी पुस्तकों से टिप्पिएायाँ उद्घृत करते थे। इससे उनके

भापा तथा साहित्य की तत्कालीन परिस्थित से ही रहा है। साहित्य, भाषा त्र्योर त्र्यालोचनादर्श-संबंधी जो वाद-विवाद हिंदी-साहित्य-चेत्र में छिड़ा हुआ था और एक-दूसरे पर जो आचेप किये जा रहे थे उनमें भाग लेकर आचेपों का उत्तर देते हुए—यह ठीक है कि वे प्रायः वाद-विवाद से दूर रहना चाहते थे—उन्होंने जिस शैली को अपनाया, 'सरस्वती' श्रौर उससे संबंधित व्यक्तियों पर लांछन लगाने-वाले व्यक्तियों को मुँह-तोड़ जवाब देने के लिए त्रौर त्रयोग्य तथा त्र्यनिकारी व्यक्तियों को साहित्यसंसार में पदार्पण करने श्रीर धाँधली मचाने से रोकने के लिए-तत्परता के साथ उनका मुँह वंद करने के लिए उन्होंने जिस शेली का अवलंव प्रहण किया, उसमें हास्य और व्यंग्य की चुलवुलाहट में मिलकर मार्मिकता, कटाच च्यौर चुटीलापन ही दिखाई देता है; जिसका कारण उनकी साहित्य-विषयक सद्भावना थी; जा उत्तरदायित्व के विचार से उत्तेजित होकर उनके उप स्वभाव के कारण स्वयं उय-रूप में दिखाई देती है । इस शैली का आरंभ प्रायः तर्क-वितर्क से होता है। पहले वे विवादयस्त विषयों की गुत्थियों के। सुलक्षाकर सामने रखने की चेष्टा करते थे । इसका उदाहरण हमें 'श्रीहर्ष का समय', 'वेद' इत्यादि शीर्पक निवंधों में मिलता है। द्विवेदी जी की यह तर्कशैली वड़ी प्रौढ़ है। इसमें स्वामाविक स्रोज है, हास्य है स्रोर गंभीरता है। स्रोज के दो कारण हैं। पहला, विशेष ऋध्ययन स्रोर दूसरा, उनका स्वभाव । व्यंग्य का प्रयोग वे तभी करते थे जब उन्हें ज्ञात हो जाता था कि कोई छोटे मुँह बड़ी बात कह रहा है या ऋपनी योग्यता का ऋनुचित प्रयोग कर रहा है। ऋपना कथन प्रमाणित करने के लिए वे अन्य विद्वानों की सम्मतियाँ तथा उनकी पुस्तकों से टिप्पिएायाँ उद्धृत करते थे। इससे उनके

नाथारण के सामने इस ढंग से रत्यने के लिए किया है कि वे उसकी समभ में आ जाय । देखिए—

'संसार में जो यात जैसी देख पड़े पिय को उसे वैसा ही वर्णन करना चाहिए। उसके लिए किसी तरह की रोक या पायंदी मा होना सब्दा नहीं। द्याय से किया जोश दव जाता है। उसके मन में साय धाप ही धाप पैदा होने हैं। जब यह किदर होकर उन्हें धपनी किया। में प्रकट परता है तभी उसका प्रा-प्रा ध्यसर लोगों पर पटता है। चनावट से कियता विगद जाती है। किसी राजा वा किसी व्यक्ति विरोप के गुण दोषों को देशकर किय के मन में जो भाव उद्मृत हों उन्हें यदि वेशक टोक पकट कर दे तो उसकी पविता ह्यूच-द्रावक हुए बिना न रहे। परंतु परनंत्रता या प्रस्कार-मासि या धीर किसी तरह की रकावट के पैदा हो लाने से बाद उसे धपने मन की बान बहने का साहस नहीं होता तो कियता का रस ज़रूर कम हो जाता है। इस दशा में खब्दे कियों की भी पितता नीरस धतप्य प्रभावहीन हो जाती है।"

माधारण जनना की कविता की परिभाषा—किवता क्या —समकाने के लिए इम मरल रोली की द्विवेदी जी ने अपनाया है। भाषा सरल हैं, वाक्य छोटे हैं और प्रतिपादन-प्रणाली अत्यन्त मुलकी हुई है। उनकी भाषा कभी-कभी कुछ और शुद्ध हो जाती है। उसमें उर्दू के तत्सम तो क्या तद्भव शब्द भी एक ही आध मिलते हैं। यह उनकी इस गवेषणात्मक रोली का दूमरा क्य है। इसका एक उदाहरण साहित्य-िषयक द्विवेदी जो के विचार समकाने के लिए अपर दिया हुआ अवतरण हो सकता है। उसमें भाषा विशेष सरल नहीं है और गंभीर भायव्यंजन में कुछ दुरूहना भी है, जिसे द्विवेदी जी ने कुरालता से स्पष्ट करने की सफल चेष्टा की है। नाथारण के सामने इस ढंग से रत्यने के लिए किया है कि वे उमकी समभ में आ जावँ। देखिए—

'संसार में जो यान जैसी देख पहे पवि वा उसे वैसा ही वर्णन फरना चाहिए। उसके किए किसी तरह की रोक या पायंदी का होना एडका नहीं। इपाय में किन कि वा जोश दय जाना है। उसके मन में भाय धाप ही धाप पैदा होने हैं। जय यह निवर होकर उन्हें धपनी किया। में प्रस्ट परता है तभी उसका प्रा-प्रा धसर लोगों पर परता है। पनायट से कियता विगद जाती है। किसी राजा वा किसी व्यक्ति-चिरोप के गुण दोषों को देखकर किय के मन में जो भाय उद्मृत हों उन्हें यदि येशक दोक प्रकट कर दे तो उसकी पविता हृदय-हावक हुए बिना न रहे। परंतु परनंत्रता या प्रस्कार-प्राप्त या धीर किसी तरह की एकावट के पैदा हो जाने से बाद उसे धपने मन की धान पहने का साहस नहीं होता तो कियता का रम जरूर कम हो जाता है। इस दशा में ध्रुष्टे कियों की भी प्रिता नीरस ध्रुष्ट्य प्रभावहीन हो जाती है।''

माधारण जनना की कविता की परिभाषा—किवता क्या —सममाने के लिए इम मरल शेली की द्विवेदी जी ने अपनाया है। भाषा सरल है, वाक्य छोटे हैं और प्रतिपादन-प्रणाली अत्यन्त मुलर्मा हुई है। उनकी भाषा कभी-कभी कुछ और शुद्ध हो जाती है। उनमें उर्दू के तत्सम तो क्या तद्भव शब्द भी एक ही आध मिलते हैं। यह उनकी इम गवेपणात्मक शेली का दूमरा क्य है। इसका एक उदाहरण साहित्य-िपयक द्विवेदी जो के विचार सममाने के लिए अपर दिया हुआ अवतरण हो सकता है। उसमें भाषा विशेष सरल नहीं है और गंभीर भागवयंजन में कुछ दुरूहना भी है, जिसे दिवेदी जी ने कुशलता से स्पष्ट करने की सफल चेष्टा की है। विशेष रोचकता आ जाती है और भाव सफ्टतया वोधगम्य जाता है। दूसरे शब्दों में---

'श्रिधिक से श्रीधक ईप्सित प्रभाव उत्पन्नकरना ही यदि भाषा-शैली की मुख्य सफलता मान ली जाय तो शब्दों का शुद्ध, सामयिक, सार्थक और सुंदर प्रयोग विशेष महत्त्व रखने लगे। शब्दों की शुद्धि स्थावरण का विषय है; ज्याकरण की ज्यवस्था साहित्य की पहली सीदी है। सामयिक प्रयोग से हमारा श्राशय प्रसंगानुसार उस शब्द-चयन चातुरी से है जो काव्य के उद्यान को प्रकृति की सुपमा प्रदान करती है। उसमें कहीं श्रस्वाभाविकता बोध नहीं होती। सार्थक पद्विन्यास केवल निषंदु का विषय नहीं है; उसमें हमारी वह कल्पना-शक्ति भी काम करती है जो शब्दों की प्रतिमा बनाकर हमारे सामने उपस्थित कर देती है। पदों का संदर प्रयोग वह है जो संगीत (टब्चारण), व्याकरण, कोप श्रादि सबसे श्रनुमोदित हो श्रोर सबकी सहायता सं संघटित हो: जिसके ध्वनिमात्र से श्रतुरूप चित्रात्मकता प्रस्ट है। श्रीर जो वाक्यविन्यास का प्रकृतिवत् श्रभिन्न श्रंग बन कर वहाँ निवास करने लगे। श्रभी तो हिंदी के समीचा-चेत्र में उद्-मिश्रित श्रथवा संस्कृत-मिश्रित भाषा-भेद की ही शैली समक लेने को श्रांत घारणा फेली हुई है; परंतु यदि साहित्यिक शैलियों का कुछ रंभीर श्रध्ययन धारंभ होता ते। द्विवेदी जी की शैलो के व्यक्तित्व न्त्रीर उसके स्थापित्व के प्रमाण मिलेंगे। द्विनेदी जी की शैली का व्यक्तिस्व यही है कि वह हस्व, धनलंकुत धीर रूत्त है। उनकी भाषा में कोई संगान नहीं, वेवज उचारण का श्रोत है जो भाषण-कला से उध'र लिया है। विषय का स्पष्टीकरण करने के घाशय से दिवेदी जो जो पुनरुक्तियाँ करते हैं, वे नभी कभी ख़ाली चली जाती हैं — असर नहीं करतीं; परं 1 वे फिर म्रांती हैं श्रीर श्रसर करती हैं। लघुता रनकी विभूत है। वाक्य पर वाक्य आते और विचारों की पुष्टि

विशेष रोचकता त्रा जाती है त्रौर भाव सफ्टतया वोधगम्य जाता है। दूसरे शब्दों में---

'स्रिधिक से श्रधिक ईप्सित प्रभाव उत्पन्नकरना ही यदि भाषाः शैली की मुख्य सफलता मान ली लाय तो शब्दों का शुद्ध, सामयिक, सार्थक श्रोर सुंदर प्रयोग विशेष महत्त्व रखने लगे। शब्दों की शुद्धि स्थावरण का विषय है; ज्याकरण की व्यवस्था साहित्य की पहली सीदी है। सामयिक प्रयोग से हमारा श्राशय प्रसंगानुसार उस शब्द-चयन चातुरी से है जो काब्य के उद्यान को प्रकृति की सुपमा प्रदान करती है। उसमें कहीं श्रस्वाभाविकता बोध नहीं होती। सार्थक पद्विन्यास केवल िघंटु का विषय नहीं है; उसमें हमारी वह कल्पना-शक्ति भी काम करती है जो शब्दों की प्रतिमा चनाकर हमारे सामने उपस्थित कर देती है। पदों का संदर प्रयोग वह है जो संगीत (टक्चारण), व्याकरण, कोप श्रादि सबसे श्रनुमोदित हो श्रीर सबकी सहायता सं संघटित हो; जिसके ध्वनिमात्र से श्रनुरूप चित्रात्मकता प्रस्ट है। श्रीर जो वाक्यविन्यास का प्रकृतिवत् श्रभिन्न श्रंग बन कर वहाँ निवास करने लगे। श्रभी तो हिंदी के समीचा-चेत्र में उदू-मिश्रित श्रथवा संस्कृत-मिश्रित भाषा-भेद की ही शैली समक लेने को भ्रांत धारणा फेली हुई है; परंतु यदि साहित्यिक शैलियों का कुछ रंभीर थ्रध्ययन थ्रारंभ होता ते। द्विवेदी जी की शैलो के व्यक्तित्व श्रीर उसके स्थापित्व के प्रमाण मिलेंगे। द्विनेदी जी की शैली का व्यक्तिस्व यही है कि वह हस्व, धनलंक़त धीर रूच है। उनकी भापा में कोई संगान नहीं, चेवल उचारण का श्रोन है जो भाषण-कला से उध'र लिया है। विषय का स्पष्टीकरण करने के घाशय से द्विवेदी जो जो पुनरुक्तियाँ करते हैं, वे नभी कभी ख़ाली चली जाती हैं — असर नहीं करनीं; परं1 वे फिर छांनी हैं छौर छसर करती हैं। लघुता रमकी विभूत है। वाक्य पर वाक्य धाते खौर विचारों की पुष्टि

हिंदो की हिमायत

"अपनी मा की निःसहाय, निर्णाय और निर्धन दशा में छोड़कर जो मनुष्य दूसरे की मा की सेवा-छश्रूषा में रत होता है उन श्रधम की कृतमता का क्या प्रायश्चित होना चाहिए, इसका निर्णय कोई मनु, याज्ञवहरय या धापस्तंब ही कर सकते हैं।"

—''साहित्य, की महत्ता''

वंकिम वायू ने एक बार श्रीयुत रमेराचंद्र दत्त से कहा था— आप अँगरेजी में लिखते हैं, यह ख़ुशीकी वात है; लेकिन साथ ही इसका दुःख भी है कि वंगाली होते हुर आप वँगला-साहित्य के प्रति विलकुल उदासीन हैं। वँगला में पुस्तकें आप क्यों नहीं लिखते ?

दत्त ने उत्तर दिया—क्या कहूँ ? वँगता मैं लिख नहीं सकता।

वंकिम वावू इतना सुनते ही विगड़ उठे, वोले—आप वँगला में लिख नहीं सकते ? वंगाली होकर वँगला में नहीं लिख सकते, कितने अचरज की वात है !

दत्त ने पूछा-कैसे लिखूँ ? किस भाषा में लिखूँ ?

उसी भाषा में लिखिए जिसमें आप घर में वातचीत करते हैं।—बंकिम बाबू ने शीवता से कहा।

दत्त हँस पड़े। कड़ने लगे—ज़ेकिन वह भाषा तो साहित्यिक भाषा न होगी।

हिंदो की हिमायत

''त्रपनो मा के निःसहाय, निरुपाय श्रीर निर्धन दशा में छोड़कर जो मनुष्य दूसरे की मा की सेवा-छश्रूषा में रत होता है उन सधम की कृतझता का क्या प्रायश्चित होना चाहिए, इसका निर्णय कोई मनु, याज्ञवलस्य या श्रापस्तंय ही कर सकते हैं।''

—''साहित्य, की महत्ता''

वंकिम वायू ने एक वार श्रीयुत रमेराचंद्र दत्त से कहा था— श्रीय ऋँगरेजी में लिखते हैं, यह ख़ुशी की वात है; लेकिन साथ ही इसका दु: य भी है कि वंगाजी होते हुर आप वँगला-साहित्य के प्रति विलक्षल उदासीन हैं। वँगला में पुस्तकें आप क्यों नहीं लिखते ?

दत्त ने उत्तर दिया—क्या कहूँ ? वँगला मैं लिख नहीं सकता।

वंकिम वावू इतना सुनते ही विगड़ उठे, वोले—आप वँगला में लिख नहीं सकते ? वंगाली होकर वँगला में नहीं लिख सकते, कितने अचरज की वात् है !

दत्त ने पूछा - कैसे तिलूँ ? किस भाषा में तिलूँ ?

उसी भाषा में लिखिए जिसमें आप घर में वातचीत करते हैं।—बंकिम बाबू ने शीव्रता से कहा।

दत्त हुँस पड़े। कहने लगे—जेिकन वह भाषा तो साहित्यिक भाषा न होगी। कराया गया था। तब से धव तक उसी लिपि में हिंदी लिखने में मेरा अधिकांश समय व्यतीत हुआ। यह इस वात का प्रमाण है कि इस लिपि और इस भाषा से मेरा प्रम ही नहीं, इन दोनों पर मेरी परम श्रद्धा है। मेरी संमति तो यह है कि भाग्त की प्राचीन सभ्यता का जिन्हें स्वन्पांश में भी गर्व है उन सभी की इस लिपि और इस भाषा से श्रद्धा करनी चाहिए।"

द्विवेदी जी चाहते थे कि समस्त भारतवर्ष में हिंदी-भाषा का प्रचार हो, क्योंकि सभी प्रान्तों में उसके समम्भनेवाले मौजूद हैं। पर जनता में उस समय उत्तमा मान नहीं था। विद्वानों की विद्वत्ता का अनुमान ऋँगरेजीदानी, कारसीदानी और कभी-कभी संस्कृतदानी देखकर कर लिया जाता था। वे हिंदी कितनी जानते हैं, जानते भी हैं या नहीं, इसके पूछने की आवश्यकता ही नहीं समभी जाती थी। कचहरियों में उसका यहिष्कार कर दिया था। यहाँ तक कि जो लीग शुद्ध ऋँगरेजी या उर्दू नहीं वेशल सकते थे वे भी उसे नहीं अपनाते थे—घर के काम-काज और चिट्ठी-पत्री तक में उसे व्यवहार में लाते शर्माते थे। पढ़े-लिखे लोग तो हिंदी के शत्रु थे। उनके खान-पान, उनके रहन-सहन, वेप-भूपा सवमें ऋँगरेजी का समावेश हो गया था। वातचीत और पत्र-व्यवहार तो क्या, ग्रंथ-रचना भी वे ऋँगरेजी में ही किया करते थे।

द्विवेदी जी इसको भारतवासियों के—कम से कम हिंदी-भाषियों के—पतन की चरम सीमा समभते थे। एक स्थान पर उन्होंने आलोचनात्मक शैली में एक व्यंग्यपूर्ण नोट लिखा है। इसमें हिंदी की तत्कालीन दशा का चित्र खींचते हुए वे लिखते हैं—

''जून सन् १६०७ के 'हिंदुस्तान रिन्यू' में छोटा-सा लेख,

कराया गया था। तब से यव तक उसी लिपि में हिंदी लिखने में मेरा श्रिषकांश समय व्यतीत हुआ। यह इस वात का प्रमाण है कि इस लिपि श्रीर इस भाषा से मेरा प्रम ही नहीं, इन दोनों पर मेरी परम श्रद्धा है। मेरी संमति तो यह है कि भारत की प्राचीन सभ्यता का जिन्हें स्वन्पांश में भी गर्व है उन सभी के इस लिपि श्रीर इस भाषा से श्रद्धा करनी चाहिए।"

द्विवेदी जी चाहते थे कि समस्त भारतवर्ष में हिंदी-भाषा का प्रचार हो, क्योंकि सभी प्रान्तों में उसके सममनेवाले मौजूद हैं। पर जनता में उस समय उसका मान नहीं था। विद्वानों की विद्वत्ता का अनुमान अँगरेजीदानी, कारसीदानी श्रीर कभी-कभी संस्कृतदानी देखकर कर लिया जाता था। वे हिंदी कितनी जानते हैं, जानते भी हैं या नहीं, इसके पूछने की त्रावश्यकता ही नहीं समभी जाती थी। कचहरियों में उसका घुसने की आज्ञा न थी, विश्वविद्यात्तयों और कालेजों ने उसका वहिष्कार कर दिया था । यहाँ तक कि जो लोग शुद्ध ऋँगरेजी या उर्दू नहीं बाल सकते थे वे भी उसे नहीं ऋपनाते थे-- घर के काम-काज श्रीर चिही-पत्री तक में उसे व्यवहार में लाते शर्माते थे। पढ़े-लिखे लोग तो हिंदी के शत्रु थे। उनके खान-पान, उनके रहन-सहन, वेप-भूपा सवमें ऋँगरेजी का समावेश हो गया था। वातचीत श्रीर पत्र-व्यवहार तो क्या, ग्रंथ-रचना भी वे ऋँगरेजी में ही किया करते थे।

द्विवेदी जी इसको भारतवासियों के—कम से कम हिंदी-भाषियों के—पतन की चरम सीमा समभते थे। एक स्थान पर उन्होंने आलोचनात्मक शैली में एक व्यंग्यपूर्ण नोट लिखा है। इसमें हिंदी की तत्कालीन दशा का चित्र खींचते हुए वे लिखते हैं—

''जून सन् १६०७ के 'हिंदुस्तान रिन्यू' में छोटा-सा लेख,

साहित्य के। पर इससे क्या ? हिंदी हमारी मातृभाषा है, अतः हमें उस पर गर्व करना चाहिए और फिर जब विदेशी हमारे साहित्य का मंथन कर लाभ उठा रहे हैं तब भी हम वेसुध पड़े रहें तो हमसे वढ़कर मूढ़ कौन होगा। 'माधुरी' के एक विशेषांक (वर्ष ७, खंड १, संख्या १) में द्विवेदी जी ने लिखा है—

"वियर्सन साहव के मानुभाषा-प्रेम से हमारे भारतीय भाई मवक सीखने की ज़रूरत कम समफते हैं यह श्रक्तसेश्व की वात है। मुभ छद हिंदी-खेखक को भी मेरे ही देश—नहीं. ग्रांत के भी केई निवासी श्रवनी श्रॅगरेज़ीदानी की धाक मुभ पर जमाने के लिए श्रॅगरेज़ी ही में चिट्टियाँ लिखने की छूपा कर डालते हैं। जैसे उन्हें श्रवनी भाषा लिखते लजा श्राती हो। जे। लेग हिंदी ही में लेख लिख-लिखकर श्रवनी कीर्ति-लता को चारें श्रोर फैज़ाते हैं वे भी, कभी-कभी, किसी श्रज्ञात भावना से श्राविष्ट-से होकर ख़ानगी पत्रों में भी श्रॅगरेज़ी छाँटने लगते हैं।"

इन शवदों में द्विवेदी जी की आतमा वोल रही है। उनके हदय में मातृभाषा के प्रति वड़ा प्रेम था। यह ठीक है कि उन्होंने समय-समय पर स्त्रयं ऋँगरेजी में पत्र लिखे हैं। पर यह वात वहुत पहले की है। सन् १६०३ में जब उन्होंने संपादन-कार्य ग्रहण किया ही था तब एक चिट्ठी स्वर्गीय पंडित सत्यनारायण कविरत्न की लिखी थी। वह इस प्रकार है—

JHANSI,

30th October, 1903.

DEAR Pt. SATYA NARAYAN,

The frankness with which you have written your letter has immensely pleased me. If I have an occasion to come to Agra I shall ask you

साहित्य के। पर इससे क्या ? हिंदी हमारी मातृभाषा है, अतः हमें उस पर गर्व करना चाहिए और फिर जब विदेशी हमारे साहित्य का मंथन कर लाभ उठा रहे हैं तब भी हम वेसुध पड़े रहें तो हमसे बढ़कर मूढ़ कौन होगा। 'माधुरी' के एक विशेषांक (वर्ष ७, खंड १, संख्या १) में द्विवेदी जी ने लिखा है—

"शियर्सन साहय के मातृभाषा प्रेम से हमारे भारतीय भाई नवक सीखने की ज़रूरत कम समफते हैं यह अफ़सेास की बात है। सुफ चुद्र हिंदी जेखक को भी मेरे ही देश — नहीं, प्रांत के भी के हिं निवासी अपनी अँगरेज़ीदानी की धाक सुफ पर जमाने के लिए अँगरेज़ी ही में चिट्टियाँ लिखने की कृषा कर डालते हैं। जैसे उन्हें अपनी भाषा लिखते लजा आती हो। जे। लेग हिंदी ही में लेख लिख-जिखकर अपनी कीर्ति-लता को चारों ओर फैजाते हैं वे भी, कभी-कभी, किसी अज्ञात भावना से आविष्ट-से होकर ख़ानगी पत्रों में भी अँगरेज़ी छाँटने लगते हैं।"

इन शब्दों में द्विवेदी जी की आत्मा वोल रही है। उनके हदय में मातृभाषा के प्रति वड़ा प्रेम था। यह ठीक है कि उन्होंने समय-समय पर स्त्रयं ऋँगरेजी में पत्र लिखे हैं। पर यह वात वहुत पहले की है। सन् १६०३ में जब उन्होंने संपादनकार्य प्रहण किया ही था तब एक चिट्ठी स्वर्गीय पंडित सत्यनारायण कविरत्न का लिखी थी। वह इस प्रकार है—

JHANSI,

30th October, 1903.

DEAR Pt. SATYA NARAYAN,

The frankness with which you have written your letter has immensely pleased me. If I have an occasion to come to Agra I shall ask you

उदाहरण के लिए यहाँ एक सिकारिशी चिट्ठी उद्घृत की जाती है। एक महाशय 'सरश्वती' के अच्छे लेखकों में से थे—प्रायः उसमें लिखा करते थे। द्विवेदी जी उनको मानते थे। एक बार एक विश्वविद्यालय में हिंदी-अध्यापक की जगह खाली हुई। लेखक महोदय एक स्कूल के हेडमास्टर थे। उन्होंने द्विवेदी जी से एक सिकारिशी चिट्ठी लिखने की कहा। द्विवेदी जी इस समय संपादन-कार्य से अलग हो चुके थे। उन्होंने यह पत्र लिखा—

This is to certify that Babu
headmaster
has a very good knowledge of Hiudi language and literature, and has contributed to the "Sara- swati", the leading Hindi Magazine, published by the Indian Press, Allahabad, some very ins- tructive and interesting articles containing criti-
cal observations, especially those on the work of
Tulsi Dasa. I admire his acumen. I am told he is desirous of making the Hindi language and
Hindi literature his lifelong study. He appears
to me eminently fitted for the post of the lecturer
in the
University. Given opportunity Babu
is sare to do
useful research work.

Juhi-Kalan CAWNPORE: 24th April, 1922 MAHAVIRA PD. DWIVEDI, RETIRED EDITOR, Sarasucoti, उदाहरण के लिए यहाँ एक सिकारिशी चिट्ठी उद्घृत की जाती हैं। एक महाशय 'सरस्वती' के अच्छे लेखकों में से थे—प्रायः उसमें लिखा करते थे। द्विवेदी जी उनको मानते थे। एक बार एक विश्वविद्यालय में हिंदी-अध्यापक की जगह खाली हुई। लेखक महोदय एक स्कूल के हेडमास्टर थे। उन्होंने द्विवेदी जी से एक सिकारिशी चिट्ठी लिखने की कहा। द्विवेदी जी इस समय संपादन-कार्य से अजग हो चुके थे। उन्होंने यह पत्र लिखा—

This is to certify that Babu
headmaster
has a very good knowledge of Hindi language
and literature, and has contributed to the "Sara-
swati", the leading Hindi Magazine, published
by the Indian Press, Allahabad, some very ins-
tructive and interesting articles containing criti-
cal observations, especially those on the work of
Tulsi Dasa. I admire his acumen. I am told
he is desirous of making the Hindi language and
Hindi literature his lifelong study. He appears
to me eminently fitted for the post of the lecturer
in the
University. Given opportunity Babu
is sare to do
useful research work.

Juhi-kalan CAWNPORE: 24th April, 1922 MAHAVIRA PD. DWIVEDI, Retired Editor, Saraswati. वह कैसा प्रस्युपकार है! जिन लोगों की गाड़ी कमाई के पैसे से श्राप सुशिचित श्रोर सुपंडित वने बैठे हैं उनके। तथा उनकी सन्तित के तो पड़ने के लिए उनकी निजी भाषा में हूँड़ने से भी इस-पाँच तक अच्छी पुस्तकें न मिलें; श्रोर श्राप मेज़-कुर्सी लगाये, मूँहें ऐंडते प्लेटो, पिथागोरस श्रोर सेनेका, शंकर, जैमिन श्रोर श्रीहर्ष के दार्शनिक विचारों की समालोचना सात समुद्र पार की भाषा में लिखें। × × क्या केवल श्रॅंगरेज़ीदाँ हज़रत ही हस देश में रहते हैं! क्या ये स्कूल, कालेज श्रोर वज़ीफ़ उन्हों के घर के रूपये से चलते हैं श्रोर मिलते हैं?

हमारी यह शिकायत $\times \times \times$ शास्त्री से ही नहीं, उत्तरी भारत के अन्यान्य श्रॅगरेज़ीट्रॉ शास्त्रियों से भी है। श्राप लोग श्रपनी भाषा में भी उपयोगी लेख जिखने की दया कीजिए। जिखना नहीं श्राता तो सीखिए। श्रपना कर्त्तस्य पालन कीजिए।

ंसरस्वती, सितंबर १६१४)

ऐसे नेाट जनता पर प्रभाव डालते थे। लेकिन द्विवेदी जी की अभिलापा नहीं पूर्ण हुई। शायद ही एक-आध लेखक ने इन टिप्पिएयों पर ध्यान दिया हो; वाक़ी सब लकीर के फ़क़ीर ही बने रहे। द्विवेदी जी ने 'सरस्वती' (भाग १४, संख्या ४, पृष्ठ १६६) में 'देशी भाषाओं में शिक्ता'-शीर्षक लेख इस प्रकार लिखा है—

"भारत में विदेशी भाषा बड़ा ही ग़ज़ब हा रही है। वसी की कृषा से हम जोग अपनी भाषा भूल-से रहे हैं। धँगरेज़ीदाँ मातृभाषा के। घृषा की दृष्टि से देखते हैं। कितने ही महास्मा तो ऐसे हैं, जिन्हें अपनी आषा का एक शब्द तक लिखते लजा मातूम होती है। उनकी धँगरेज़ी चिट्टियों का उत्तर वार-वार मातृभाषा में देने पर

वह कैसा प्रत्युपकार है! जिन जोगों की गाड़ी कमाई के पैसे से श्राप सुशिचित छोर सुपंडित बने बैठे हैं उनकी तथा उनकी सन्तित के तो पड़ने के लिए उनकी निजी भाषा में हूँड़ने से भी दस-पाँच तक अच्छी पुस्तकें न मिलें; श्रीर श्राप मेज़-कुर्सी लगाये, मूँछें ऐंडते प्लेटो, पिथागोरस श्रीर सेनेका, शंकर, जैमिन श्रीर श्रीहर्ष के दार्शनिक विचारों की समालोचना सात समुद्र पार की भाषा में लिखें। × × क्या केवल श्रारंज़ीदाँ हज़रत ही इस देश में रहते हैं! क्या ये स्कूज, कालेज श्रीर वज़ीफ़ उन्हीं के घर के रूपये से चलते हैं श्रीर मिलते हैं?

हमारी यह शिकायत $\times \times \times$ शास्त्री से ही नहीं, उत्तरी भारत के श्रन्यान्य श्रॅंगरेज़ीटाँ शास्त्रियों से भी है। श्राप लोग श्रपनी भाषा में भी उपयोगी लेख लिखने की दया कीलिए। लिखना नहीं श्राता तो सीखिए। श्रपना कर्त्तस्य पालन कीलिए।''

ंसरस्वती, सितंबर १६१४)

ऐसे नेाट जनता पर प्रभाव डालते थे। लेकिन द्विवेदी जी की अभिलापा नहीं पूर्ण हुई। शायद ही एक-आध लेखक ने इन टिप्पिएयों पर ध्यान दिया हो; वाक़ी सव लकीर के कक़ीर ही बने रहे। द्विवेदी जी ने 'सरस्वती' (भाग १४, संख्या ४, पृष्ठ १६६) में 'देशी भाषाओं में शिक्ता'-शीर्षक लेख इस प्रकार लिखा हैं—

"भारत में विदेशी भाषा बड़ा ही ग़ज़ब डा रही है। उसी की कृषा से हम कोग धपनी भाषा भृत-से रहे हैं। धँगरेज़ीदाँ मातृभाषा को घृणा की दृष्टि से देखते हैं। कितने ही महास्मा तो ऐसे हैं, जिन्हें धपनी आषा का एक शब्द तक लिखते लजा मालूम होती है। उनकी धँगरेज़ी चिट्टियों का उत्तर वार-वार मातृभाषा में देने पर श्रद्धों से श्रद्धी पुस्तकों श्रीर पत्रों का नाम तक नहीं जानते। श्रक्तसोस !''

पर हिंदी-प्रचार के लिए द्विवेदी जी की सर्वत्र यही नीति नहीं रहती थी। वास्तव में वे साम, दाम, दण्ड और भेद का उचित उपयोग करना जानते थे और करते भी थे। यदि समक्षते कि अमुक व्यक्ति केवल समकाये से ही हिंदी के प्रति अपना कर्तव्य समक्ष लेगा, तो उसके साथ वैसा ही वर्ताव करते थे। इसका उदाहरण सेंट निहालिस हजी के विषय में लिखी हुई एक टिप्पणी से मिलता है। सेंट जी एक प्रतिष्ठित और विद्वान पुरुप थे, द्विवेदी जी ने उनके लेख पढ़े। सेंट जी में प्रतिभा थी और विद्वत्ता भी। फिर क्या था। द्विवेदी जी उन पर लट्टू हो गये और उनसे हिंदी में भी लिखने को कहा। द्विवेदी जी की नीति सफल हुई। सेंट निहालिस हजी ने कई लेख 'सरस्वनी' के लिए लिखे

२६ श्रक्तूबर, १६०४ के "श्रीवेङ्कटेश्वर-समाचार" में "हिंदी वोल नहीं सकती"—शीर्षक एक लेख प्रकाशित हुआ था। उसके लेखक ने लिखा था—

''सुनते हैं, हिन्दो छत्तरों को भेंस वरावर समम्मनेवाले महातमा लोग पहा करते हैं कि हिन्दी में पढ़ने की चीज़ ही क्या है. जो पढ़ी जाय किन्तु हे थँगरेज़ी को महत्त्व देनेवाले महापुरुषो ! हिन्दी में थँगरेज़ी का महत्त्व क्यों नहीं धाता ? न धाने के धपराधी क्या धापके सिंवा धौर कोई है ? थँगरेज़ी की जो चड़ाई धापकी खोपिड़यों में समा गई है उसकी भेंट हिन्दी के पड़नेवालों को देने की ज़िम्मेवारी क्या उन्हीं लोगों की है, जो बेचारे घर की दशा ठीक न होने के कारण थँगरेज़ी पढ़ने का मौका नहीं पा सके ? धँगरेज़ी विद्या के धुरन्धर श्रद्धों से श्रद्धी पुस्तकों श्रीर पत्रों का नाम तक नहीं जानते। श्रक्रसोस !''

पर हिंदी-प्रचार के लिए द्विवेदी जी की सर्वत्र यही नीति नहीं रहती थी। वास्तव में वे साम, दाम, दण्ड और भेद का उचित उपयोग करना जानते थे और करते भी थे। यदि समक्षते कि अमुक व्यक्ति केवल समभाये से ही हिंदी के प्रति अपना कर्तव्य समभ लेगा, तो उसके साथ वैसा ही वर्ताव करते थे। इसका उदाहरण सेंट निहालिसंहजी के विषय में लिखी हुई एक टिप्पणी से मिलता है। सेंट जी एक प्रतिष्ठित और विद्वान् पुरुप थे, द्विवेदी जी ने उनके लेख पढ़े। सेंट जी में प्रतिभा थी और विद्वत्ता भो। फिर क्या था। द्विवेदी जी उन पर लट्टू हो गये और उनसे हिंदी में भी लिखने को कहा। द्विवेदी जी की नीति सफल हुई। सेंट निहालिसंह जी ने कई लेख 'सरस्वनी' के लिए लिखे

२६ त्रकनूबर, १६०४ के "श्रीवेङ्कटेश्वर-समाचार" में "हिंदी बोल नहीं सकती"—शीर्षक एक लेख प्रकाशित हुआ था। उसके लेखक ने लिखा था—

''सुनते हैं, हिन्दी श्रचरों के। भेंस वरावर सममनेवाले महात्मा लोग पहा करते हैं कि हिन्दी में पढ़ने की चीज़ ही क्या हैं, जो पढ़ी जाय किन्तु हे श्रॅगरेज़ी को महत्त्व देनेवाले महापुरुषो ! हिन्दी में श्रॅगरेज़ी का महत्त्व क्यों नहीं श्राता ? न श्राने के श्रपराधी क्या श्रापके सिंवा श्रीर के।ई है ? श्रॅगरेज़ी की जे। चड़ाई श्रापकी खोपिहयों में समा गई है उसकी भेंट हिन्दी के पढ़नेवालों को देने की ज़िम्मेवारी क्या उन्हीं लोगों की है, जो बेचारे घर की दशा ठीक न होने के कारण श्रॅगरेज़ो पढ़ने का मौक़ा नहीं पा सके ? 'श्रॅगरेज़ी विवा के धुरन्धर

इस रहस्य को सममने के लिए हमें द्विवेदी जी के उद्देश्य त्र्यौर त्रादर्श को सममना पड़ेगा । वे चाहते थे कि भारतवासी भारतीयता और राष्ट्रीयता का अर्थ समम जायँ त्रौर देश की उन्नति की त्रोर^{्ध्}यान दें। इसका एकमात्र उपाय, उनकी समभ में, एक भाषा का प्रचार था। वे हिंदी को इस पद के योग्य सममते थे; क्योंकि यही एक भाषा ऐसी थी--है भी--जिसका प्रचार अन्य देशी भाषाओं से अधिक है। छतः यदि कोई दूसरी भाषा इस छोर फुकती थी ते वे इसे त्रापस की फूट समभते थे। उनका मत था कि हिंदी के अतिरिक्त कोई भाषा इस पद के योग्य हो ही नहीं सकती और यदि किसी प्रान्तवाले ऐसा करने का उद्योग भी करेंगे तो इससे हानि ही होगी। यही वात उन्होंने 'सरस्वती' में (भाग १५ संख्या १, पृ० ४१०) लिखी है। उस समय वंगालियों ने यह चेष्टा की थी कि वँगला राष्ट्रभाषा वना दी जाय। वँगला तो इस पर के सर्वथा अनुपयुक्त थी-यद्यपि उसका साहित्य हिंदी से उन्नत था--पर हिंदी के उपयुक्त होने पर भी उसकी उन्नति की श्रोर विशेष ध्यान नहीं दिया जा रहा था। द्विवेर्द जी त्रापस की इस कलह से वहुत दुखी हुए। उन्होंने बंगालिये का सममाने के लिए लिखा--

"मद्रास प्रान्त तक में जब हमारी भाषा के समक्ष्रनेवाले प्राय सर्वत्र पाये जाते हैं, तब वंगाल, वम्बई श्रीर पक्षाब के विषय में कुछ भी करने की श्रावश्यकता नहीं। सा, जिस भाषा के समक्ष्रनेवाले भारत के कोने-कोने में विद्यमान हैं श्रीर जिसकी सहायता से मनुष्य श्रवनोड़ा से कुमारिका श्रम्तरीप श्रीर पेशावर से रंगून नक की यात्र में श्रपने भाव श्रम्य प्रान्तवालों पर प्रकट कर सकता है श्रीर उनकी बात समक सकता है, उसी का—उसी हिन्दी का —उसी के वि इस रहस्य को समभने के लिए हमें द्विवेदी जी के उद्देश्य

त्रौर त्रादर्श की समभना पड़ेगा। वे चाहते थे कि भारतवासी भारतीयता और राष्ट्रीयता का अर्थ समभ जायँ त्रौर देश की उन्नति की त्रोर ध्यान दें। इसका एकमात्र उपाय, उनकी समभ में, एक भाषा का प्रचार था। वे हिंदी को इस पद के योग्य समभते थे; क्योंकि यही एक भाषा ऐसी थी--है भी--जिसका प्रचार अन्य देशी भाषाओं से अधिक है। अतः यदि कोई दूसरी भाषा इस ओर फ़ुकती थी तो वे इसे आपस की फूट सममते थे। उनका मत था कि हिंदी के त्रातिरिक्त कोई भाषा इस पद के योग्य हो ही नहीं सकती और यदि किसी प्रान्तवाले ऐसा करने का उद्योग भी करेंगे तो इससे हानि ही होगी। यही वात उन्होंने 'सरस्वती' में (भाग १५, संख्या १, पृ० ४१०) लिखी है। उस समय वंगालियों ने यह चेष्टा की थी कि बँगला राष्ट्रभाषा बना दी जाय। बँगला तो इस पद के सर्वथा अनुपयुक्त थी-यद्यपि उसका साहित्य हिंदी से उन्नत था--पर हिंदी के उपयुक्त होने पर भी उसकी उन्नति को छोर विशेष ध्यान नहीं दिया जा रहा था। द्विवेदी जी त्रापस की इस कलह से वहुत दुखी हुए। उन्होंने बंगालियों का सममाने के लिए लिखा--

सर्वत्र पाये जाते हैं, तब वंगाल, वस्बई श्रीर पक्षाव के विषय में कुछ भी करने की श्रावश्यकता नहीं । सी, जिस भाषा के सममनेवाले भारत के कोने-कोने में विद्यमान हैं श्रीर जिसकी सहायता से मनुष्य श्रहमोड़ा से कुमारिका श्रम्तरीप श्रीर पेशावर से रंगून -तक की यात्रा में श्रपने भाव श्रम्य श्रान्तवालों पर प्रकट कर सकता है श्रीर उनकी बात समम सकता है, उसी का—उसी हिन्दी का—उसी के घ' में

''मद्रास प्रान्त तक में जब हमारी भाषा के समक्तनेवाले प्रायः

गित रखते थे और उन्होंने वंग-किव माइकेल मधुस्ट्रन दत्त तथा किववर रवीन्द्रनाथ ठाकुर द्यादि के जीवन-चरित भी, संचिप में, लिखे हैं। द्यतः यह समफना कि द्विवेदी जी को वँगला से द्वेप था, ठीक नहीं है। वास्तव में वे यह चाहते थे कि जिस प्रकार वंगाली द्यपनी मातृभापा की उन्नति के लिए दत्तचित्त हैं, उसी प्रकार—चाहे उन्हीं की देखादेखी—हिंदी-भाषा-भाषियों को भी यह चेष्टा करनी चाहिए कि हिंदी-साहित्य की पूर्ण उन्नति हो जाय। वँगला-साहित्य पर उन्होंने समय-समय पर जो टिप्पिएयाँ दी हैं वे इसी उद्देश्य की द्योतक हैं कि वंगालियों का द्यपनी भाषा के प्रति जैसा कर्तव्य है, उसे सुफाकर हिंदीवालों को भी द्यपनी मातृ-भाषा के प्रति कर्तव्य का ज्ञान करा दें। 'वंग-किव-कुल-केकिल' वावू नवीनचंद्र सेन, वी० ए० का संचित्र परिचय उन्होंने द्यप्रेल, सन् १६०६ की 'सरस्वती' में प्रकाशित किया था। उसके द्यंत में द्विवेदी जी ने लिखा है—

'ईश्वर से प्रार्थना है कि ऐसा एक श्राध महाकवि न सही तो श्रन्छा कवि ही इन प्रांतों में भी पैदा करे, जहाँ की मुख्य भाषा हमारी हीना श्रीर चीय-क्लोवरा हिंदी है ।''

इस कथन से हमें ज्ञात होता है कि द्विवेदी जी के हृदय में अन्य भाषाओं की उन्नति देखकर कसक उठती थी। यह कसक डाह या ईर्ष्या की द्योतक नहीं थी, वरन् इस हूक का कारण यह था कि हिंदी की इसी प्रकार उन्नति करने के लिए हिंदी-भाषा-भाषी कुछ ध्यान ही नहीं देते थे ।

यही वात उर्दू के लिए भी कही जा सकती है। उर्दू की उन्नति की त्रोर कुछ लोग ध्यान देते थे। एक वार भोपाल की वेगम साहिवा ने मुहम्मद साहव के चरित्र-लेखक की दो सौ गित रखते थे और उन्होंने वंग-किव माइकेल मधुसूद्रन दत्त तथा किववर रवीन्द्रनाथ ठाकुर द्यादि के जीवन-चरित भी, संचेंप में, लिखे हैं। अतः यह सममता कि द्विवेदी जी को वँगला से द्वेप था, ठीक नहीं है। वास्तव में वे यह चाहते थे कि जिस प्रकार वंगाली अपनी मातृभापा की उन्नति के लिए दत्तचित्त हैं, उसी प्रकार-—चाहे उन्हों की देखादेखी—हिंदी-मापा-भापियों को भी यह चेष्टा करनी चाहिए कि हिंदी-साहित्य की पूर्ण उन्नति हो जाय। वँगला-साहित्य पर उन्होंने समय-समय पर जो टिप्पिएयाँ दी हैं वे इसी उद्देश्य की चोतक हैं कि वंगालियों का अपनी भाषा के प्रति जेसा कर्तव्य है, उसे सुमाकर हिंदीवालों को भी अपनी मातृ-भाषा के प्रति कर्तव्य का ज्ञान करा दें। 'वंग-किव-कुल-कोकिल' वावू नवीनचंद्र सेन, वी० ए० का संचिन्न परिचय उन्होंने अप्रेल, सन् १६०६ की 'सरस्वती' में प्रकाशित किया था। उसके यंत में द्विवेदी जी ने लिखा है—

'ईश्वर से प्रार्थना है कि ऐसा एक श्राध महाकवि न सही तो श्रम्का किव ही इन प्रांतों में भी पैदा करे, जहाँ की मुख्य भाषा हमारी हीना श्रीर चीय-कत्तेवरा हिंदी है।''

इस कथन से हमें ज्ञान होता है कि द्विवेदी जी के हृदय में अन्य भाषाओं की उन्नति देखकर कसक उठती थी। यह कसक डाह या ईर्ज्या की द्योतक नहीं थी, वरन इस हूक का कारण यह था कि हिंदी की इसी प्रकार उन्नति करने के लिए हिंदी-भाषा-भाषी कुछ ध्यान ही नहीं देते थे ।

यही वात उर्दू के लिए भी कही जा सकती है। उर्दू की उन्नति की छोर कुछ लोग ध्यान देते थे। एक वार भोपाल की बेगम साहिवा ने मुहम्मद साहव के चरित्र-लेखक की दो सौ

इसे सीखे तो हमारा निस्तार ही नहीं। पर हमारा रहन-सहन, वेश-भूषा, खान-पान, सब ऋँगरेजी ढंग का हो जाय हमारा निस्तार मात्रभाषा में लिखना, पढ़ना, वोलना, पाप सममने लगें, यह हमारे लिए घातक है। ऋँगरेजी-भाषा-विषयक उनके विचार 'महामंडल-माहात्म्य' नाम की ऋँगरेजी पुस्तक की ऋगलोचना से स्पष्ट हो जाते हैं। यह ऋालोचना 'सरस्वती' (भाग १६, संख्या ३, पृ० १८६) में प्रकाशित हुई थी। उसमें द्विवेदी जी ने लिखा है—

"भारत धर्म-महामण्डल धार्मिक परिपद् है। सनातनधर्म की रखा श्रीर विस्तार हो के लिए उसका जन्म हुआं है। ऐसी संस्था से प्रकाशित प्रस्तकें भँगरेज़ी में क्यों निकतें? हिंदी या श्रीर किसी.. भाषा में क्यों नहीं?"

इसी प्रकार जव 'पृथिवी-प्रदित्तिणा' के लेखक वावू शिवप्रसाद गुप्त ने लिखा—

''मैंने क़लम उठा अपनी गँवारी देशी भाषा वा असम्य देवनागरी अचरों में छोटा सा विचार लिख दिया। हमारे साहव हिंदू लोग हसेंगे कि यह अजब उल्लू है कि हवाई द्वीप में भी हिंदी में लिखना है। भला इसे पढ़ेगा कौन ? किंतु उन्हें अलमोड़ा, द्वारिकाश्रम इस्यादि या अन्य किसी जगह ही सही, येारप-अमेरिका-निवासियों के। खँगरेज़ी, जर्मन, फरासीपी भाषाओं में लिखते देख हँसी नहीं आती, उलटे उनकी नक़ल कर वे स्वयं धँगरेज़ी में लिखने लुग जाते हैं। इसी का नाम है पराधीनता की छाप

तव द्विवेदी जी ने वड़े मार्के का यह नोट लिखा था— फा० १४ इसे सीखे तो हमारा निस्तार ही नहीं। पर हमारा रहन-सहन, वेश-भूषा, खान-पान, सब अँगरेजी ढंग का हो जाय हमारा निस्तार मात्रभाषा में लिखना, पढ़ना, वोलना, पाप सममने लगें, यह हमारे लिए घातक है। अँगरेजी-भाषा-विषयक उनके विचार 'महामंडल-माहात्म्य' नाम की अँगरेजी पुस्तक की आलोचना से स्पष्ट हो जाते हैं। यह आलोचना 'सरस्वती' (भाग १६, संख्या ३, पृ० १८६) में प्रकाशित हुई थी। उसमें द्विवेदी जी ने लिखा है—

"भारत धर्म-महामण्डल धार्मिक परिपद् है। सनातनधर्म की रखा श्रीर विस्तार हो के लिए उसका जन्म हुआ है। ऐसी संस्था से प्रकाशित पुस्तकें भॅगरेज़ी में क्यों निकतें? हिंदी या श्रीर किसी. भाषा में क्यों नहीं?"

इसी प्रकार जव 'पृथिवी-प्रदक्तिणा' के लेखक वावू शिवप्रसाद गुप्त ने लिखा—

"मैंने क़लम उठा अपनी गँवारी देशी भाषा वा असभ्य देवनागरी अत्तरों में छोटा सा विचार लिख दिया। हमारे साहव हिंदू लोग हँसेंगे कि यह अनव उल्लू है कि हवाई द्वीप में भी हिंदी में लिखना है। भला इसे पढ़ेगा कौन ? किंतु उन्हें अलमोड़ा, द्वारिकाश्रम हस्यादि या अन्य किसी लगह ही सही, योरप-अमेरिका-निवासियों को खँगरेज़ी, जर्मन, फरासीपी भाषाओं में लिखते देख हँसी नहीं आती, उलटे उनकी नक़ल कर वे स्वयं धँगरेज़ी में लिखने लुग लाते हैं। इसी का नाम है पराधोनता की छाप

तब द्विवेदी जी ने बड़े मार्के का यह नोट लिखा था—

थे। 'हिंदी-विश्वकोप'-नामक ग्रंथ के पहले खंड की एक कापी दिवेदी जी के पास भेजी गई। साथ में एक पत्र भी था। यह ऋँगरेजी में लिखा था। यह बात सन् १६३७ की है। दिवेदी जी इस समय संपादक नहीं थे। उन्होंने कीव की समालीचना 'सरस्वती' में प्रकाशित कराई श्रीर उसमें साथ के श्रॅगरेजी पत्र का जिक्र कर दिया।

उच्च के।टि की जो पुस्तकें द्विचेदी जी दूसरी भाषा में पढ़ते थे उन्हें अपनी भाषा में लिखबाना अपना कर्तव्य सममते थे। इसके लिए कई वार उन्होंने प्रयत्न भी किया।

'उउनेन के सूवा या सर-सूवा' रायवहादुर चिंतामणि विनायक वेंग, एम० ए०, एल-एल० बी० ने एक पुस्तक 'महाभारत का उपसंहार' लिखी। द्विवेदी जो ने उसे पड़ा। पुस्तक उन्हें बहुत ही अधिक पसंद आई और उसे उन्होंने पञ्चम वेद—महाभारत—की सभी दृष्टियों से की गई चूड़ान्त समालोचना सममा। हिंदी में इस प्रकार की कोई पुस्तक न थी, अतः उसे पढ़कर उनके मन में जो भावना पेदा हुई उसे उन्हीं के शब्दों में देखिए—

म दाखए—

"इस पुस्तक वे पदकर हमारे मन में यह भावना हुई कि यदि
इसका हिंदो-श्रनुवाद हो जाता तो श्रपनी भाषा के साहित्य में एक
श्रमुख्य प्रथ की संपन्नता हो जाती।"

-सरस्वती (भा० २६. सं० ४ ए० ४२२)

वाल्मीकि-रामायण की भी इस प्रकार को कोई समा-लोचनात्मक पुराक न थी। यह कमी भी द्वित्रेग़े जी की बहुत खटकती थी। हिंदी के लेखकों से उन्होंने इसको पूरा करने की थे। 'हिंदी-विश्वकोप'-नामक प्रंथ के पहले खंड की एक कापी हिवेदी जी के पास भेजी गई। साथ में एक पत्र भी था। यह आगरेजी में लिखा था। यह बात सन् १६३७ की है। हिवेदी जी इस समय संपादक नहीं थे। उन्होंने कीप की समालीचना 'सरस्वती' में प्रकाशित कराई और उत्तमें साथ के अँगरेजी पत्र का जिक्र कर दिया।

उच्च केंदि की जो पुस्तकें द्विवेदी जो दूसरी भाषा में पढ़ते थे उन्हें श्रपनी भाषा में लिखबाना श्रपना कर्तव्य समकते थे। इसके लिए कई बार उन्होंने प्रयत्न भी किया।

'उड़जेन के सूवा या सर-स्वा' रायवहादुर चिंतामणि विनायक वेंग्न, एम० ए०, एल-एल० वी० ने एक पुस्तक 'महाभारत का उपसंहार' लिखी। द्विवेदी जी ने उसे पड़ा। पुस्तक उन्हें बहुत ही अधिक पसंद आई और उसे उन्होंने पञ्चम वेद—महाभारत—की सभी दृष्टियों से की गई चूड़ान्त समालोचना सममा। हिंदी में इस प्रकार की कोई पुस्तक न थी, अतः उसे पढ़कर उनके मन में जो भावना पेदा हुई उसे उन्हीं के शब्दों में देखिए—

''इस पुस्तक वे। पड़कर हमारे मन में यह भावना हुई कि यदि इसका हिंदो-श्रनुवाद हो जाता तो श्रपनी भाषा के साहित्य में एक श्रमुख्य त्रथ की संपन्नता हो जाती।"

--सरस्वती (भा० २६ मं० ४ प्र० ४२२)

वाल्मीकि-रामायण की भी इस प्रकार को कोई समा-लोचनात्मक पुस्क नथी। यह कमी भी द्विपेग़े जी के बहुत खटकती थी। हिंदी के लेखकों से उन्होंने इसको पूरा करने की दता है—उसे किसी का डर नहीं। वहुत दिन की बात नहीं है, जब एक महाशय ने बाबू पुरुषोत्तमदास टंडन की एक फा अँगरेजी में लिखा था। टंडन जी का उत्तर हिंदी में ही आया और उसका पहला वाक्य था—

''श्रापका ग्रॅंगरेज़ी भाषा में लिखा हुआ पत्र मिला। धन्यवाद ।"

लेखक महाशय बी० ए० थे, न्यंग्य सममे और कटकर रह गये। यही द्विवेदी जो भी चाहते थे कि जो वड़े श्रॅगरेजीदाँ वनते हैं वे अपनी मारुभापा के प्रति अपना कर्तन्य समम जायँ। वे अपनी प्रयत्न में वहुत कुछ सफल हुए। हिंदी-भाषा-भाषियों ने अपना कर्तन्य सममा और हिंदी-प्रचार भी हुआ। पर द्विवेदी जी के। सन्तोप न हुआ। यदि कोई ऐसा न्यक्ति जिसकी मारुभापा हिंदी नहीं होती थी, हिंदी का अध्ययन करता था तो द्विवेदी जी फूले नहीं समाते थे। उनकी यह प्रश्वित आरंभ से ही रही है। सन् १६०१ में उन्होंने एक पत्र शीयुत सदाशिय रघुनाथ भागवत के। लिखा था। यह पत्र इस प्रकार है—

> १० जनवरी, १६०१ भाँसी

प्रिय महाशय,

श्रापका कृपापत्र श्राया। श्रत्यानंद हुया। यह जानकर श्राश्चरं होता है कि श्रापकी मातृभाषा मराठी होकर, श्रापने हिंदी में इतना श्रम्यास किया है। यही नहीं, किंतु श्राप हिंदी में कविता भी कर सकते हैं। श्रापकी विद्याभिक्षि प्रशंसनीय है। यदि ग्वाजियर श्राने का श्रवसर श्राप्त होगा, तो इस श्रापते श्रवस्य मिलेंग्रे ५ एक 'नागरी' दता है—उसे किसी का डर नहीं। वहुत दिन की वात नहीं है, जब एक महाशय ने वाबू पुरुपोत्तमदास टंडन की एक फा अँगरेजी में लिखा था। टंडन जी का उत्तर हिंदी में ही आया और उसका पहला वाक्य था—

"श्रापका ग्रॅंगरेज़ी भाषा में लिखा हुआ पत्र मिला। धन्यवाद।"

तेखक महाशय बी० ए० थे, व्यंग्य सममे और कटकर रह गये। यही द्विवेदी जी भी चाहते थे कि जो वड़े अँगरेजीदाँ वनते हैं वे अपनी मातृभापा के प्रति अपना कर्तव्य समम जायँ। वे अपने प्रयत्न में वहुत कुछ सफल हुए। हिंदी-भाषा-भाषियों ने अपना कर्तव्य सममा और हिंदी-प्रचार भी हुआ। पर द्विवेदी जी की सन्तोप न हुआ। यदि कोई ऐसा व्यक्ति जिसकी मातृभापा हिंदी नहीं होती थी, हिंदी का अध्ययन करता था तो द्विवेदी जी फूले नहीं समाते थे। उनकी यह प्रवृत्ति आरंभ से ही रही है। सन् १६०१ में उन्होंने एक पत्र श्रीयुत सदाशिव रघुनाथ भागवत को लिखा था। यह पत्र इस प्रकार है—

> १० जनवरी, १६०३ भाँसी

प्रिय महाशय,

श्रापका कृपापत्र श्राया । श्रत्यानंद हुग्रा । यह जानकर श्राश्चर्यं होता है कि श्रापकी मातृभाषा मराठी होकर, श्रापने हिंदी में इतना श्रम्यास किया है । यही नहीं, किंतु श्राप हिंदी में कविता भी कर सकते हैं । श्रापकी विधाभिरुचि प्रशंसनीय है । यदि ग्वालियर श्वाने का श्रवसर प्राप्त होगा, तो इस श्रापसे श्रवस्य मिलेंगे + एक 'नागरी' यहाँ एक शंका की जा सकती है। जिस हिंदी की उन्न ति के लिए वे दिन-रात प्रयवशील रहते थे उसी मातृभाषा हिंदी का प्रचार करनेवाली नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी, की सेवान्नों ख्रौर कार्यों की वे कड़ त्रालोचना क्यों किया करते थे। वास्तव में द्विवेदी जी सभा के उद्देश्य को चड़े ख्रादर की दृष्टि से देखा करते थे ख्रौर उसके जन्मदाता बाबू श्यामसुंदरदास जी का भी बड़ा सम्मान किया करते थे। इसके लिए सभा के मंत्री बाबू राधाकृष्णदास ने २४-१-१८६६ के। धन्यवाद का एक पत्र भी द्विवेदी जी को लिखा था। वाद में जब सभा के कार्य-कर्तात्रों में ही कुछ मनमुटाव ख्रौर किसी सीमा तक स्वार्थपरता का भाव ख्रागया तब वे उसके विरुद्ध हो गये। इस बात के। वे स्वयं 'सरस्वती' में लिख चुके हैं। ख्रस्तु!

श्राज देश में हिंदी-प्रचार के लिए व्यापक श्रान्दोलन हो रहा है श्रीर साहित्य के प्रत्येक श्रंग की पूर्ति की चेष्ठा भी की जा रही है। इसका श्रेय द्विवेदी जी को ही है। वास्तव में वे क् हिंदी के निष्काम साधक थे। उसकी उन्नति के लिए उन्होंने श्रपना तन, मन, धन सभी कुछ श्रपेश कर दिया। एक महा-शय के विषय में कहा जाता है कि उन्हें चौवीसों घंटे देश का ध्यान रहता था; हम भी कह सकते हैं कि द्विवेदी जी चौवीसों घंटे हिंदी के हित की वात सीचा करते थे। यहाँ एक शंका की जा सकती है। जिस हिंदी की उन्न ति के लिए वे दिन-रात प्रयक्षशील रहते थे उसी मातृभाषा हिंदी का प्रचार करनेवाली नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी, की सेवान्नों त्रीर कार्यों की वे कटु त्रालोचना क्यों किया करते थे। वास्तव में द्विवेदी जी सभा के उद्देश्य को वड़े त्रादर की दृष्टि से देखा करते थे त्रीर उसके जन्मदाता वावू श्यामसुंदरदास जी का भी वड़ा सम्मान किया करते थे। इसके लिए सभा के मंत्री वावू राधाकृष्णदास ने २४-१-१८६६ को धन्यवाद का एक पत्र भी द्विवेदी जी को लिखा था। वाद में जब सभा के कार्य-कर्तात्रों में ही कुन्न मन्मुटाव त्रीर किसी सीमा तक स्वार्थपरता का भाव त्रागया तब वे उसके विरुद्ध हो गये। इस वात को वे स्वयं 'सरस्वती' में लिख चुके हैं। त्रास्तु!

आज देश में हिंदी-प्रचार के लिए व्यापक आन्दोलन हो रहा है और साहित्य के प्रत्येक अंग की पूर्ति की चेष्टा भी की जा रही है। इसका श्रेय द्विवेदी जी को ही है। वास्तव में वे हिंदी के निष्काम साधक थे। उसकी उन्नति के लिए उन्होंने अपना तन, मन, धन सभी कुछ अपण कर दिया। एक महा-शय के विषय में कहा जाता है कि उन्हें चौबीसों घंटे देश का ध्यान रहता था; हम भी कह सकते हैं कि द्विवेदी जी चौबीसों घंटे हिंदी के हित की वात सोचा करते थे। यह बुढ़ापे के समय का पंडित हरिभाऊ उपाध्याय के देखे हुए व्यक्तित्व का वर्णन हैं। इसी की दृसरी त्राँखों से देखिए—

"लंबा क़द, विशाल श्रीर रोबदार चेहरा, उद्यत ललाट. गीर वर्ण, सिंह के समान श्रस्त-व्यस्त फेली हुई बड़ी-बही मुळें श्रीर श्रसाधारण घनी घनी मैंहें—ि द्विवेदी जी की देखकर एक महापुरुप व तस्ववेत्ता के साचारकार का श्रमुभव तो होता ही है, यह भी जान पढ़ता है कि हम फौज के किसी रिटायर्ड कमाण्डर के सामने खड़े हैं, जो युगों से धारा के श्रवाह को श्रपनी गोद में लेकर उछाल देता रहा हो, श्रीर जिसका युगों का संचय काई के रूप में बुड़ापे के केवल थीड़े से पद-विद्व हों—उसकी कठोरता वैसी ही बनी हो, उसकी धपेड़ों से लहरें श्रय भी मुड़-मुड़कर बहती हों। द्विवेदी जी के व्यक्तित्व में हमें एक ऐसे कुशल सेनानायक के गुणों की मजक मिलती है, जिसके जीवन का मुख्य तस्व श्रमुशासन रहा हो। वह यदि युद्ध के चेत्र में होते, तो सेनाशों का संचालन करते। हिंदी के साहित्य-चेत्र में श्राये, तो उन्होंने बीस वर्ष तक उसकी डिक्टेटरशिप श्रपने हाथ में रक्खी।"

लगभग चालीस वर्ष पहले उनकी स्थिति साधारण ही थी। मामूली गृहस्थों की तरह रहते थे और रेल के वाबुओं की तरह कोट-पतल्न पहनते थे। उस समय भी लोग अपने सामने कोट-पतल्न डाटे एक 'जाएंट' की देखा करते थे। उनका वह तेजस्वी व्यक्तित्व, विशाल रोबदार चेहरा और उन्नत ललाट, वड़ी-वड़ी भौंहों के नीचे तेजपूर्ण नेत्रों की ममंबेधिनी दृष्टि देखकर दूसरे सहम-से जाते थे। यद्यपि बुढ़ापे में उनके चेहरे पर वह कान्ति और नेत्रों में वह ज्योति नहीं रही थी, तथापि उनकी सौम्य आकृति वैसा ही प्रभाव डालनेवाली अन्तिम दिनों तक वनी रही थी

यह बुढ़ापे के समय का पंडित हरिभाऊ उपाध्याय के देखे हुए व्यक्तित्व का वर्णन है। इसी की दृसरी आँखों से देखिए—

"लंबा झद, विशाल श्रीर रोबदार चेहरा, उद्यत ललाट. गौर वर्ण, सिंह के समान श्रस्त-व्यस्त फैली हुई वड़ी-बड़ी मुळुं श्रीर श्रसाधारण घनी घनी भैंहिं—द्विवेदी जी की देखकर एक महापुरुप व तस्ववेत्ता के सालाकार का श्रनुभव तो होता ही है, यह भी जान पड़ता है कि हम फौज के किसी रिटायर्ड कमाण्डर के सामने खड़े हैं, जो युगों से धारा के प्रवाह को श्रपनी गोद में लेकर उछाल देता रहा हो, श्रीर जिसका युगों का संचय काई के रूप में बुढ़ापे के केवल थोड़े से पद-विद्व हों—उसकी कठोरता वैसी ही बनी हो, उसकी थपेड़ों से लहरें श्रव भी मुड़-मुड़कर बहती हों। द्विवेदी जी के व्यक्तित्व में हमें एक ऐसे छुशल सेनानायक के गुणों की मलक मिलती है, जिसके जीवन का मुख्य तत्त्व श्रनुशासन रहा हो। वह यदि युद्ध के चेत्र में होते, तो सेनाशों का संचालन करते। हिंदी के साहित्य-चेत्र में श्राये, तो उन्होंने बीस वर्ष तक उसकी डिक्टेटरशिप श्रपने हाथ में रक्खी।"

लगभग चालीस वर्ष पहले उनकी स्थिति साधारण ही थी। मामूली गृहस्थों की तरह रहते थे और रेल के वावुओं की तरह कोट-पतल्न पहनते थे। उस समय भी लोग अपने सामने कोट-पतल्न डाटे एक 'जाएंट' की देखा करते थे। उनका वह तेजस्वी व्यक्तित्व, विशाल रोवदार चेहरा और उन्नत ललाट, वड़ी-वड़ी भौंहों के नीचे तेजपूर्ण नेत्रों की ममंबेधिनी दृष्टि देखकर दूसरे सहम-से जाते थे। यद्यपि बुढ़ापे में उनके चेहरे पर वह कान्ति और नेत्रों में वह ज्योति नहीं रही थी, तथापि उनकी सौम्य आकृति वैसा ही प्रभाव डालनेवाली अन्तिम दिनों तक बनी रही थी।

पंचायत के सरपंच भी थे। पहले वे आनरेरी मुंसिक थे, लेकिन अब कई वर्षों से वहाँ पंचायत स्थापित हो गई थी। मुक्तदमों की कुल काररवाई वे हिंदी में ही लिखते थे। जिस दिन मुक्तदमें इत्यादि नहीं पेश होते, उस दिन थोड़ा-सा आराम करके अखवार ही पढ़ा करते थे। कभी-कभी दे। पहर को लेटकर कुछ विश्राम भी कर लेते थे। नींद तो उन्हें रात में भी बहुत कम आती थी। दिन में तो शायद ही कभी सोते हों। उन्निद्र रोग से वे सदैव पीड़ित रहे। शाम को, चार बजने के वाद, वे अपने वारों व खेतों की ओर घूमने जाते थे। मार्ग में गरीब किसान मिल जाते थे। द्विवेदी जी उनसे, उनकी ही भाषा में, खेती-किसानी के विषय में बड़ी देर तक वातें किया करते थे। शाम को घूम-फिरकर थोड़ी देर तक दरवाजे पर वैठते थे। कोई आ गया तो उससे वातें किया करते थे। इसके वाद शीघ ही सो जाने को अपर चले जाते थे।

यह थी द्विवेदी जी की वँधी हुई दिनचर्या। वृद्धावस्था में वे अपने गाँव से बहुत कम निकलते थे। परंतु जब वे 'सरस्वती' के संपादक थे तब भी उनका दैनिक जीवन और कार्यक्रम निश्चित रहता था और वे सब काम समय पर ही किया करते थे। यहाँ तक कि उनके दैनिक जीवन और कार्य-क्रम से परिचित रहनेवाला व्यक्ति निःसंदेह यह वता सकता था कि अमुक समय में द्विवेदी जी अमुक कार्य कर रहे होंगे और अमुक स्थान पर मिलेंगे। उनकी वक्त की पाबंदी और कर्तव्य-पालन की दृद्रता देखकर एक बार स्वर्गीय वाबू चिंतामिण घोप ने उन्हीं से कहा था—हिंदुस्तानी संपादकों में मैंने वक्त के पाबंद और कर्तव्य-पालन के विषय में दृद्र-प्रतिज्ञ दो ही आदमी देखे हैं; एक तो रामानंद वाबू और दूसरे आप

पंचायत के सरपंच भी थे। पहले वे आनरेरी मुंसिफ थे, लेकिन अब कई वर्षों से वहाँ पंचायत स्थापित हो गई थी। मुक़दमों की कुल काररवाई वे हिंदी में ही लिखते थे। जिस दिन मुक़दमें इत्यादि नहीं पेश होते, उस दिन थोड़ा-सा आराम करके अखवार ही पढ़ा करते थे। कभी-कभी दोपहर को लेटकर कुछ विश्राम भी कर लेते थे। नींद तो उन्हें रात में भी बहुत कम आती थी। दिन में तो शायद ही कभी सोते हों। उन्निद्र रोग से वे सदैव पीड़ित रहे। शाम को, चार बजने के बाद, वे अपने बागों व खेतों की ओर घूमने जाते थे। मार्ग में गरीब किसान मिल जाते थे। दिवेदी जी उनसे, उनकी ही भाषा में, खेती-किसानी के विषय में बड़ी देर तक वातें किया करते थे। शाम को घूम-फिरकर थोड़ी देर तक दरवाजे पर वैठते थे। कोई आ गया तो उससे वातें किया करते थे। इसके वाद शीव ही सो जाने को उपर चले जाते थे।

यह थी द्विवेदी जी की वाँधी हुई दिनचर्या। वृद्धावस्था में वे अपने गाँव से बहुत कम निकलते थे। परंतु जब वे 'सरस्वती' के संपादक थे तब भी उनका दैनिक जीवन और कार्यक्रम निश्चित रहता था और वे सब काम समय पर ही किया करते थे। यहाँ तक कि उनके दैनिक जीवन और कार्य-क्रम से परिचित रहनेवाला व्यक्ति निःसंदेह यह बता सकता था कि अमुक समय में द्विवेदी जी अमुक कार्य कर रहे होंगे और अमुक स्थान पर मिलेंगे। उनकी वक्त की पाबंदी और कर्तव्य-पालन की दृद्रता देखकर एक बार स्वर्गीय बाबू चिंतामिण घोप ने उन्हीं से कहा था—हिंदुस्तानी संपादकों में मैंने वक्त के पाबंद और कर्तव्य-पालन के विषय में दृद्र-प्रतिज्ञ दे। ही आदमी देखे हैं; एक तो रामानंद वाबू और दूसरे आप

भावुक, प्रतिभाशाली और शिष्ट लेखक थे। उन्हें सभा के उद्देश्य और आदर्श से पूर्ण सहानुभूति थी; परंतु सभा के तत्कालीन कार्यकर्ताओं की नीति उन्हें पसंद नहीं थी। पर उन्होंने किसी पर अपने लेख में आद्मेप नहीं किया। फिर भी पंडित केदारनाथ जी पाठक ने जाकर उनसे पहला प्रश्न यही किया कि सभा के कार्यों की जो कड़ी आलोचना की है उसका हमें किस रूप में प्रतिवाद करना होगा—क्या 'विपस्य विपमीपधम्' की नीति का अवलंबन करना पड़ेगा ?

दिवेदी जी ने मुस्कराते हुए सज्जनोचित शब्दों में कहा—देवता! ठहर जात्रो, ठहर जात्रो, मैं त्रभी त्राता हूँ। त्रीर एक तरतरी में मिठाई, एक लोटा जल लाकर सामने रख दिया तथा एक मोटी लाठी भी साथ लेते त्राये। तत्पश्चात् उन्होंने कहा—सुदूर प्रवास से थके-माँदे त्रा रहे हो, पहले हाथ-मुँह धोकर जलपान करके सवल हो जात्रो। तव यह लाठी त्रीर यह मेरा मस्तक है। यह थी सरलता की कोमलता, जिसने पाठक जी को पानी-पानी कर दिया। चित्त की कोधांगिन को त्राश्चारा ने बुमा दिया। क्रोध का स्थान करणा ने प्रहण कर लिया। हदय में श्रद्धा त्रीर भक्ति का भाव उमड़ पड़ा।

श्राम खाने का शौक उन्हें श्रारंभ से ही था। उन्होंने कई श्राम के पेड़ स्वयं लगाये थे। सन् १८८५ के लगभग वे हुशंगावाद के रेलवे स्टेशन पर थे। स्टेशन के पास ही एक वँगले के श्राँगन में उन्होंने वंबई के 'हाउस' नाम के कलमी श्राम की एक गुठली गाड़ दी। उससे पौधा निकला। १५-२० वर्ष वाद द्विवेदी जी फिर एक बार उधर से निकले, तब स्टेशन

भावुक, प्रतिभाशाली और शिष्ट लेखक थे। उन्हें सभा के उद्देश और आदर्श से पूर्ण सहानुभूति थी; परंतु सभा के तत्कालीन कार्यकर्त्ताओं की नीति उन्हें पसंद नहीं थी। पर उन्होंने किसी पर अपने लेख में आत्तेप नहीं किया। फिर भी पंडित केदारनाथ जी पाठक ने जाकर उनसे पहला प्रश्न यही किया कि सभा के कार्यों की जो कड़ी आलोचना की है उसका हमें किस रूप में प्रतिवाद करना होगा—क्या 'विपस्य विपमौपधम्' की नीति का अवलंबन करना पड़ेगा ?

दिवेदी जी ने मुस्कराते हुए सज्जनोचित शब्दों में कहा—देवता! ठहर जात्रो, ठहर जात्रो, मैं त्रभी त्राता हूँ। त्रौर एक तरतरी में मिठाई, एक लोटा जल लाकर सामने रख दिया तथा एक मोटी लाठी भी साथ लेते त्राये। तत्पश्चात् उन्होंने कहा—सुदूर प्रवास से थके-माँदे त्रा रहे हो, पहले हाथ-मुँह धोकर जलपान करके सवल हो जात्रो। तव यह लाठी त्रौर यह मेरा मस्तक है। यह थी सरलता की कोमलता, जिसने पाठक जी को पानी-पानी कर दिया। चित्त की कोधानिन को त्रशुधारा ने बुमा दिया। क्रोध का स्थान करणा ने प्रहण कर लिया। हृदय में श्रद्धा त्रौर भक्ति का भाव उमड़ पड़ा।

त्राम खाने का शौक उन्हें आरंभ से ही था। उन्होंने कई आम के पेड़ स्वयं लगाये थे। सन् १८८५ के लगभग वे हुशंगावाद के रेलवे स्टेशन पर थे। स्टेशन के पास ही एक वँगले के आँगन में उन्होंने वंबई के 'हाउस' नाम के क़लमी आम की एक गुठली गाड़ दी। उससे पौधा निकला। १५-२० वर्ष बाद द्विवेदी जी फिर एक बार उधर से निकले, तब स्टेशन

उनका पुस्तकालय भी था, प्रवेश किया। मेरे द्वारा वहीं श्रन्य दोनों -सज्जनों का परिचय पाकर वे विशेष प्रसन्न हुए श्रीर हम लोगों में साहित्य-संबंधी वार्तालाप करने लगे। इसके पश्चात् उन्होंने हम लोगों की जलपान पराया श्रीर पान दिये। इस प्रकार लगभग दो घंटे तक हम लोग हिवेदी जी के सत्संग में श्रानंद मनाते रहे। श्रंत में हम लोगों के विदा लेने पर श्राप सड़क तक हम सबदें। भेजने श्राये श्रीर श्रादर-सरकार की गुटियों के लिए समा माँगी।

स्वर्गवासी द्विवेदी जी शिष्टाचार के पूरे पालक थे, श्रतएव उन्हें किसी की थोड़ी भी श्रशिष्टता सहा नहीं होती थी। पूर्वोक्त श्रवसर पर जब द्विवेदी जी कुछ कह रहे थे तब में भूल से बीच में कुछ वह गया। इस पर उन्होंने कुछ रूले होकर कहा कि श्रापके साथ धातचीत करना कठिन है! में नत-मस्तक होकर रह गया। द्विवेदी जी का स्वभाव जितना द्यालु था उतना ही उग्र भी था, मानो वे 'साँसित करि पुनि करिहं पसाक'। श्रनिधकारी लोगों के धार्तालाप तथा ज्यवहार से उनके मन में ग्लानि होती थी। वे पत्रों का उत्तर बहुधा लौटती ढाक से देते थे श्रीर जो उनके पत्र वा उत्तर नहीं देता था उसे वे श्रसभ्य समझते थे तथा उपकी श्रवहेलना को श्रपना श्रपमान मानते थे।"

द्विवेदी जी का यह दस्तूर था कि जो कोई भी उनसे मिलने जाता उसे अपनी डिविया से दो पान भेंट करते और वातचीत समाप्त कर लेने पर दो पान और भेंट करते, जो इस वात का इशारा था कि वस अब आप तशरीफ ले जाइए जेसा कि महात्मा गांधी भी वातचीत समाप्त करने पर कह देते हैं कि 'वस खलास।' इससे यह प्रकट होता है कि द्विवंदी जी व्यर्थ की वकवास और समय का नष्ट करना पसंद् नहीं करते थे। उन्होंने कभी शत्रुता की उभारने की कोशिश नहीं की और न

उनका पुस्तकालय भी था, प्रवेश किया । मेरे द्वारा वहाँ अन्य शोनों न सज्जनों का परिचय पाकर ये विशेष प्रसन्न हुए श्रीर हम लोगों से साहित्य-संयंधी वार्तालाप करने लगे । इसके परचात् उन्होंने हम लोगों की जलपान कराया श्रीर पान दिये । इस प्रकार लगभग दो घंटे तक हम लोग हिचेदी जी के सत्संग में श्रानंद मनाते रहे । शंत में हम लोगों के विदा लेने पर श्राप सहक तक हम सबका भेजने श्राये श्रीर श्रादर-सरकार की शुटियों के लिए स्ना मांगी ।

स्वर्गवासी द्विवेदी जी शिष्टाचार के पूरे पालक थे, श्रतएव उन्हें किसी की थोड़ी भी श्रशिष्टता सक्त नहीं होती थी। पूर्वोक्त श्रवसर पर जब द्विवेदी जी कुछ कह रहे थे तब में भूल से बीच में कुछ वह गया। इस पर उन्होंने कुछ रूछे होकर कहा कि श्रापके साथ वातचीत करना कठिन हैं! में नत-मस्तक होकर रह गया। द्विवेदी जी का स्वभाव जितना द्यालु था उतना ही उग्र भी था, मानो वे 'साँसित किर पुनि करिह पसाक'। श्रमधिकारी छोगों के वार्तालाप तथा ज्यवहार से उनके मन में ग्लानि होती थी। वे पत्रों का उत्तर बहुधा लौटती डाक से देते थे श्रीर जो उनके पत्र वा उत्तर नहीं देता था उसे वे श्रसभ्य समझते थे तथा उसकी श्रवहेलना को श्रपना श्रपनान मानते थे।"

द्विवेदी जी का यह दस्तूर था कि जो कोई भी जनसे मिलने जाता उसे अपनी डिविया से दें। पान भेंट करते और वातचीत समाप्त कर लेने पर दें। पान और भेंट करते, जो इस वात का इशारा था कि वस अब आप तशरीफ ले जाइए जेसा कि महात्मा गांधी भी वातचीत समाप्त करने पर कह देते हैं कि 'वस खलास।' इससे यह प्रकट होता है कि द्विवेदी जी व्यर्थ की वकवास और समय का नष्ट करना पसंद् नहीं करते थे। उन्होंने कभी शत्रुता की जभारने की कोशिश नहीं की और न

प्रतिदिन लिखेंगे प्रवश्य। उम समय ये रेलवं फे फर्मचारी थे श्रीर १० घने से शाम के ६ घने तक जुटकर फाम फरना पर्ना था। प्रतिदिन का काम समाप्त करके ही ये चर आते थे । इसलिए कभो-कभी बहुत रात तक फाग करना पड़ता था । ऐसे दिन लिखने का काम-प्रण निमाना कठिन है। जाता था। पर इसमें शायद ही कभी व्यक्तिकम एवा हो। जिस दिन देर हा जानी थी, वे चिंदकी राट स्टेशन पर धेठकर ही एक घंटा लिख लिया करते थे और तब घर आते थे। 'सरस्वती' का काम करने हुए भी लिखने के लिए उन्हें इसी प्रकार हुड़ रहना पड़ना या। यदि वे ऐसान करने तो क्या यह संभव था कि संपादन का कार्य करके भी लगभग ४० प्रष्ट प्रतिमाम लिख डालते। इसी प्रकार यदि वे किमी के घर श्राने का वादा कर लेने थे तो उसे प्यवश्य ही निभाते थे; ल्-लपट खीर वर्षा की बीद्यार में उन्हें राक लेते की ज़मता नहीं थी। वे चाहते भी ऐसे ही लेगिं। को थे जा बादा करके उसे पूरा करना जानते 🧋 थे। यदि कोई वादाखिताको करता या तो उसे सुरी तरह फटकार दिया करते थे। लेग इससे फभी-कभी अप्रसन्न भी है। जाते थे; पर द्विवेदी जी ने कभी इमकी चिंता ही नहीं की— इस श्रोर भी वे सदैव हट ही रहे।

पंचायत

दियेदी जी खपने गाँव की गं नियंति से सर्पंच थे। उनकी पंचायन में किसी का भी मुक्तदमा आ जाय परंतु वे खपनी न्यायप्रियता और स्पष्टवादिता कभी नहीं छोड़ने थे; चाहे उन्हें खपने हाथ से खपने किमी संबंधी की ही दंड देना पड़े, परंतु वे खंतःकरण से ठीक ही काम करेंगे के प्रमुक्त वे खानरेरी मंसिक थे। उस समय भी उनका कार्य-क्रम प्रेम् ही रहता फा० १४

प्रतिदिन लिखेंगे प्रवश्य। उम मगय वे रेलवं फे फर्मचारी धे श्रीर १० वजे से शाम के ६ वजे तक जुटकर काम करना पड़ता था। प्रतिदिन का काम समाप्त करके ही ये चर आते थे। इसलिए कभो-कभी बहुत रात तक काम करना पड़ता था। ऐसे दिन लिखने का काम-प्रण निमाना कठिन है। जाता था। पर इसमें शायद ही कभी व्यतिक्रम हुआ है। जिस दिन देर हो जानी थी, वे चिंदकी राट स्टेशन पर बैठकर ही एक घंटा लिए लिया करते थे और तब घर आते थे। 'सरस्वती' का काम करने हुए भी लिखने के लिए उन्हें इसी प्रकार हुड़ रहना पड़ता था। यदि वे ऐसान करने ता क्या यह संभव था कि संपादन का कार्य करके भी लगभग ४० प्रष्ट प्रतिमाम लिख डालते। इमी प्रकार यदि वे फिनी के घर ध्वाने का वादा कर लेने ये तो उसे प्यवस्य ही निभाने थे; लू-लपट प्यीर वर्षा की त्रीहार में उन्हें राक लेने की जमता नहीं थी। वे चाहने भी ऐसे ही लोगों को थे जा बादा करके उसे पूरा करना जानते थे। यदि कोई यादाखिताको करता या तो उसे युरी तरह फटकार दिया करते थे। लीग इससे कभी-कभी खप्रसन्न भी है। जाते थे; पर द्विवेदी जी ने कभी इसकी चिंता ही नहीं की-इस श्रोर भी वे सदैव हट ही रहे।

पंचायत

दिवेदी जी खपने गाँव की पंचायत के सरपंच थे। उनकी पंचायत में किसी का भी मुझदमा छा जाय परंतु वे खपनी न्यायप्रियता छोर स्पष्टवादिता कभी नहीं छोउने थे; चाहे उन्हें खपने हाथ से खपने किमी संबंधी के ही दंह देना पड़े, परंतु वे खंतकरण से ठीक ही काम करेंगे. प्रहते वे खानरेरी मुंसिक थे। उस समय भी उनका कार्य-कम ऐसा ही रहता फा० १५

भी इसमें तुदि नहीं होने दी। ६-वीं वर्षगाँठ के अवसर पर जो उनका कृतज्ञताज्ञापन प्रकाशित हुआ था उससे भी उनकी विनम्रता का परिचय मिलता है। उसमें एक स्थान पर उन्होंने लिखा था—

''किसी किसी ने मेरी सरसठवीं वर्षगाँठ मनाई है। जान पड़ता है, इन सजनों के हृदय में मेरे विषय के वात्सल्यभाव की मात्रा कुछ श्रथिक है। इसी से उन्होंने मेरी उन्न एक वर्ष कम बता दी है।"

उनके इस ज्ञापन पर श्रीयुत शिवपूजनसहाय (जागरण-संपादक) ने ४ जून, १६३२ (ज्येष्ठ सं० १६८६) में यह तिखा था—

"तैकिन उन सज्जनों का इसमें कोई दोप नहीं। थाराध्यदेव की सेवा में तरपर श्रद्धाल भक्त कभी-कभी इतना तन्मय हो जाता है कि गले की माला चरणों पर ही हाथ से छुट पड़ती है। श्रस्तु।"

'सरस्वती'-संपादन-कार्य से छुट्टी लेते समय 'संपादक की विदाई'-शोर्षक जे लेख द्विवेदी जी ने लिखा है, वह भी विनम्रता का अच्छा नमूना है।

सादगी

रेलवे में वावू की हैंसियत से द्विवेदी जी केट और पतल्त पहना करते थे। 'सरस्वती' का काम करने पर भी छुछ दिन तक वे यही पोशाक पहनते रहे। पर उनकी यह पोशाक देशी कपड़े की होती थी और उनकी रहन-सहन विलक्षत सादी थी। वाद कें। उन्होंने पतल्त की भी त्याग दिया। उनके सिर पर चार-छः आने की मामूली टोपी रहती थी और वदन पर एक साधारण भी इसमें त्रुटि नहीं होने दी। ६८वीं वर्षगाँठ के अवसर पर जो उनका कृतज्ञताज्ञापन प्रकाशित हुआ था उससे भी उनकी विनम्रता का परिचय मिलता है। उसमें एक स्थान पर उन्होंने लिखा था—

''किसी किसी ने मेरी सरसठवीं वर्षगाँठ मनाई है। जान पढ़ता है, इन सज्जनों के हृदय में मेरे विषय के वात्सल्यभाव की मात्रा कुछ श्रिक है। इसी से उन्होंने मेरी उन्न एक वर्ष कम बता दी है।''

उनके इस ज्ञापन पर श्रीयुत शिवपूजनसहाय (जागरण-संपादक) ने ४ जून, १६३२ (ज्येष्ठ सं० १६⊏६) में यह लिखा था—

"लेकिन उन सज्जनों का इपमें कोई दोप नहीं। श्राराध्यदेव की सेवा में तत्पर श्रद्धालु भक्त कभी-कभी इतना तन्मय हो जाता है कि गले की साला चरणों पर ही हाथ से छुट पहती है। श्रस्तु।"

'सरस्वती'-संपादन-कार्य से छुट्टी लेते समय 'संपादक की विदाई'-शोर्पक जे। लेख द्विवेदी जी ने लिखा है, वह भी विनम्रता का अच्छा नमूना है।

सादगी

रेलवे में वावू की हैसियत से द्विवेदी जी कीट और पतल्त पहना करते थे। 'सरस्वती' का काम करने पर भी कुछ दिन तक वे यही पाशाक पहनते रहे। पर उनकी यह पाशाक देशी कपड़े की होती थी और उनकी रहन-सहन विलक्क सादी थी। वाद की उन्होंने पतल्त को भी त्याग दिया। उनके सिर पर चार-छ: आने की मामूली टोपी रहती थी और वदन पर एक साधारण रक्खा। उन पर तरह-तरह के कष्ट पड़े; पर वे कभी विचलित न हुए और न दूसरों के आगे अपना रोना ही रोया। वे अपनी माता जी पर अधिक भक्ति रखते थे। कालांतर में उनका स्वर्ग-वास हुआ। अपनी स्त्री से उन्हें वहुत प्रेम था। थोड़ी ही अवस्था में वे भी इनको अकेला छोड़ गईं। इसी प्रकार कई अन्य संवं-धियों का भी विछोह हुआ। हृद्य पर पत्थर रखकर द्विवेदी जी ने सव सहा; पर मुँह से उक्त नहीं की।

व्यवस्था और नियमन

सुनते हैं, वाल्टर स्काट जिस कमरे में वैठकर लिखा करते थे वह गंदी गली में था श्रोर उस कमरे में कभी सकाई नहीं होती थी। वात ठीक हो या न हो, पर इससे यह ध्वनि अवश्य निकलती है कि वह व्यवस्था-प्रिय न था, आलसी था। द्विवेदी जी की इस प्रकार की अव्यवस्था विलक्कल पसन्द नहीं थी। वे स्वयं सव सकाई अपने हाथ से करते थे। घर में जो चीज जहाँ रक्खी जाती है वह वहीं ऋपने स्थान पर रक्खी जानी चाहिए। टोपी या छड़ी रखने की जगह पर केट या जूते नहीं रक्खे जा सकते थे। इसी प्रकार वे पुस्तकों की भी निश्चित स्थान पर ही रखते थे। यदि कोई पुस्तक अपनी जगह से हट या गायव हो जाती थी तो उन्हें तुरंत मालूम हो जाता कि कोई गड़बड़ हुआ है। वे घरवालों से पूछताछ कर तुरंत पता लगा लेते थे। पुस्तकों की संकाई तो वे वृद्धावस्था में भी रोज करते थे। पुस्तकें उन्हें प्राणों से भी ऋधिक प्यारी थीं। गाँव में पुस्तक केवल उन्हीं लोगों का देते थे जिनके वारे में यह जानते थे कि ये पुस्तक पढ़कर समभ सकते हैं। जो व्यक्ति उनसे पुस्तक ले जाता था उसे निश्चित समय में ज्यों की त्यों वापस करनी पड़ती थी। द्विवेदी जी की सुव्यवस्था का प्रभाव

क्ला। उन पर तरह-तरह के कष्ट पड़े; पर वे कभी विचितत हुए और न दूसरों के आगे अपना रोना ही रोया। वे अपनी ता जी पर अधिक भक्ति रखते थे। कालांतर में उनका स्वर्ग-सि हुआ। अपनी स्त्री से उन्हें वहुत प्रेम था। थोड़ी ही अवस्था वे भी इनको अकेला छोड़ गईं। इसी प्रकार कई अन्य संवं-यों का भी विछोह हुआ। हृदय पर पत्थर रखकर द्विवेदी जी सव सहा; पर मुँह से उक्त नहीं की।

व्यवस्था और नियमन

सुनते हैं, वाल्टर स्काट जिस कमरे में वैठकर लिखा करते वह गंदी गली में था श्रीर उस कमरे में कभी सकाई ां होती थी। बात ठीक हो या न हो, पर इससे यह ध्वनि [श्य निकलती है कि वह व्यवस्था-प्रिय न था, आलसी । द्विवेदी जी की इस प्रकार की अन्यवस्था विलकुल पसन्द ांथी। वे स्वयं सव सकाई अपने हाथ से करते थे। घर तो चीज जहाँ रक्खी जाती है वह वहीं ऋपने स्थान पर बी जानी चाहिए। टोपी या छड़ी रखने की जगह पर कोट जुते नहीं रक्खे जा सकते थे। इसी प्रकार वे पुस्तकों की भी रंचत स्थान पर ही रखते थे। यदि कोई पुस्तक अपनी जगह ट या गायव हो जाती थी तो उन्हें तुरंत मालूम हो जाता होई गड़बड़ हुआ है। वे घरवालों से पूछताछ कर तुरंत लगा लेते थे। पुस्तकों की सकाई तो वे बृद्धावस्था में भी करते थे। पुस्तकें उन्हें प्राणों से भी ऋधिक प्यारी थीं। में पुस्तक केवल उन्हीं लोगों का देते थे जिनके वारे में जानते थे कि ये पुस्तक पढ़कर समभ सकते हैं। जो व्यक्ति ो पुस्तक ले जाता था उसे निश्चित समय में ज्यों की त्यों त करनी पड़ती थी। द्विवेदी जो की सुव्यवस्था का प्रभाव

धर्मपत्नी ने थाली में खाद्य पदार्थ उस सिलसिले में नहीं रक्खे थे निसमें द्विवेदी जी निस्पत्रति रखवाते थे, अत्तएव उनको भी स्नेह-मिश्रित मर्स्सना सुननी पड़ी।''

द्विवेदी जी की सफाई और व्यवस्था-प्रेम का पंडित लद्मीधर वाजपेयी ने बड़ा सुन्दर चित्र निम्न शब्दों में खींचा है—

"घर के सामने पका कुर्यां, छोटी-सी फुलवाही, प्रगल-वाल में हिंदी-पाठराला, ढाकघर, श्रितिविधाला, गोशाला, सब उसी घर से मिले हुए छाटे दायरे में थे। सामने ही मैदान में एक छोर एक पका चन्नतरा छोर उस पर छोटा-सा महावीर जी का मंदिर, फिर माता जी (श्राचार्य-पली) का मंदिर, फिर एक बड़ा-सा गहरा तालाव! प्रथम दर्शन में ही उस बीहड़ देहात में यह दृश्य सचमुच एक तीर्थस्थान-सा दिखाई दिया। मैं सामने ही चन्नतरे पर चड़कर पादत्राण बाहर उतार एकदम श्राचार्य के बैठके में घुस गया। श्राप एक बंडी पहने हुए, बिलकुल देहाती—वज्र गवार-से—एक छोटा-सा माड़न लिये श्राहमारियों की श्रपनी पुस्तकें पोंछ रहे थे। पुस्तकों में धून चड़ी हुई नहीं थी; पर श्राचार्य का यह क्रम था कि प्रतिदिन सुबह उठकर पहले सफाई का काम करते श्रीर देखते थे। तमाम कमरा साफ, सामान साफ, जहाँ का तहाँ वाकायदा। बाहर चन्नतरा बिलकुल साफ माड़ा हुशा!

श्राचार्य छोटा-सा भाइन लिये सिर मुकाये कितार्वे माइ रहे थे। में एकदम गया, श्रीर पैर छुए। श्रापने सिर अपर उठाया; श्रार मेरी श्रोर श्रपनी स्वाभाविक जलदगंभीर, पर मधुर स्नेह से भरी हुई ध्विन से बेल उठे—'लघमीधर!' एक-दो छुगल प्रश्न की वातें हुई श्रीर श्राचार्य फिर पुस्तकें पोंछने में लग गये। में बाहर तालाव की उरफ जाकर जंगल की तरफ ह्धर-उधर देखने लगा। पाँच-सात मिनट वाद श्राया तब देखता क्या हूँ कि मेरे पादत्राण जो कमरे के बाहर दरवाज़े

धर्म्मपत्नी ने थाली में खाद्य पदार्थं उस सिलसिले में नहीं रक्खेथे जिसमें द्विवेदी जी नित्यप्रति रखवाते थे, अतएव उनको भी स्नेह-मिश्रित भत्सैना सुननी पड़ी।''

द्विवेदी जी की सफाई और व्यवस्था-प्रेम का पंडित लद्मीधर वाजपेयी ने बड़ा सुन्दर चित्र निम्न शब्दों में खींचा है—

"घर के सामने पका कुर्यां, छोटी-सी फुलवाड़ी, श्रगल-वगल में हिंदी-पाठशाला, डाकघर, श्रतिविशाला, गोशाला, सब उसी घर से मिले हुए छोटे दायरे में थे। सामने ही मैदान में एक श्रोर एक पका चवृतरा श्रीर उस पर छोटा-सा महावीर जी का मंदिर, फिर माता जी (श्राचार्य-पत्नी) का मंदिर, फिर एक बड़ा-सा गहरा तालाव ! प्रथम दर्शन में ही उस बीहड़ देहात में यह दृश्य सचमुच एक तीर्थस्थान-सा दिखाई दिया। मैं सामने ही चवृतरे पर चढ़कर पादत्राण बाहर उतार एकदम श्राचार्य के बैठके में घुस गया। श्राप एक बंडी पहने हुए, बिलकुल देहाती—वज्र गवार-से—एक छोटा-सा माड़न लिये श्राहमारियों की श्रपनी पुस्तकें पोंछ रहे थे। पुस्तकों में धूज चढ़ी हुई नहीं थी; पर श्राचार्य का यह क्रम था कि प्रतिदिन सुबह उठकर पहले सफ़ाई का काम करते श्रीर देखते थे। तमाम कमरा साफ़, सामान साफ, जहाँ का तहाँ बाक़ायदा। बाहर चबृतरा बिलकुल साफ़ माड़ा हुया!

श्राचार्य छोटा-सा भाइन लिये सिर भुकाये कितार्वे भाइ रहे थे। मैं एकदम गया, श्रीर पैर छुए। श्रापने सिर ऊपर उठाया; श्रार मेरी श्रोर श्रपनी स्वाभाविक जलदगंभीर, पर मधुर स्नेह से भरी हुई ध्विन से बेल उठे—'लघमीधर!' एक-दो छुशल प्रश्न की वातें हुई श्रीर श्राचार्थ फिर पुस्तकें पोंछने में लग गये। मैं बाहर तालाव की वरफ़ जाकर जंगल की तरफ़ इधर-उधर देखने लगा। पाँच-सात मिनट वाद श्राया तब देखता क्या हूँ कि मेरे पादत्राण जो कमरे के वाहर दरवाजे

से दूसरे भी प्रसन्न हो जाते थे, किसी की दुःख नहीं होता था। उनके साथ वातचीत करने में एक विशेष प्रकार का ऋानंद त्राता था । उनकी वातों में कुछ त्रनोखापन त्रौर त्राकर्षण रहता था। प्रायः ऋपने संभापण में वे साहित्यिक पुट भी जमाते जाते थे। व्यंग्य तो उसकी जान थी श्रौर उनका व्यंग्य सारगर्भित होता था। उनसे मिलने श्रीर वातचीत करने पर शायद ही कोई व्यक्ति ऐसा हो जिस पर कुछ प्रभाव न पड़ा हो। हैंएक वार वे ऋपने ऋाफिस में ऋपने दो-एक मित्रों के साथ वैठे थे । डाक श्राई । जो लेख श्राये उनमें कुछ लेख विलकुल रदी थे। ऐसे लेखों के सुधारने में द्विवेदी जी को वड़ा परिश्रम करना पड़ता था। त्रातः उनके एक मित्र ने टोका-न्याप ऐसे लेख स्वीकार ही क्यों करते हैं ? श्रापने मुस्कराकर उत्तर दिया—'द्वार पर त्रानेवाले का स्वागत करना हिन्दू-मात्र का धर्म है।' त्राज के संपादक उनके इस वाक्य से ऋपने 'सिद्धान्त-वाक्य' की तुलना करके देखें तो उन्हें द्विवेदी जी की महत्ता का कुछ अनुभव हो सकेगा।

एक वार द्विवेदी जी स्वर्गीय श्रीपद्मसिंह शर्मा की प्रेरणा से ज्वालापुर गये। श्राने के पहले श्रापने तार दिया— "में श्रा रहा हूँ। सवारी का प्रवंध करना। पन्द्रह वजे (तीन वजे) दिन की पहुँचूँगा (Reaching Jubbulpore manage conveyance litteen hours) तारवावू ने भूल से hour की जगह horse लिख दिया, जिसका अर्थ यह निकाला गया कि १४ घोड़े की गाड़ी का प्रवंध करो। लोग वड़े परेशान हुए। जब द्विवेदी जी ज्वालापुर पहुँचे श्रीर उन्हें वह तार दिखाया गया तव उन्होंने जाकर तारवावू से विनोदपूर्वक कहा—"वाह वावू जी! वाह! खूब किया।" वेचारा तारवावू खिसिया गया। इसी प्रकार जब द्विवेदी-मेले के श्रवसर पर

से दूसरे भी प्रसन्न हो जाते थे, किसी को दुःख नहीं होता था। उनके साथ वातचीत करने में एक विशेप प्रकार का आनंद त्राता था। उनकी वातों में कुछ त्रजनोखापन त्रौर त्राकर्षण रहता था। प्रायः अपने संभापण में वे साहित्यिक पुट भी जमाते जाते थे। व्यंग्य तो उसकी जान थी श्रौर उनका व्यंग्य सारगर्भित होता था। उनसे मिलने और वातचीत करने पर शायद ही कोई व्यक्ति ऐसा हो जिस पर कुछ प्रभाव न पड़ा हो। 🖟 एक वार वे अपने आफिस में अपने दो-एक मित्रों के साथ वैठे थे। डाक त्राई। जो लेख त्राये उनमें कुछ लेख विलकुल रदी थे। ऐसे लेखों के सुधारने में द्विवेदी जी की वड़ा परिश्रम करना पड़ता था। त्रातः उनके एक मित्र ने टोका—त्राप ऐसे लेख स्वीकार ही क्यों करते हैं ? आपने मुस्कराकर उत्तर दिया—'द्वार पर त्रानेवाले का स्वागत करना हिन्दू-मात्र का धर्म है। शत्राज के संपादक उनके इस वाक्य से ऋपने 'सिद्धान्त-वाक्य' की तुलना करके देखें तो उन्हें द्विवेदी जी की महत्ता का कुछ अनुभव हो सकेगा ।

एक वार द्विवेदी जी स्वर्गीय श्रीपद्मसिंह शर्मा की प्रेरणा से ज्वालापुर गये। आने के पहले आपने तार दिया— "में आ रहा हूँ। सवारी का प्रबंध करना। पन्द्रह वजे (तीन वजे) दिन को पहुँचूँगा (Reaching Jubbulpore manage conveyance litteen hours) तारवावू ने भूल से hour की जगह horse लिख दिया, जिसका अर्थ यह निकाला गया कि १४ घोड़े की गाड़ी का प्रबंध करो। लोग वड़े परेशान हुए। जब द्विवेदी जी ज्वालापुर पहुँचे और उन्हें यह तार दिखाया गया तब उन्होंने जाकर तारवावू से विनोदपूर्वक कहा—"वाह वावू जी! वाह! खूब किया।" वेचारा तारवावू खिसिया गया। इसी प्रकार जब द्विवेदी-मेले के अवसर पर

करते थे। द्विवेदी जी पत्र लिखने वैठते थे तव वाहर से कोई वच्चा पूछता था—

"वावा, का लिखत है ?"

"मुनिया का चिट्टी लिखत है।"

"मुत्री—कमलाकिशोर जी की वेटी—का जानत है।"—चिट्ठी लिखते-लिखते द्विवेदी जी फिर वचे को छेड़ते थे।

"हाँ।"

"मुन्नी कहाँ रहति है ?"

"्इलाहाबाद।"

"हाँ, जानत हो।"

श्रीर वच्चा उछलता-कूदता श्रपने ज्ञान पर गर्व करता चला जाता था।

दिवेदी जी अपनी धर्म-पत्नी से भी बहुत संतुष्ट थे। पूज्य माता जी में गुण् भी ऐसे ही थे। रेल की २००) की नौकरी छोड़कर जब दिवेदी जी आये तब भी सुना जाता है, उन्होंने किसी प्रकार का असंतोप न प्रकट किया; बरन सुख और संतोप के साथ यही कहा—अगर तुम मेहनत-मजदूरी करके आठ आने भी कमा लाओगे तो में उसी में संतोप कर लूँगा। इन्हें दिवेदी जी बड़ी श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे। अपनी धर्म-पत्नी की मृत्यु के समय दिवेदी जी की अवस्था अधिक नहीं थी, कान्यकुटजों में एक स्नी के होते हुए भी दूसरा विवाह कर लेने का चलन रहा है और जब पहली स्नी को कोई भयानक रोग हो और उनके संतान भी न होती हो तब तो दूसरा विवाह कर लेना कोई अनहोनी वात नहीं थी।

करते थे। द्विवेदी जी पत्र लिखने वैठते थे तव वाहर से कोई वच्चा पूछता था—

"वावा, का लिखत है ?"

"मुनिया का चिट्ठी लिखत है।"

"मुन्नी—कमलािकशोर जी की वेटी—का जानत है।"—चिट्ठी लिखते-लिखते द्विवेदी जी फिर वचे को छेड़ते थे।

"हाँ।"

"मुन्नी कहाँ रहित है ?"

"्इलाहाबाद।"

"हाँ, जानत हो।"

श्रीर वच्चा उछलता-कूदता श्रपने ज्ञान पर गर्व करता चला जाता था।

द्विवेदी जी अपनी धर्म-पत्नी से भी बहुत संतुष्ट थे। पूज्य माता जी में गुण भी ऐसे ही थे। रेल की २००) की नौकरी छोड़कर जब द्विवेदी जी आये तब भी सुना जाता है, उन्होंने किसी प्रकार का असंतोप न प्रकट किया; बरन सुख और संतोप के साथ यही कहा—अगर तुम मेहनत-मजदूरी करके आठ आने भी कमा लाओगे तो में उसी में संतोप कर लूँगा। इन्हें द्विवेदी जी बड़ी श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे। अपनी धर्म-पत्नी की मृत्यु के समय द्विवेदी जी की अवस्था अधिक नहीं थी, कान्यकुठजों में एक खी के होते हुए भी दूसरा विवाह कर लेने का चलन रहा है और जब पहली खी को कोई भयानक रोग हो और उनके संतान भी न होती हो तब तो दूसरा विवाह कर लेना कोई अनहोनी वात नहीं थी।

वात यह थी कि श्राचार्य-पत्नी के घर में उनके पड़ोस की उनकी एक सहेली चैठती-उठती थीं। दोनों में चड़ा प्रेम था। सहेली ने माता जी से कहा कि महावीर जी की पुरानी मूर्ति दरवाजे पर चुजुर्गी की स्थापित पड़ी है, इसके लिए एक पका चयूतरा यन जाता तो अच्छा था। माता जी ने उस सहेती की सलाह से चबूतरा वनवा दिया और महावीर जी के लिए वहीं एक मठिया भी। इसी पर आज उन्होंने हँसी में अपने पतिदेव से अचानक कह दिया ! उनका क्या मालूम था कि यह महावीर उनकी कितना पूजते हैं! महावीर के ऊपर भी दीवार में द्विवेदी जी के रचे हुए श्लोक खचित हैं, जिनमें माता जी ज्योर उनकी सहेली की प्रशस्ति है।

हिवेदी जी अपनी माता जी पर भी वड़ी भक्ति रखते थे। यह बात हमें श्रीपरमानंद चतुर्वेदी नामक एक सज्जन के द्विवेदी जी का लिखे हुए एक पत्र से माल्म हुई है। पत्र ११ मार्च १६०न की लिखा गया था। पत्र इस प्रकार है-

''द्विवेदी जी महाराज,

नमस्कार-धान भट्ट गिरिधरलाल ली सुभसे मिलने धाये थे। उन्होंने आपके अगमेर जाने का ज़िक किया था और उनकी वातों से यह भी पाया गया कि आपकी अपनी माता जी की तरफ़ अधिक भक्ति है।

१९ सार्च, १६०८ परमानंद चतुर्वेदी।"

गुण-ब्राहकता द्विवेदी जी में एक ब्यौर गुण था / यह था अनकी गुण-ब्राहकता। संपादक हो जाने पर कुछ लोग "हमचुनी दीगरे

वात यह थी कि श्राचार्य-पत्नी के घर में उनके पड़ोस की उनकी एक सहेली चेठती-उठती थीं। दोनों में चड़ा प्रेम था। सहेली ने माता जी से कहा कि महावीर जी की पुरानी मूर्ति दरवाजे पर चुजुगों की स्थापित पड़ी है, इसके लिए एक पका चवूतरा चन जाता तो श्रच्छा था। माता जी ने उस सहेली की सलाह से चवूतरा चनवा दिया श्रीर महावीर जी के लिए वहीं एक मठिया भी। इसी पर श्राज उन्होंने हँसी में श्रपने पितदेव से श्रचानक कह दिया! उनके क्या मालूम था कि यह महावीर उनके कितना पूजते हैं! महावीर के ऊपर भी दीवार में द्विवेदी जी के रचे हुए रलोक खचित हैं, जितमें माता जी श्रोर उनकी सहेली की प्रशस्ति है।

हिने दी जी अपनी माता जी पर भी वड़ी भक्ति रखते थे। यह बात हमें श्रीपरमानंद चतुर्वेदी नामक एक सज्जन के द्विवेदी जी को लिखे हुए एक पत्र से माल्म हुई है। पत्र ११ मार्च १६०० को लिखा गया था। पत्र इस प्रकार है—

"हिवेदी जी महाराज,

नमस्कार—धान भट्ट गिरिधरलाल जी मुक्त मिलने धायेथे। उन्होंने खापके खनमेर जाने का ज़िक किया था धौर उनकी वातों से यह भी पाया गया कि धापकी धपनी माता जी की तरफ धिक भक्ति है।

११ मार्च, १६०८ परमानंद चतुर्वेदी।"

गुगा-त्राहकता / विवेदी जी में एक और गुगा था । यह था उनकी गुगा-त्राहकता । संपादक हो जाने पर कुन्न लोग "हमचुनी दीगरे हाती थीं, उनका परिचय, बड़ी विशदता से, 'सरस्वती' में प्रका-शित किया जाता था और अनेक साधुवाद-धन्यवाद देकर लेखक का आदर किया जाता था। नये विषयों की कई पुस्तकों की आलोचना 'सरस्वती' में निकली थी; पर प्रचलित विषयों की खोज करके लिखनेवाले अधिक नहीं थे। मेरा आशय हिंदी-वालों से हैं। हिंदी-भाषा-भाषी, लाख अनुनय-विनय करने पर भी इस ओर ध्यान न देते थे। हाँ, मराठी, वँगला के लेखक अवश्य प्रयत्नशील थे। द्विवेदी जी उनसे ही आशा रखते थे और बड़ी श्रद्धा से उनका नाम लिया करते थे। सुप्रसिद्ध मराठी-लेखक और प्रथकार रायवहादुर चिंतामिण विनायक वैद्य, एम० ए०, एल-एल० वी० के मराठी में लिखे हुए अवलोन्नित-लेख-माला के लेखों से प्रभावित होकर द्विवेदी जी ने लिखा था—

''उन्हें (श्रवलोचित-लेखमाला के लेख) पहकर हमारे हृदय में लेखक महाशय के विषय में श्रद्धा का श्रंकर उग श्राया। उनके श्रन्थान्य ग्रंथ श्रोर लेख पढ़ते-पढ़ते वह श्रंकर वढ़कर विशाल बृच हो गया। महाभारत-विषयक उनका ग्रंथ पढ़कर हमने बहुत श्रिषक लाभ उठाया। इस ग्रंथ में वैद्य महाशय ने महाभारत से संबंध रखनेवाले प्राय: सभी विषयों का जिस योग्यता से विचार किया है श्रोर उनकी तुलनामूलक श्रालोचना करने में उन्होंने लिस बुद्धि-दाचिष्य श्रोर सदसाहवेचना का परिचय दिया है, उसकी वार-बार प्रशंसा करने को जी चाहता है।"

हिंदी-हितैपियों और सेवकों के विषय में उनका यह आदर-भाव और भी वढ़ा-चढ़ा था। यह स्वाभाविक था और उनकी प्रशंसा में तिखे हुए विचार उनके हृद्य से निकते हुए होते थे। इसका एक उदाहरण आज से ३५ वर्ष पहले का है। 'सरस्वती' के संपादक होने के पहले ही वाबू श्यामसुन्दरदास की हिंदी- होती थीं, उनका परिचय, बड़ी विशदता से, 'सरस्वती' में प्रका-शित किया जाता था और अनेक साधुवाद-धन्यवाद देकर लेखक का आदर किया जाता था। नये विषयों की कई पुस्तकों की आलोचना 'सरस्वती' में निकली थी; पर प्रचलित विषयों की खोज करके लिखनेवाले अधिक नहीं थे। मेरा आशय हिंदी-चालों से हैं। हिंदी-भाषा-भाषी, लाख अनुनय-विनय करने पर भी इस और ध्यान न देते थे। हाँ, मराठी, वँगला के लेखक अवश्य प्रयत्नशील थे। द्विवेदी जी उनसे ही आशा रखते थे और बड़ी श्रद्धा से उनका नाम लिया करते थे। सुप्रसिद्ध मराठी-लेखक और प्रथकार रायबहादुर चिंतामणि विनायक वैद्य, एम० ए०, एल-एल० वी० के मराठी में लिखे हुए अवलोन्नित-लेख-माला के लेखों से प्रभावित होकर द्विवेदी जी ने लिखा था—

"उन्हें (श्रवलोन्नति-लेखमाला के लेख) पढ़कर हमारे हृदय
में लेखक महाशय के विषय में श्रद्धा का श्रंकुर उग श्राया। उनके
श्रन्यान्य ग्रंथ श्रीर लेख पढ़ते-पढ़ते वह श्रंकुर वढ़कर विशाल वृत्त
हो गया। महाभारत-विषयक उनका ग्रंथ पढ़कर हमने वहुत श्रिषक
लाभ उठाया। इस ग्रंथ में वैद्य महाशय ने महाभारत से संवंध
रखनेवाले प्रायः सभी विषयों का जिस योग्यता से विचार किया है
श्रीर उनकी तुलनामूलक श्रालोचना करने में उन्होंने जिस बुद्धिदान्तिण्य श्रीर सद्साह्वेचना का परिचय दिया है, उसकी वार-बार
प्रशंसा करने की जी चाहता है।"

हिंदी-हितैपियों और सेवकों के विपय में उनका यह आदर-भाव और भी वढ़ा-चढ़ा था। यह स्वाभाविक था और उनकी प्रशंसा में लिखे हुए विचार उनके हृदय से निकले हुए होते थे। इसका एक उदाहरण आज से ३५ वर्ष पहले का है। 'सरस्वती' के संपादक होने के पहले ही वावू श्यामसुन्दरदास की हिंदी- जन्म देकर इस विषय में पथ-प्रदर्शक न वनती तो शायद बहुत दिनों तक वैसी पत्रिकाओं के दर्शन ने होते। मेरी मंद बुद्धि तो यही कहती है कि नागरी-लिपि के प्रचार और हिंदी-भाषा के साहित्य के उद्धार के लिए इस सभा ने जिलना काम किया है, उतना काम न तो किसी अन्य संस्था ने ही किया और न अने क साहित्य-सेवियों ने सम्मिलित रूप से ही किया। इसके उद्योग से बना हुआ हिंदी-भाषा का कोप श्रीर ज्याकरण बड़े ही महरवपूर्ण अंय हैं। यदि यह इंस श्रीर दत्तवित्त न होती तो शायद हिंदी-साहित्य के ये दोनों श्रंग श्रपनी उन्नतावस्था में अब तक देखने ही के। न मिलते।"

ये वाक्य उसी सभा की प्रशंसी की लिखे गये हैं जिसके कार्यों की कटु त्रालोचना उन्होंने १६०५ में की थी। उस समय समा की स्थिति भी कुछ वैसी ही थी; परंतु इस बार स्वयं द्विवेदी जी ने आगे चल कर कहा है-

''म्राप बनावट न समिमए, मैं शुद्ध हृदय से इस बात की स्वीकार करता हूँ कि मैं इस समा का अत्यन्त कृतज्ञ हूँ। इसे तो मैं श्रपनी गुरुखानीय ही नहीं, अनदात्री तक समक्तने की तैयार हूँ। यदि इस सभा .के कुछ प्रमुख कार्यकर्ता इचिडयन प्रेस से 'सरस्वती' का प्रकाशन न कराते तो में हिंदी लिखने स्रोर उसके साहित्य की थोड़ी-बहुत चेष्टा करने में कदापि समर्थ न होता। यह इस सभा का ही प्रभाव, प्रसाद या प्रताप है, जो मैं खाज एक विशेष निमित्त की पूर्ति के लिए काशी में उपस्थित हुआ हूँ। " " "

ये हैं गुण-प्राहक द्विवेदी जी के सचे हृदयोद्गार । इन वाक्यों पर ग़ौर करने से यह भी पता चल जायगा कि सभापति के त्रासन से शिष्टाचार और सज्जनता की रत्ता के लिए ही ये प्रशंसात्मक वाक्य नहीं लिखे गये हैं।

फा० ५६

जन्म देकर इस विषय में पथ-प्रदर्शक न बनती तो शायद बहुत दिनों तक वैसी पित्रकाओं के दर्शन न होते। मेरी मंद बुद्धि तो यही कहती है कि नागरी-लिपि के प्रचार और हिंदी-भाषा के साहित्य के उद्धार के लिए इस सभा ने जितना काम किया है, उतना काम न तो किसी अन्य संस्था ने ही किया और न अनेक साहित्य सेवियों ने सम्मिलित रूप से ही किया। इसके उद्योग से बना हुआ हिंदी-भाषा का कोप और ब्याकरण बड़े ही महत्त्वपूर्ण अंथ हैं। यदि यह इस ओर दत्तित्त न होती तो शायद हिंदी-साहित्य के ये दोनों अंग अपनी उन्नतावस्था में अब तक देखने ही की न मिलते।"

ये वाक्य उसी सभा की प्रशंसा की लिखे गये हैं जिसके कार्यों की कहु आलोचना उन्होंने १६०५ में की थी। उस समय सभा की स्थिति भी कुछ वैसी ही थी; परंतु इस वार स्वयं द्विवेदी जी ने आगे चल कर कहा है—

"श्राप बनावट न समिन्द, मैं शुद्ध हृदय से इस बात को स्वीकार करता हूँ िक मैं इस सभा का श्रत्यन्त कृतज्ञ हूँ। इसे तो मैं श्रपनी गुरुस्थानीय हो नहीं, श्रवदात्री तक सममने का तैयार हूँ। यदि इस सभा के कुछ प्रमुख कार्यकर्ता इण्डियन प्रेस से 'सरस्वती' का प्रकाशन न कराते तो मैं हिंदी खिखने श्रीर उसके साहित्य की थोड़ी-बहुत चेष्टा करने में कदापि समर्थ न होता। यह इस सभा का ही प्रभाव, प्रसाद या प्रताप है, जो मैं श्राज एक विशेष निमित्त की पूर्ति के लिए काशी में उपस्थित हुशा हूँ।"

ये हैं गुण-प्राहक द्विवेदी जी के सबे हृदयोद्गार। इन वाक्यों पर ग़ौर करने से यह भी पता चल जायगा कि सभापित के आसन से शिष्टाचार और सज्जनता की रत्ता के लिए ही ये प्रशंसात्मक वाक्य नहीं लिखे गये हैं। ्ह्दमेव हि पाणिडत्यसियमेव विदग्धता। श्रयमेव परो धर्मो यदायात्राधिको व्ययः॥

अर्थात—जो प्राप्ति से अधिक व्यय नहीं होने देता वही पंडित है, वही चतुर है श्रीर वही धर्मात्मा भी है। मितन्ययिता का गुरण होते हुए भी वे अपने संबंधियों तथा और लोगों को यथावसर त्रार्थिक सहायता देते रहे। त्राँगरेजी में एक कहावत E-Liberality does not consist in giving much but in giving at the right moment. अर्थोत् बहुत देने से ही उदारता नहीं होती, विल्क आवश्यकता के समय . पर देने से दानशीलता समभी जाती है। द्विवेदी जी की उदारता भी ठीक इसी प्रकार की थी। अपने गाँव में, लड़िकयों की शादी में, गरीव व छोटी जाति के मनुष्यों की दीनावस्था में, और विधवा स्त्रियों के संकट-समय में, वे सदा सहायता देते रहे। दूसरी त्रोर काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा को त्रपना प्राणों से भी प्रिय ग्रंथ-भंडार दान दे दिया । उसमें 'सरस्वती' की पुरानी कापी, शुरू से आज तक का समस्त पत्र-व्यवहार और अख्वारों क़ी कतरनों के बंडल हैं। यंथों से आठ अलमारियाँ भरी हैं त्र्योर वंडलों से दो। इन सव वंडलों की छान-वीन करने के लिए नियमित रूप से ६ महीने की आवश्यकता है।

श्रात्माभिमान

जो नवयुत्रक साहित्य-सेवी स्त्राभिमान और आत्मसम्मान के साथ जिंदगी वसर करना चाहते हों वे द्विवेदी जी से इस विषय में भी अनेक वातें सीख सकते हैं। यह वात वहत-से पाठकों को न माल्प्स होगी कि द्विवेदी जी ने २००) की नौकरी छोड़कर २३) की नौकरी की थी। रेलवे ट्रेफिक-विभाग में वे

्ड्दमेव हि पाणिडत्यमियमेव विदग्धता। प्रथमेव परो धर्मो यदायाद्याधिको व्ययः॥

अर्थात्—जो प्राप्ति से अधिक व्यय नहीं होने देता वही पंडित है, वही चतुर है श्रोर वही धर्मात्मा भी है। मितव्ययिता का गुरण होते हुए भी वे अपने संबंधियों तथा और लोगों को यथावसर आर्थिक सहायता देते रहे। अँगरेजी में एक कहावत है—Liberality does not consist in giving much but in giving at the right moment. अर्थोत् बहुत देने से ही उदारता नहीं होती, वल्कि आवश्यकता के समय पर देने से दानशीलता समभी जाती है। द्विवेदी जी की उदारता भी ठीक इसी प्रकार की थी। अपने गाँव में, लड़कियों की शादी में, ग्रीव व छोटी जाति के मनुष्यों की दीनावस्था में, श्रीर विधवा स्त्रियों के संकट-समय में, वे सदा सहायता देतें रहे। दूसरी स्रोर काशी-नागरी-प्रचारिगी सभा को अपना प्राणों से भी प्रिय यंथ-भंडार दान दे दिया। उसमें 'सरस्वती' की पुरानी कापी, शुरू से त्राज तक का समस्त पत्र-व्यवहार त्रौर ऋख्वारों क़ी कतरनों के वंडल हैं। यंथों से त्राठ त्रलमारियाँ भरी हैं त्र्योर वंडलों से दो। इन सव वंडलों की छान-वीन करने के लिए नियमित रूप से ६ महीने की त्रावश्यकता है।

श्रात्माभिमान

जो नवयुवक साहित्य-सेवी स्वाभिमान श्रीर श्रात्मसम्मान के साथ जिंदगी वसर करना चाहते हों वे द्विवेदी जी से इस विषय में भी श्रनेक वातें सीख सकते हैं। यह वात वहत-से पाठकों को न मालूम होगी कि द्विवेदी जी ने २००) की नौकरी छोड़कर २३) की नौकरी की थी। रेलवे ट्रेफिक-विभाग में वे

gentleman and I must warn you against your having recourse to such language in future; should you have occasion to write to me again."

इसी प्रकार एक दूसरे महाशय के लेख की अपमान-सूचक सममकर इन्होंने मानहानि का दावा दायर करने का नोटिस दिया था। इसकी कथा इस प्रकार है—

सितंबर सन् १६०८ की 'सरस्वती' के पृष्ठ ४१४ पर 'ऋार्य शब्द की ब्युत्पत्ति'-शीर्पक एक लेख छपा था। वह बँगला 'प्रवासी' में प्रकाशित श्री महेशचन्द्र घोप के एक लेख के आधार पर लिखा गया था। उसी लेख के संबंध में १६ नवम्बर, १६०८ के 'आर्य-िमत्र' में परिडत नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ ने एक त्रालोचनात्मक लेख लिखा था: किंतु इसके पहले ही २४ सितम्बर और १ अक्टूबर १६०८ के 'आर्थ-मित्र' में क्रमशः एक लेख छपा था। उस लेख का शीर्षक था, 'सरस्वती में आर्य'। उसके लेखक थे कोई मथुरा-निवासी वी० एन्० शर्मा। वह लेख व्यक्तिगत आद्तेपों से भरा हुआ था। उसी पर द्विवेदी जी ने वीस हजार का मानहानि का दावा करने का नोटिस दिया था। वह नोटिस २४ अक्टूबर १६०८ के 'त्रार्य-िमत्र' में संपादकीय मंतव्य के साथ छपा था। हिंदी के यशस्त्री कवि स्त्रीर कानपुर के प्रतिष्ठित वकील राय देनीप्रसाद 'पूर्ण' ने द्विवेदी जी की श्रीर से नोटिस दिया था। फलस्वरूप उक्त बी० एन्० शर्मा ने २४ सितम्बर १६०६ के 'आर्य-मित्र' में अपना चमापत्र प्रकाशित किया। उस चमापार्थना के नीचे 'आर्य-िमत्र' के प्रिंटर (बावूराम शर्मा, भूतपूर्व सम्पादक) और पव्लिशर (कपूरचंद) का दुःख प्रकाश बड़े-बड़े अन्तरों में छपा था। इस न्नमाप्रार्थना, के संबंध में २७ फरवरी १६१० के gentleman and I must warn you against your having recourse to such language in future, should you have occasion to write to me again."

इसी प्रकार एक दूसरे महाशय के लेख की अपमान-सूचक सममकर उन्होंने मानहानि का दावा दायर करने का नोटिस दिया था। इसकी कथा इस प्रकार है—

सितंबर सन् १६०८ की 'सरस्वती' के पृष्ठ ४१४ पर 'त्रार्य शब्द की ब्युत्पत्ति'-शीर्पक एक लेख छपा था। वह बँगला 'प्रवासी' में प्रकाशित श्री महेशचन्द्र घोप के एक लेख के त्राधार पर लिखा गया था। उसी लेख के संबंध में १६ नवम्बर, १६०८ के 'आर्य-मित्र' में परिडत नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ ने एक आलोचनात्मक लेख लिखा था; किंतु इसके पहले ही २४ सितम्बर और १ अक्टूबर १६०८ के 'आर्य-मित्र' में क्रमशः एक लेख छपा था। उस लेख का शीर्षक था, 'सरस्वती में त्रार्य'। उसके लेखक थे कोई मथुरा-निवासी वी० एन्० शर्मा। वह लेख व्यक्तिगत आन्तेषों से भरा हुआ था। उसी पर द्विवेदी जी ने वीस हजार का मानहानि का दावा करने का नोटिस दिया था। वह नोटिस २४ ऋक्टूबर १६०८ के 'त्रार्य-मित्र' में संपादकीय मंतव्य के साथ छपा था। हिंदी के यशस्त्री कवि और कानपुर के प्रतिष्ठित वकील राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' ने द्विवेदी जी की श्रोर से नोटिस दिया था। फलस्वरूप उक्त बी० एन्० शर्मा ने २४ सितम्बर १६०६ के 'त्रार्य-मित्र' में अपना ज्ञमापत्र प्रकाशित किया। उस ज्ञमाप्रार्थना के नीचे 'आर्य-मित्र' के प्रिंटर (वावूराम शर्मा, भूतपूर्व सम्पादक) और पिन्तरार (कपूरचंद) का दुःख प्रकाश वड़े-वड़े अत्तरों में छपा था। इस त्रमाप्रार्थना के संबंध में २७ फरवरी १६१० के

रही और उसो ने हिंदी-साहित्य-संसार में उनका एकच्छत्र राज्य स्थापित कर दिया। सत्य, स्पष्टता ऋौर निर्भीकता का निरंतर अनुसरण करने के कारण ही आज हिंदी-साहित्य-त्तेत्र में उनका यशःसौरभ फैल रहा है। वास्तव में जीवन की सचाई ही सदैव उनका ध्येय रही है ऋौर सांसारिक शिष्टाचार तथा कृत्रिमता से दूर रहने की वे सदा चेष्टा करते रहे हैं। किसी से दबकर वे कमी वात ही नहीं करते थे। कारण, स्वार्थवश होकर या अन्य किसी लाभ की आशा से वे कभी कोई ऐसा काम ही नहीं करते थे कि उन्हें दूसरों से दवना पड़े। यों वे वाद-विवाद से भी दूर ही रहना पसन्द करते रहे, परन्तु जब-जब वे विवश किये गये—बाद-विवाद में पड़ने के लिए लल-कारे गये, तव उन्होंने पेर पीछे नहीं रक्खा। उनकी इस निर्भीकता तथा स्वाभिमान का पता हमें वाबू वालमुकुन्द गुप्त, वाबू श्यामसुन्दरदास, मिश्रवन्धु, ला० भगवानदीन त्र्यादि सं होनेवाले साहित्यिक वाद-विवादों से लगता है। अपने मित्रों के प्रति भी उनका व्यवहार निष्कपट रहा है। मन में जो रहता था, वही वे मुख से भी कहते थे। कृत्रिमता से उन्हें घृणा थी। इससे लोग प्रायः असंतुष्ट हो जाते थे, उनको घमंडी कहा करते थे। द्विवेदी जी ने ऐसे व्यक्तियों की कभी परवा ही नहीं की। जिस वात के। वे जैसा सममते थे, कौरन कह डालते थे। मई १६०४ की 'सरस्वती' में उन्होंने राजा रामपालसिंह का जीवनचरित प्रकाशित किया था। उसमें उन्होंने धनी-मानी पुरुषों पर ऋार्त्तेप करते हुए अपनी स्पष्टबादिता का परिचय दिया था। उसमें द्विवेदी जी ने लिखा था-

"हम देखते हैं कि हिंदी-भाषा-भाषी अनेक चढ़े-चढ़े राजा श्रीर धनी लोग इस देश में हैं, परंतु देशहित श्रीर स्वभावीत्कर्ष के निमित्त

रही और उसी ने हिंदी-साहित्य-संसार में उनका एकच्छत्र राज्य स्थापित कर दिया। सत्य, स्पष्टता ख्रौर निर्भीकता का निरंतर अनुसरण करने के कारण ही आज हिंदी-साहित्य-चेत्र में उनका यशःसौरभ फैल रहा है। वास्तव में जीवन की सचाई ही सदैव उनका ध्येय रही है श्रीर सांसारिक शिष्टाचार तथा कृत्रिमता से दूर रहने की वे सदा चेष्टा करते रहे हैं। किसी से दवकर वे कभी वात ही नहीं करते थे। कारण, स्वार्थवश होकर या अन्य किसी लाभ की आशा से वे कभी कोई ऐसा काम ही नहीं करते थे कि उन्हें दूसरों से द्वना पड़े। यों वे वाद-विवाद से भी दूर ही रहना पसन्द करते रहे, परन्तु जव-जव वे विवश किये गये-वाद-विवाद में पड़ने के लिए लल-कारे गये, तब उन्होंने पैर पीछे नहीं रक्खा। उनकी इस निर्भीकता तथा स्वाभिमान का पता हमें वावू वालमुकुन्द गुप्त, वावू श्यामसुन्दरदास, मिश्रवन्ध्र, ला० भगवानदीन त्र्यादि से होनेवाले साहित्यिक वाद-विवादों से लगता है। अपने मित्रों के प्रति भी उनका व्यवहार निष्कपट रहा है। मन में जो रहता था, वही वे मुख से भी कहते थे। कृत्रिमता से उन्हें घृणा थी। इससे लोग प्रायः असंतुष्ट हो जाते थे, उनको घमंडी कहा करते थे। द्विवेदी जी ने ऐसे व्यक्तियों की कभी परवा ही नहीं की। जिस वात के। वे जैसा सममते थे, फौरन कह डालते थे। मई १६०४ की 'सरस्वती' में उन्होंने राजा रामपालसिंह का जीवनचरित प्रकाशित किया था। उसमें उन्होंने धनी-मानी पुरुषों पर आर्रोप करते हुए अपनी स्पष्टवादिता का परिचय दिया था। उसमें द्विवेदी जी ने लिखा था-

"हम देखते हैं कि हिंदी-भाषा-भाषी अनेक बढ़े-बढ़े राजा श्रीर धनी लोग इस देश में हैं, परंतु देशहित श्रीर स्वभावीत्कर्प के निमित्त समुचित प्रकाश पड़ता है। द्विवेदी जी ने इस नोट का शीर्पक दिया था—'त्रार्थसमाज का कोप।' इसे उन्होंने यों शुरू किया था—

''आर्य-अन्यकारों से सविनय निवेदन है कि वे अपनी लिखी पुस्तकों के। 'सरस्वती'-संपादक पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी के पास समाजोचनार्थ कदापि न मेजा करें। पचपात के विना न्यायपूर्वक पुस्तक के गुण-दोप-वर्णन करना प्रत्येक समाजोचक का प्रधान कर्तव्य होना चाहिए। परंतु खेद है कि द्विवेदी जी इस बात के। कभी-कभी बिलकुल भूल जाते हैं। आर्यसमाज के ऊपर तो उनके कोध की मात्रा दिन-प्रतिदिन बढ़ती जाती है। अभी हाल में आपने एक पुस्तक की समाजोचना करते हुए श्रीस्वामी दयानंद सरस्वती के गुरु महर्षि विरज्ञानंद जी प्रज्ञाचन्न के उपर गंदे शब्दों की बौज़ार करके अपनी महाबीरता का प्रचंड परिचय दे डाला है। ऐसी दशा में हमारी सम्मति है कि कोई आर्य-ग्रंथकार अपनी पुस्तकों को वहाँ न मेजें।''

श्रार्थ-प्रतिनिधि-सभा.) संयुक्तपांत, बुलंदशहर } ता० ६—१०—१४ —विनीत मदनमोहन सेठ, एम० ए०, एत-एत० बी०, मंत्री सभा

इस विज्ञप्ति को प्रकाशित करके उन्होंने दो नोट दिये। वे इस प्रकार हैं—

- (१) मंत्री महाशय ने सरस्वती पर यह अपराध लगाया है कि उसमें पुस्तकों की समालोचना पत्तपात-रहित नहीं होती। मंत्री जी हमें जमा करें, उनका यह धारोप सर्वया निर्मूल अतएव मिथ्या है।
- (२) जो बात आज तक किसी को न स्की थी, वह आर्य-प्रतिनिधि-सभा के मंत्री को स्की है। हिंदू-धर्म पर आघात पर

समुचित प्रकाश पड़ता है। द्विवेदी जी ने इस नोट का शीर्षक दिया था—'आर्यसमाज का कोप।' इसे उन्होंने यों शुरू किया था—

'श्रार्य-त्रन्थकारों से सिवनय निवेदन है कि वे अपनी लिखी पुस्तकों को 'सरस्वती'-संपादक पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी के पास समालोचनार्थ कदापि न भेजा करें। पचपात के विना न्यायपूर्वक पुस्तक के गुण-दोप-वर्णन करना प्रत्येक समालोचक का प्रधान कर्तव्य होना चाहिए। परंतु खेद है कि द्विवेदी जी इस बात को कभी-कभी बिलकुल भूल जाते हैं। आर्यसमाज के ऊपर तो उनके क्रोध की मात्रा दिन-प्रतिदिन बढ़ती जाती है। अभी हाल में आपने एक पुस्तक की समालोचना करते हुए श्रीस्वामी दयानंद सरस्वती के गुरु महर्षि विरज्ञानंद जी प्रज्ञाचन्न के उपर गंदे शब्दों की बौद्धार करके अपनी महावीरता का प्रचंड परिचय दे डाला है। ऐसी दशा में हमारी सम्मति है कि कोई आर्य-अंथकार अपनी पुस्तकों को वहाँ न भेजें।''

श्रार्य-प्रतिनिधि-सभा.) संयुक्तपांत, बुलंदशहर } ता० ६—१०—१४ —विनीत मदनमोहन सेठ, पुम० ए०, एतःपुत्त० वी०, मंत्री सभा

इस विज्ञप्ति की प्रकाशित करके उन्होंने दो नोट दिये। वे इस प्रकार हैं--

- (१) मंत्री महाशय ने सरस्वती पर यह अपराध लगाया है कि उसमें पुस्तकों की समालोचना पचपात-रहित नहीं होती। मंत्री जी हमें चमा करें, उनका यह आरोप सर्वया निर्मूत अतएव मिध्या है।
 - (२) जो बात आज तक किसी को न स्मीथी, वह आर्य-प्रतिनिधि-सभा के मंत्री को स्मी है। हिंदू-धर्म पर आवात पर

नाम देकर बी० सिंह नाम के एक महाशय ने आगरे से एक प्रोस्टकार्ड उर्दू में उनके पास भेजा। उसमें अनेक दुर्वचनों और अभिशापों के अनन्तर इस बात पर दुःख प्रकट किया गया था कि राज्य अँगरेजी हैं, अन्यथा तुम्हारा (द्विवेदी जी का) सिर थड़ से अलग कर दिया जाता। एक दूसरे ने उन्हें लिखा कि— "आंपकी सेवा में आर्थ-विद्यार्थी-सभा, अजमेर, के निम्नालिखत प्रस्ताव की प्रतिलिप सूचनार्थ भेजी जाती है--

प्रस्ताव

यह सभा एक स्वरं से (Unanimously) महावीरप्रसाद जी दिवेदो पर निंदा का प्रस्ताव करती है, क्योंकि उन्होंने 'सरस्वती' में महिर्पि विरजानंद जी के लिए अपमानसूचक शब्दों का प्रयोग किया है, धीर संपादक जी की यह नेक सलाह देती है कि वे शीष्र ही 'सरस्वती' के आगामी शंक में अपने किये पर परचात्राप प्रकट करें।

भवदीय

— चाँदकरण शारदा वी॰ ए॰, एल्-५ल्॰ वी॰ प्रधान श्रार्यं-विद्यार्थी सभा, धनमेर '

द्विवेदी जी ने वी० सिंह महाशय के लिए लिखा—

"भाई सिंह दुःख मत करे। आर्यसमाज की धर्मोन्निति होती हो तो —

"कर कुठार धागे यह शीशा"

जिन लोगों का यह हाल है उनके विषय में परमेश्वर से हमारी शार्थना है—

येषां चेतसि मोह-मस्तर-मद-भ्रान्तिः समुज्जृम्भते सेऽप्येते दयया दयाधन विभा संतारगीयास्त्वया ॥ नाम देकर बी० सिंह नाम के एक महाशंय ने आगरे से एक प्रोस्टकार्ड उर्दू में उनके पास भेजा। उसमें अनेक दुर्वचनों और अभिशापों के अनन्तर इस बात पर दु:ख प्रकट किया गया था कि राज्य अँगरेजी हैं, अन्यथा तुम्हारा (द्विवेदी जी का) सिर धड़ से अलग कर दिया जाता। एक दूसरे ने उन्हें लिखा कि— "आंपकी सेवा में आर्य-विद्यार्थी-सभा, अजमेर, के निम्नलिखित प्रस्ताव की प्रतिलिपि सूचनार्थ भेजी जाती है—

प्रस्ताव

यह सभा एक स्वरं से (Unanimously) महावीरप्रसाद जी दिवेदो पर निंदा का प्रस्ताव करती है, क्योंकि उन्होंने 'सरस्वती' में महर्पि विरजानंद जी के लिए अपमानस्चक शब्दों का प्रयोग किया है, श्रोर संपादक जी को यह नेक सलाह देती है कि वे शीघ ही 'सरस्वती' के आगामी शंक में अपने किये पर परचात्ताप प्रकट करें।

भवदीय

—चाँदकरण शारदा वी० ए०, एल्-एल्० वी० प्रधान श्रार्थ-विद्यार्थी सभा, धनमेर '

द्विवेदी जी ने वी० सिंह महाशय के लिए लिखा-

"भाई सिंह दुःख मत करे। आर्यसमाज की धर्मोन्नति होती हो तो —

"कर कुठार श्रागे यह शीशा"

जिन लोगों का यह हाल है उनके विषय में परमेश्वर से हमारी शार्थना है—

येषां चेतसि मोह-मत्तर-मद-भ्रान्तिः समुज्जृभ्भते तेऽप्येते दयया दयाधन विभा संतारगीयास्त्वया ॥ आचार्य द्विवेदी जी का स्वभाव इतना सरल और सरस था कि उनके लिए यह कहा जा सकता है कि वे करुणा के साज्ञात अवतार थे—करुणा के परमाणुओं से वने थे। उनके सामने—

"मो सम कौन कुटिल खल कामी ?"

पढ़ने पर उनकी आँखों से टपाटप आँसुओं की मड़ी लग जाती थी। यदि आपने कहीं ऐसे दो-एक पद पढ़ दिये, तो वस वे मूच्छित होकर गिर जाते थे। यह स्वभाव उनका बुढ़ापे के कारण नहीं, भरी जवानी में भी उनकी यही दशा थी। चरखारी के राजा जुमारसिंह जी द्विवेदी जी के वड़े भक्त थे और शायद संगीत-प्रेमी भी । एक वार राजा साहव के यहाँ संगीत-मंडली थी। द्विवेदी जी उसमें नहीं पधारे; क्योंकि वहाँ पर सवासुहागिन भी विराजमान थी। आग्रह करने पर गये तव "मा सम कौन कुटिल खल कामी" गवाया । सुनकर स्वयं मूर्च्छित होकर गिर पड़े। 'विछुड़ गई जोड़ी, जोड़ी मारे रामा" जैसे स्त्रियों के गीत सुनकर भी द्विवेदी जी को मूच्छा आ जाती थी। तुलसी और अन्य कवियों के करुए-रस के पदों को पढ़ते ही द्विवेदी जी को रोमांच हो जाता था और ऋाँसों से जलधारा वहने लगती थी। शायद भावावेश में गलकर उनका हृदय त्राँसुत्रों के रूप में निकल सकता था 🕸 । निम्नलिखित पंक्तियाँ उन्हें बहुत प्रिय थीं । प्रायः वे इन्हें गाया करते थे-

> भागीरथी हम दोप भरे की भरोस यही कि परोस तिहारे।

द्विवेदी जी के चित्र को देखिए। उसमें आपका ध्यान उनके उन्नत ललाट और घनी भौंहों की ओर विशेष रूप से जायगा।

[•] स्वा (४—१—० वृष्ठ : २४)

श्राचार्य द्विवेदी जी का स्वभाव इतना सरल और सरस था कि उनके लिए यह कहा जा सकता है कि वे करुणा के साज्ञात अवतार थे—करुणा के परमाणुश्रों से वने थे। उनके सामने—

"मो सम कौन कुटिल खल कामी ?"

पढ़ने पर उनकी आँखों से टपाटप आँसुओं की कड़ी लग जाती थी। यदि आपने कहीं ऐसे दो-एक पर पढ़ दिये, तो वस वे मूच्छित होकर गिर जाते थे। यह खभाव उनका बुढ़ापे के कारण नहीं, भरी जवानी में भी उनकी यही दशा थी। चरखारी के राजा जुभारसिंह जी द्विवेदी जी के वड़े भक्त थे श्रीर शायद संगीत-प्रेमी भी। एक वार राजा साहव के यहाँ संगीत-मंडली थी। द्विवेदी जी उसमें नहीं पधारे; क्योंकि वहाँ पर सदासुहागिन भी विराजमान थी। आग्रह करने पर गये तव "मा सम कौन कुटिल खल कामी" गवाया । सुनकर स्वयं मूर्च्छित होकर गिर पड़े । 'विछुड़ गई जोड़ी, जोड़ी मारे रामा" जैसे स्त्रियों के गीत सुनकर भी दिवेदी जी को मूच्छी आ जाती थी। तुलसी और ज्ञन्य कवियों के करुए-रस के पदों को पढ़ते ही द्विवेदी जी को रोमांच हो जाता था ख्रौर झाँखों से जलधारा वहने लगती थी। शायद भावावेश में गलकर उनका हृदय श्राँसुश्रों के रूप में निकत सकता था अ। निम्नलिखित पंक्तियाँ उन्हें बहुत प्रिय थीं। प्रायः वे इन्हें गाया करते थे-

> भागीरथी हम दोप भरे के। भरोस यही कि परोस तिहारे।

द्विवेदी जी के चित्र को देखिए। उसमें आपका ध्यान उनके उन्नत ललाट और धनी भौंहों की ओर विशेष रूप से जायगा।

[•] स्वा (९-१--२ पृष्ठ : २४)

चेहरे और लम्बे डील-डौल के अंदर एक सहानुभूति-पूर्ण, करुणाई और कोमल हृदय छिपा हुआ है। वास्तव में वे सच प्रेम और भाव के भूखे थे। उनके समान पर-दु:ख-कातर बहुत कम होते हैं। किसी भी व्यक्ति को कष्ट में देखकर उनका हृदय पिघलने लगता और वे उसके दु:ख को दूर करके ही चैन लेते थे; किसी के चोट लग गई है, बिच्छू ने काट खाया है, तो द्विवेदी जी उधर ही दौड़ जाते थे और अपने हाथ से दवा लगाते। ब्राह्मण होंकर भी वे यह नहीं देखते कि रोगी या त्राहत व्यक्ति पासी, कोरी अथवा चमार है। विपत्ति-पीड़ित ब्राह्मण और पासी, में उनकी दृष्टि में कोई भेद नहीं था। एक वार एक ऋहीर किसान वैल-गाड़ी में किसी दूसरे गाँव को जा रहा था। उसकी तबी अत खराव थी। द्विवेदी जी ने उससे कहा--चाखी, उहाँ कुछ श्रंट-संट न खाय लीन्ह्यों, नाहीं तो बहुत दिक होइ जइहो। इस तरह उसे बड़ी देर तक समभाते रहे। हमारे यहाँ के पढ़े-लिखे कह उठते--मरने दो साले को। इन लोगों से सिर मारने को हमारे पास समय कहाँ !

द्वियेदी जी अपने आश्रित जनों के साथ में वड़े प्रेम का वर्ताव करते थे। नौकरों का वे आदर करते थे, उनकी दुःख-वार्ता से कोर। समवेदना प्रकट करके ही नहीं रह जाते, वरन उनकी सहायता और रत्ता भी वे करते थे। उन्हें वे प्रायः मासिक वेतन देते थे। कभी-कभी प्रसन्न होकर इनाम भी देते थे। एक वार एक नौकर को चाँदी के कड़े बनवा दिये थे। दूसरों को आश्रित व्यक्तियों और नौकरों के साथ कठोरता का व्यवहार करते देखकर उन्हें वड़ा दुःख होता। वे स्वयं अपने नौकरों से कभी। कठोर वचन नहीं कहते थे। उनके घर की दास-दासियों की वेश-भूपा देखकर वाहर के आदिमयों का यह जानना कठिन

चेहरे और लम्बे डील-डोल के अंदर एक सहानुभूति-पूर्ण, करुणाई और कोमल हृदय छिपा हुआ है। वास्तव में वे सचे प्रेम और भाव के भूखे थे। उनके समान पर-दु: ख-कातर बहुत कम होते हैं। किसी भी व्यक्ति को कष्ट में देखकर उनका हृद्य पिघलने लगता श्रौर वे उसके दु:ख को दूर करके ही चैन लेते थे; किसी के चोट लग गई है, विच्छू ने काट खाया है, तो द्विवेदी जी उधर ही दौड़ जाते थे और अपने हाथ से दवा लगाते। ब्राह्मण हें कर भी वे यह नहीं देखते कि रोगी या त्राहत व्यक्ति पासी, कोरी अथवा चमार है। विपत्ति-पीड़ित ब्राह्मण और पासी, में उनकी दृष्टि में कोई भेद नहीं था। एक वार एक अहीर किसान वैल-गाड़ी में किसी दूसरे गाँव को जा रहा था उसकी तबी अत खराव थी। द्विवेदी जी ने उससे कहा--चाखी, उहाँ कुछ ऋट-संट न खाय लीन्हयों, नाहीं तो वहुत दिक होइ जइही। इस तरह उसे वड़ी देर तक समभाते रहे। हमारे यहाँ के पढ़े-लिखे कह उठते--मरने दो साले को। इन लोगों से सिर मारने को हमारे पास समय कहाँ !

द्विवेदी जी अपने आश्रित जनों के साथ भं वड़े प्रेम का वर्ताव करते थे। नौकरों का वे आदर करते थे, उनकी दुःख-वार्ता से कोरा समवेदना प्रकट करके ही नहीं रह जाते, वरन उनकी सहायता और रचा भी वे करते थे। उन्हें वे प्रायः मासिक वेतन देते थे। कभी-कभी प्रसन्न होकर इनाम भी देते थे। एक वार एक नौकर की चाँदी के कड़े बनवा दिये थे। दूसरों को आश्रित व्यक्तियों और नौकरों के साथ कठोरता का व्यवहार करते देखकर उन्हें वड़ा दुःख होता। वे स्वयं अपने नौकरों से कभी। कठोर वचन नहीं कहते थे। उनके घर की दास-दासियों की वेश-भूपा देखकर वाहर के आदिमयों की यह जानना कठिन "दौलतपुर की ही चात है। एक बार मैंने चूल्हा जलाकर दाल के लिए श्रदहन रक्खा था कि एंडिन जी ने श्रावाल लगाई। इन ें दिनों वे 'किरातार्जुनाय' का हिदीरूपान्तर मुभे लिखाते थे। मैंने उसी चया बहुशा चूल्हे से उतारकर चूल्हा हुमा दिया श्रीर लिखने श्रा वैठा। दो बंटे तक लिख ते रहे। बाद की मैं रसीई बनाने बैठा। जब उन्हें मालूम हुशा कि मैं चूल्हा हुमाकर श्रायां था तब उन्हें बड़ा दु:ख हुशा। उसके बाद श्रावाल देने से पहले वे 'पूंछ लिया करते थे कि 'क्या कर रहे हो' ?''

श्रध्ययन

द्विवेदी जी का ज्ञान वहुत विस्तृत और अध्ययन वहुत अधिक था। उनमें आरम्भ से ही जिज्ञासावृत्ति प्रधान रही और नये-नये विपयों का उन्होंने काफी पठन-गठन किया। यही कारण था- कि 'सरस्वती' के प्रत्येक अङ्क में वे १०-१२ विपयों पर संपादकीय नोट लिख डालते थे। विभिन्न विपयों पर उन्होंने विस्तृत लेख भी लिखे, जिनको पढ़कर आश्चर्य होता है कि संपादकीय कार्य करते हुए भी उन्हों इन सबका अध्ययन करके लेख लिखने का समय ही कैसे भिल जाता था। यहाँ तक कि 'सरस्वती? (भाग ४ सं० ११) में उन्होंने "रजोद्दर्शन"-शीर्षक लेख कामिनीकौतूहल के अन्तर्गत लिखा है। इसके बहुत पहले सन् १८६ में काला-काँकर के किन्हीं रमेशिसंह नाम के व्यक्ति ने उनसे अलंकार के सर्वश्रेष्ठ प्रन्थ के विषय में पूत्रा था और यह भी लिखा था कि यदि में अलंकार और उसके अन्यान्य अंगें पर लिखा हुआ अपना निवन्ध भेजूँ तो क्या आन उस पर अपनी सम्मित देने की कृपा करेंगे।

बात यह है कि नई-नई बातों की जानने की इच्छा साधारण फा० १७ "दौलतपुर की ही बात है। एक बार मैंने चूल्हा जलाकर दाल के लिए श्रदहन रक्ला था कि पंडिन जी ने श्रावाज़ लगाई। अने दे दिनों वे 'किशतार्जुनाय' का हिदीरूपान्तर सुमे लिखाते थे। मैंने उसी च्या बहुशा चूल्हे से उतारकर चूल्हा बुमा दिया श्रीर लिखने श्रा वैठा। दो घंटे तक लिख ते रहे। बाद की मैं रसेंई बनाने बैठा। जब उन्हें मालूम हुशा कि मैं चूल्हा बुमाकर श्रायां था तब उन्हें बड़ा दु:ख हुशा। उसके बाद श्रावाज़ देने से पहले वे 'पूंछ लिया करते थे कि 'क्या कर रहे हो'?'

श्रध्ययन

द्विवेदी जी का ज्ञान बहुत विस्तृत और अध्ययन बहुत अधिक था। उनमें आरम्भ से ही जिज्ञासान्नीत प्रधान रही और नये-नये विपयों का उन्होंने काकी पठन-गठन किया। यही कारण था- कि 'सरस्वती' के प्रत्येक अङ्क में वे १०-१२ विपयों पर संपादकीय नोट लिख डालते थे। विभिन्न विपयों पर उन्होंने विस्तृत लेख भी लिखे, जिनको पढ़कर आश्चर्य होता है कि संपादकीय कार्य करते हुए भी उन्हों इन सबका अध्ययन करके लेख लिखने का समय ही कैसे भिल जाता था। यहाँ तक कि 'सरस्वती' (भाग ४ सं० ११) में उन्होंने 'रेजोर्ड्सन"-शीर्पक लेख कामिनीकौत्हल के अन्तर्गत लिखा है। इसके बहुत पहले सन् १८६८ में काला-काँकर के किन्हीं रमेशिसंह नाम के व्यक्ति ने उनसे अलंकार के सर्वश्रेष्ट प्रन्थ के विषय में पृत्रा था और यह भी लिखा था कि यदि में अलंकार और उसके अन्यान्य अंगों पर लिखा हुआ अपना निवन्ध भेजूँ तो क्या आप उस पर अपनी सम्मित देने की कृपा करेंगे।

बात यह है कि नई-नई वातों की जानने की इच्छा साधारण फा० १७

हिसाव लिखने और पुड़ियाँ वनाने के काम में भी उन्हें लाते थे। शायद महातमा गांधी के वाद दूसरा नंवर इस विषय में उन्हों का था। उनकी सुन्यवस्था-प्रियता का इससे वढ़कर नमूना और क्या हो सकता है कि जब वे 'सरस्वती' के संपादनकार्य से अलग हुए थे तब उन्होंने पदुमलाल पुत्रालाल वछशी जी को कई लेख ऐसे भी दिये थे जो लगभग २० वर्ष पहले वावू श्यामसुन्दरदासं जी ने चार्ज देते समय उन्हें दिये थे। वर्षों के पुराने कपड़े उनके पास रक्खे थे और वे प्रायः उन्हें पहनत भी रहे हैं। पैसे-पैसे का हिसाव भी वे रखते रहे हैं। महीने का वजट वे पहले ही वना लेते थे, उनके पास २०-२५ वर्ष पूर्व के भी माहवारी वजट मिल सकते थे।

सफलता का रहस्य

द्विवेदी जी ऐसे देशभक्त या सुधारक नहीं थे, जो केवल सुधार-सुधार चिल्लाया करते हैं। जिस भारतीय सभ्यता, धर्म आदि की वे चकालत करते हैं उसको उन्होंने स्वयं भी अपनाया था। जिस अपनाने की ओर वे संकेत करते हैं उसके कारण भी वताते चलते हैं। कभी कहते हैं—

"कुछ तो कर्मयोग के घोर कुछ तुम्हारी ही थकर्मण्यता के कारण तुम्हारा वह प्राचीन वैभव इस समय कथावशेप रह गया है। लोकिक ज्ञान घोर विज्ञान में तुम्हें विदेशी घोरप घोर घमेरिका ने परास्त कर दिया, वल-विक्रम में तुम्हें विदेशी जातियों ने मुँह दिखाने लायक न रक्ला। तुम्हारे हीरों का हास हो गया।"

श्रीर कभी सुधारकों श्रीर कर्मवीरों को सावधान करते हुए उन्हें कर्तव्य सुभाते हैं—

हिसाय लिखने और पुड़ियाँ वनाने के काम में भी उन्हें लाते थे। शायद महातमा गांधी के वाद दूसरा नंवर इस विपय में उन्हों का था। उनकी सुन्यवस्था-प्रियता का इससे वढ़कर नमृना और क्या हो सकता है कि जब वे 'सरस्वती' के संपादनकार्य से अलग हुए थे तब उन्होंने पहुमलाल पुत्रालाल वछशी जी को कई लेख ऐसे भी दिये थे जो लगभग २० वर्ष पहले वावू श्यामसुन्दरदास जी ने चार्ज देते समय उन्हें दिये थे। वर्षो के पुराने कपड़े उनके पास रक्खे थे और वे प्रायः उन्हें पहनत भी रहे हैं। पैसे-पैसे का हिसाव भी वे रखते रहे हैं। महीने का वजट वे पहले ही वना लेते थे, उनके पास २०-२५ वर्ष पूर्व के भी माहवारी वजट मिल सकते थे।

सफलता का रहस्य

द्विवेदी जी ऐसे देशभक्त या सुधारक नहीं थे, जो केवल सुधार-सुधार चिल्लाया करते हैं। जिस भारतीय सभ्यता, धर्म आदि की वे वकालत करते हैं उसको उन्होंने स्वयं भी अपनाया था। जिस अपनाने की ओर वे संकेत करते हैं उसके कारण भी वताते चलते हैं। कभी कहते हैं—

"कुछ तो कमैयोग के श्रीर कुछ तुम्हारी ही श्रकमंख्यता के कारण तुम्हारा वह प्राचीन बैभव इस समय कथावशेष रह गया है। लोकिन ज्ञान श्रीर विज्ञान में तुम्हें विदेशी योरप श्रीर श्रमेरिका ने परास्त कर दिया, वल-विक्रम में तुम्हें विदेशी जातियों ने मुँह दिखाने लायक न स्क्ला। तुम्हारे हीरों का हास हो गया।"

त्रीर कभी सुधारकों और कर्मवीरों को सावधान करते हुए उन्हें कर्तव्य सुकाते हैं— विरोधों का सामना करना पड़ा; पर उन्होंने वीरता के साथ अपने प्रतिद्वंदियों का सामना किया और असीम योग्यता, अट्ट धेर्य, अप्रतिम दत्तता दिखाई। कालांतर में लोगों ने उन्हें सभभा और उनकी महत्ता को स्वीकार किया। इस विजय का श्रेय उनकी निर्भाक सत्य-प्रीति, तेजस्विता, बहुद्शीता और मर्म- जता, नियम-निष्ठा, अमशीलता, साधन-बहुलता और कार्य- दत्तता को ही दिया जा सकता है। उनका जीवन साहित्य- सेवियों की कृत-कृत्यता का एक महान् , उज्ज्वल हष्टांत है। यह नितांत सत्य है कि कोई भी व्यक्ति उनकी विशेपताओं का अंगीकृत करके गौरवशाली हो सकता है। संचेप में द्विवेदी जी को बालोचित विनम्रता, उनकी सादगी, उनका समय का सदुप- योग, उनकी शिष्टा वा और सङ्जनता आहि गुणों ने हिंदी-भाषा का इतिहास जाननेवाले लोगों के वीरोपासक हद्यों में उनके प्रति वह भाव पैहा कर दिया है, जो को अपित है।

विरोधों का सामना करना पड़ा; पर उन्होंने वीरता के साथ अपने प्रतिद्वंद्वियों का सामना किया और असीम योग्यता, अदृट धेर्य, अप्रतिम दत्तता दिखाई। कालांतर में लोगों ने उन्हें सममा और उनकी महत्ता को स्वीकार किया। इस विजय का श्रेय उनकी निर्भाक सत्य-प्रीति, तेजिस्वता, वहुदर्शिता और मर्म-जता, नियम-निष्ठा, अमशीलता, साधन-बहुलता और कार्य-दत्तता को ही दिया जा सकता है। उनका जीवन साहित्य-सेवियों की कृत-कृत्यता का एक महान् ,इज्ज्वल दृष्टांत है। यह नितांत सत्य है कि कोई भी व्यक्ति उनकी विशेपताओं को अंगीकृत करके गौरवशालों हो सकता है। संचेप में द्विवेदी जी को वालोचित विनम्रता, उनकी सादगी, उनका समय का सदुप-योग, उनकी शिष्टता और सज्जनता आदि गुणों ने हिंदी-भाषा का इतिहास जाननेवाले लोगों के वीरोपासक दृष्यों में उनके प्रति वह भाव पैना कर दिया है, जो उपित है।

मूँदे रहते हैं। शेक्सिप्यर की बात को तो जाने दीजिए, पर हिंदी के किब अपने रंग में मस्त रहकर ही यदि भारतीयता की भावनाओं से शून्य रहें या भारतीय परिस्थिति और भारतीय समस्याओं की और से, किसी कारण से भी, उदासीन रहें तो सचमुच वड़े आश्चर्य की बात होंगी। कारण, पिछले लगभग ४० वर्ष से देश में ऐमी-ऐसी समस्याओं का जन्म हो रहा है जिनका संबंध भारत की सभी श्रेणियों और वर्गों से है। सामाजिक प्राणी—स्वांत:मुखाय किवता करनेवाले कल्पना-प्रधान अथवा भाव-प्रधान किवयों को भी में यही सममता हूँ—साधारणतः इनकी ओर उपेत्ता की हिष्ट से नहीं देख सकता और न ऐसा करना उचित ही है। ऐसे किवयों की भावना, सहद्यता और सहानुभूति की जननी वनकर, मनुष्यमात्र का हदय जाति-प्रेम और देश-प्रेम से परिपूर्ण कर देती है। कृतज्ञता और समवेदना का भाव भी इस कार्य में सहायक होता है। फलतः किव-हदय की भावक सहदयता इससे प्रभावित होकर शब्दों के रूप में प्रकट होती है।

ऐसा ही भावुक किन-हदय द्विवेदी जी का था। देश-प्रेम से वह सदैव ही परिपूर्ण रहा। यद्यपि उन्होंने प्रत्यत्त रूप से राजनीतिक मामलों में शायद कभी भाग नहीं लिया, तथापि स्वतंत्रता के लिए होनेवाले खांदोलन से उनकी पूर्ण सहानुभूति रही। स्वदेशी वस्त्रों का प्रयोग स्वदेशी-खांदोलन से भी पहले से वे करते खाये थे। गांधी जी के प्रति उनकी श्रद्धा और भक्ति भी खाज से लगभग २० वर्ष पहले से थी। जिन दिनों महात्मा जी दिल्ली में उपवास कर रहे थे और समाचार-पत्रों में उनकी हालत के वृत्तांत छपते थे, द्विवेदी जी उन समाचारों को बड़ी चिंता के साथ पढ़ते थे। एक दिन पढ़ा कि उनकी

मूँदे रहते हैं। शेक्सप्रियर की वात को तो जाने दीजिए, पर हिंदी के कवि अपने रंग में मस्त रहकर ही यदि भारतीयता की भावनात्रों से शून्य रहें या भारतीय परिस्थित और भारतीय समस्यात्रों की और से, किसी कारण से भी, उदासीन रहें तो सचमुच वड़े आश्चर्य की वात होंगी। कारण, पिछले लगभग ४० वर्ष से देश में ऐसी-ऐसी समस्याओं का जन्म हो रहा है जिनका संबंध सारत की सभी श्रेणियों श्रोर वर्गों से हैं। सामाजिक प्राणी-स्वांतःसुखाय कविता करनेवाले कल्पना-प्रधान अथवा भाव-प्रधान कवियों की भी मैं यही सममता हूँ—साधारणतः इनकी त्र्योर उपेत्ता की दृष्टि से नहीं देख सकता और न ऐसा करना उचित ही है। ऐसे कवियों की भावना, सहद्यता श्रोर सहानुभूति की जननी वनकर, मनुष्यमात्र का हृद्य जाति-प्रेम और देश-प्रेम से परिपूर्ण कर देती है। कृतज्ञता और समवेदना का भाव भी इस कार्य में सहायक होता है। फलतः कवि-हृद्य की भावुक सहृद्यता इससे प्रभावित होकर शब्दों के रूप में प्रकट होती है।

ऐसा ही भावुक किव-हृदय हिवेदी जी का था। देश-प्रेम से वह सदेव ही परिपूर्ण रहा। ययपि उन्होंने प्रत्यक्त रूप से राजनीतिक मामलों में शायद कभी भाग नहीं लिया, तथापि स्वतंत्रता के लिए होनेवाले आंदोलन से उनकी पूर्ण सहानुभूति रही। स्वदेशी वस्त्रों का प्रयोग स्वदेशी-आंदोलन से भी पहले से वे करते आये थे। गांधी जी के प्रति उनकी श्रद्धा और भक्ति भी आज से लगभग २० वर्ष पहले से थी। जिन दिनों महात्मा जी दिल्ली में उपवास कर रहे थे और समाचार-पत्रों में उनकी हालत के वृत्तांत छपते थे, द्विवेदी जी उन समाचारों को वड़ी चिंता के साथ पढ़ते थे। एक दिन पढ़ा कि उनकी

Market .

"हाय, जिस भारत ने अपने धर्म, अपने कला-कोशल शीर अपनी सभ्यता का पाट दृसरे-दूसरे देशों श्रीर दूसरी-दूसरी विलायतों को पढ़ाया, वहीं श्रांत श्रसभ्यों में नहीं तो श्रर्द्ध-सभ्यों में गिना जा रहा है। महाकवि ने टीक ही कहा है —

> इतविधित्तस्तितां ही विचित्रो विषाकः ।'' —सरस्वती (दिसंवर १६२७)

भारतीयता का यह पत्तपान द्वियेदी जी की अधिकांश रचनात्रों—त्रिशेपकर पुरातत्त्व त्रिपय पर लिखे हुए लेखेंा— में प्रधान है। उनका विचार जा उनके लेखों से स्पष्ट होता है, वह यह है कि एकता श्रोर जातीयता के भाव भारतवासियों में तभी पेटा हो सकते हैं जब हम अपने पूर्व-पुरुषों के बताये हुए मार्ग पर चलें। 'व्रत-कथायें'-शीर्पक निबंध में, जो श्रीशारदा (दिसंवर सन् १६२१ पृ० ४६४) में प्रकाशित हुन्या था, द्विवेदी जी ने इसी प्रकार के विचार प्रकट किये हैं। उनके कुछ तेख तो प्राचीन साहित्य के प्रमुख प्रंथों का परिचयमात्र हैं। इसका कारण भी म्पष्ट है। हमें अपने पूर्वजों की उन्नति, सम्यता, गौरव त्रादि का गर्व है। यही गर्व द्विवदी जी को भी था। पर व यह नहीं चाहते थे कि भारतवासी सिर्फ घमंड में ही चृर् रहें—केवल अपने पूर्वजों का गुरागान करते हुए स्वयं अकर्मण्यता का भट्टा नमृना बनते रहें। हमारे पृवंजों ने वहुत-कुञ्ज किया था; परंतु आज हम क्या हैं—द्विवेदी जी अपने पाठकों के। यही सुभाना चाहते थे। इसी कारण उन्होंने प्रायः तुलनात्मक लेख लिखे हैं, जो परिचायकमात्र होते हुए भी पाठकों के सामने एक आदर्श उपस्थित करते चलते हैं।

"हाय, जिस भारत ने अपने धर्म, अपने फला-कोशल शौर अपनी सभ्यता का पाठ दृमरे-दूसरे देशों और दूसरी-दूसरी विलायतों को पड़ाया, वहीं आज असभ्यों में नहीं तो अर्द्ध-सभ्यों में गिना ला रहा है। महाकवि ने ठीक ही कहा है —

> इतविधितसितां ही विचित्रो विपाकः।" —सरस्वती (दिसंवर १६२७)

भारतीयता का यह पत्तपात द्वियेदी जी की अधिकांश रचनात्रों-विशेषकर पुरातत्त्व विषय पर लिखे हुए लेखें-में प्रधान है। उनका विचार जो उनके लेखों से स्पष्ट होता है, वह यह है कि एकता श्रीर जातीयता के भाव भारतवासियों में तभी पेदा हो सकते हैं जब हम अपने पूर्व-पुरुपों के बताये हुए मार्ग पर चलें। 'त्रत-कथायें'-शीर्पक निबंध में, जो श्रीशारदा (दिसंवर सन् १६२१ पृ० ४६४) में प्रकाशित हुआ था, द्विवेदी जी ने इसी प्रकार के विचार प्रकट किये हैं। उनके कुछ लेख तो प्राचीन साहित्य के प्रमुख प्रंथों का परिचयमात्र हैं। इसका कारण भी म्पष्ट हैं। हमें खपने पूर्वजों की उन्नति, सभ्यता, गौरव त्रादि का गर्व है। यही गर्व द्विवंदी जी को भी था। पर व यह नहीं चाहते थे कि भारतवासी सिर्फ घमंड में ही चृर रहें - केवल अपने पूर्वजों का गुगागान करते हुए स्वयं अकर्मण्यता का भहा नम्ना वनते रहें। हमारे पूर्वजां ने वहुत-कुछ किया था; परंतु आज हम क्या हैं—िद्विवेदी जी अपने पाठकों के। यही सुभाना चाहते थे। इसी कारण उन्होंने प्रायः तुलनात्मक लेख लिखे हैं, जो परिचायकमात्र होते हुए भी पाठकों के सामने एक त्र्यादर्श उपस्थित करते चलते हैं।

रहती है। सब ही यह भी पता हा महता है कि साम स्थाय के बाहर भी। पता करें। लाकार होना पता। परंतु तिकार गराभप करों भी महीपर होंदे चे परवाही है जाता कुमते के हारा हो जाता है नहें भी हुए महता चाहिए। ये ना सुंह दिल्ली सामा की नहीं रह जाते। जमकी कुरील देस्पर से। पतिना भूट से जाना है।

परानंत्यस के जिस पहलू पर विकेश जी ने लिखा है यह निर्माय गर्म्य है। यह हम प्याने जीवन में प्राय: ऐस्तेन हैं। परंतु हमारे हानिहिल भाग्य की प्यानित का जो कारण वे सुरूप नम्भाने हैं वह है हमारी एपमंद्रकता। पार्तास्य देशों में प्याज्ञ में ही जिनका जीवन संपर्य होंग जीवर का एक हैं। जिनका जीवन संपर्य होंग जीवर का एक हैं। विकेश जीवर का एक हैं। विकेश जी ने इसका अध्ययन किया प्योर किर आधीन भागी। ये जीवर में कारणों के नृतना करने हुए इस कार्यां में विकास में विकास

''हमारी कुपनंह क्या ने हमारी जो छानि थी है उसकी ह्रपत्ता नहीं । उसके कुफत इस पद-पद पर भीग रहें हैं। उसके हमें किसी बाम का नहीं रक्या । परंतु हुदेंग हमें फिर भी राचेत नहीं होने देना । उसके हमें यहाँ तक खंधा चना दिया है कि हम अपने पूर्व-पुत्रपों के वित्त खीर उनके रहांत भी भूल गये हैं। हमारे जिन धर्मपुरीण बाचीन प्रतियों खीर मुनियों ने द्वीपांतरों तक में जाकर आयों के धर्म, ज्ञान खीर प्रश्नियं की पताका महराई खीर बड़े-बड़े उपनिवेशों तक की स्थापना कर दी उनकी चरितावली धाज भी हमें खपनी पुरानी पोधियों में विद्या मिलती हैं। परंतु उनकी खोर किसी का ध्यान ही नहीं जाता, उनके कार्यों का धनुसर्य करना तो हर की यान ही नहीं जाता, उनके कार्यों का धनुसर्य करना तो हर की यान ही।''

-सरस्वती (दिसंबर १६२४)

''यद्यपि हमारे देश में अमेरिका के समान दासत्व नहीं है, तथापि, वर्तमान समय में, अस्पृत्रय जाति के पाँच करोड़ से अधिक मनुष्य सामाजिक दासत्व का कठिन दुल भोग रहे हैं। क्या हमारे यहाँ वाशिंगटन के समान इन लोगों का उद्धार वरने के लिए—सिर्फ़ शुद्धि के लिए नहीं—कभी कोई महात्मा उत्पन्न होगा? क्या इस देश की शिचा-पद्धति में शारीरिक अम की और ध्यान देकर कभी सुधार किया जायगा? जिन लोगों ने शिचा-द्वारा अपने समाज की सेवा करने का निश्चय किया है क्या वे लोग उन तस्वों पर उचित ध्यान देंगे जिनके श्राधार पर हैस्पटन और टस्केजी की संस्थाय काम कर रही हैं?

इसी प्रकार देश के नवयुवकों के लिए भी उनका संदेश हैं कि अध्यवसाय से काम लो, अपने पैरों पर खड़े हो और आत्मवल पर विश्वास रक्खे। स्पेंसर ने अपनी पुस्तक 'एजूकेशन' में लिखा है—मनुष्य के। प्रत्येक चीज परिश्रम करके प्राप्त करनी चाहिए और स्वाभाविक शक्तियों का विकास विना औरों की मदद के मनुष्यों को यथासंभव ख़ुद ही करना चाहिए। द्विवेदी जी ने स्पेंसर के इन विचारों का समर्थन अपनी अनुवादित पुस्तक 'शिचा' की भूमिका (पृ० ४) में किया है। इसी प्रकार उन्होंने वाबू कालिदास जी कपूर के। एक पत्र में आज से लगभग २० वर्ष पहले लिखा था—

" खूब परिश्रम की जिए श्रौर संयम के। हाथ से मत जाने दीजिए।"

यदि ग़ौर करके देखा जाय तो हमें ज्ञात हो जायगा कि द्विवेदी जी की इतनी उन्नति केवल उनके परिश्रम के कारण ही हो सकी है। अस्तु।

इनके त्रतिरिक्त, एक तीसरे दोप की त्रोर भी दिवेदी जी प्रायः संकेत करते रहे हैं। वह है हमारी कृतन्नता या त्रगुगा- "यद्यपि हमारे देश में ऋमेरिका के समान दासत्व नहीं है, तथापि, वर्तमान समय में, अस्पृत्रय जाति के पाँच करोड़ से श्रिधिक मनुष्य सामाजिक दासत्व का कठिन दुख भोग रहे हैं। क्या हमारे यहाँ वाशिंगटन के समान इन लोगों का उद्धार वरने के लिए—सिर्फ़ श्रुद्धि के लिए नहीं—कभी कोई महात्मा उत्पन्न होगा? क्या इस देश की शिचा-पद्धति में शारीरिक श्रम की श्रोर ध्यान देवर कभी सुधार किया जायगा? जिन लोगों ने शिचा-द्वारा श्रपने समाज की सेवा करने का निश्चय किया है क्या वे लोग उन तक्षों पर उचित ध्यान देंगे जिनके श्राधार पर हैम्पटन श्रीर टस्केजी की संस्थाय काम कर रही हैं?

इसी प्रकार देश के नवयुवकों के लिए भी उनका संदेश हैं कि अध्यवसाय से काम लो, अपने पैरों पर खड़े हो और आत्मवल पर विश्वास रक्खा। स्पेंसर ने अपनी पुस्तक 'एजूकेशन' में लिखा है—मनुष्य को प्रत्येक चीज परिश्रम करके प्राप्त करनी चाहिए और स्वामाविक शक्तियों का विकास विना औरों की मदद के मनुष्यों को यथासंभव ख़ुद ही करना चाहिए। द्विवेदी जी ने स्पेंसर के इन विचारों का समर्थन अपनी अनुवादित पुस्तक 'शिन्ना' की भूमिका (पृ० ४) में किया है। इसी प्रकार उन्होंने वाबू कालिदास जी कपूर के एक पत्र में आज से लगभग २० वर्ष पहले लिखा था—

'' खूब परिश्रम कीजिए श्रौर संयम के। हाथ से मत जाने दीजिए।"

यदि ग़ौर करके देखा जाय तो हमें ज्ञात हो जायगा कि द्विवेदी जी की इतनी उन्नति केवल उनके परिश्रम के कारग ही हो सकी है। अस्तु।

इनके अतिरिक्त, एक तीसरे दोप की ओर भी द्विवेदी जी प्रायः संकेत करते रहे हैं। वह है हमारी कृतन्नता या अगुग्रा- भारतीयता का भाव पैदा हो जाय, यही उनका आदर्श रहा है। एक बार उन्होंने लिखा था—

"इस देश के निवासियों में श्याम जी कृष्ण वर्मा पहले सजन हैं जिन्होंने यानमफोर्ड विश्वविद्यालयं से एम० ए० जी पदवी पाई है। स्पेन्सर की श्मशान-फिया के समय वे वहाँ डपिस्थत थे, थोड़ा-सा समयोचित भाषण करने के वाद उन्होंने ११ हज़ार रुपया खर्च करके स्पेन्सर के नाम से एक छात्रवृत्ति नियत करने का निश्चय किया। इस निश्चय का वे पालन भी कर रहे हैं। इँगलेंड के ब्रह्मिप तुल्य वेदांत-वेता का इस तरह भारतवर्ष के एक विद्वान् द्वारा थादर देना छुछ फोत्रु लवन के थवर थे। सच है, दर्शनथास्त्र की महिमा यह खड़ा भारत थव भी खुन जानता है।"

श्रंतिम पाक्य का व्यंग्य सममते के लिए उसकी तह में पेठना पड़ेगा। दिवेदी जी के भारतीयता-विपयक भाव इस एक ही वाक्य में निहित समभे जा सकते हैं। पर भारत की श्राधुनिक परिस्थित के संबंध में उनके विचार 'श्रार्य-भूमि' शीर्पक कविता में है। भारतभूमि के पूर्व-गौरव, धर्म, साहित्य, वेदांत, विज्ञान श्रादि की उन्नति की श्रोर संकेत करने के परचात उन्होंने लिखा—

विचार ऐसे जब चित्त श्राते, विपाद पैदा करके सताते। न क्या कभी देव दया करेंगे, न क्या हमारे दिन भी फिरेंगे?

त्रांतिम पंक्तिकी 'कस्क'-भावना ही किसी परतंत्र देश के नवयुवकों श्रौर नवयुवितयों के हृदयों में उत्पन्न होकर उस भारतीयता का भाव पैदा हो जाय, यही उनका आदर्श रहा है। एक वार उन्होंने लिखा था—

"इस देश के निवासियों में रयाम जी कृष्ण वर्मा पहले सजन हैं जिन्होंने श्रावसफोर्ड-विश्वविद्यालयं से एम० ए० की पदवी पाई है। स्पेन्सर की श्मशान-किया के समय वे वहाँ उपस्थित थे, थोड़ा-सा समयोचित भाषण करने के बाद उन्होंने १४ हज़ार रुपया खर्च करके स्पेन्सर के नाम से एफ-छात्रवृत्ति नियत करने का निश्चय किया। इस निश्चय का वे पालन भी कर रहे हैं। इँगलंड के ब्रह्मिप तुल्य वेदांत-वेता का इस तरह भारतवर्ष के एक विद्वान द्वारा श्रादर देना कुछ कौत्हलजनक श्रवश्य है। सच है, दर्शनशास्त्र की महिमा यह खुड़ा भारत श्रव भी खूउ जानता है।"

श्रंतिम वाक्य का व्यंग्य समभते के लिए उसकी तह में पैठना पड़ेगा। द्विवेदी जी के भारतीयता-विपयक भाव इस एक ही वाक्य में निहित समभे जा सकते हैं। पर भारत की श्राधुनिक परिस्थिति के संबंध में उनके विचार 'श्रार्य-भूमि' शीर्पक कविता में है। भारतभूमि के पूर्व-गौरव, धर्म, साहित्य, वेदांत, विज्ञान श्रादि की उन्नति की श्रोर संकेत करने के परचात उन्होंने लिखा—

विचार ऐसे जब चित्त थाते, विपाद पैदा करके सताते। न क्या कभी देव दया करेंगे, न क्या हमारे दिन भी फिरेंगे?

श्रंतिम पंक्ति की 'कस्क'-भावना ही किसी परतंत्र देश के नवयुवकों श्रोर नवयुवितयों के हृदयों में उत्पन्न होकर उस

सम्मान

"मनुष्य के गुणों का विकाश प्रायः उसके मरने के अनन्तर होता है। जीवित दशा में ईप्या-द्वेष और मस्सर आदि के कारण मनुष्य औरों के गुण बहुधा नहीं प्रकाशित होने देते। परन्तु मरने के अनन्तर राग-द्वेष अथवा मस्सर करना वे छोड़ देते हैं। इसी लिए मरणोत्तर ही प्रायः मनुष्यों की कीर्त्ति फेलती है। यदि जीते ही कोई यशस्वी हो तो उसे विशेष भाग्यशाली समम्मना चाहिए। जीवित-दशा में किसी के गुणों पर लुज्ध होकर उसका सम्मान जिस देश में होता है उस देश की गिनती उदार और उन्नत देशों में की जाती है।"

(सरस्वती, जुलाई १६०३)

X X X

अँगरेजी में एक कहावत है—'ए थिंग इज वेल्यूड आफटर इट इज लास्ट'। इसका भाव यह है कि जब तक कोई वस्तु हमारे पास रहती हैं, हम प्रायः उसका वास्तविक मूल्य नहीं निर्धारित कर पाते हैं—या इस अ्रोर हमारा ध्यान ही नहीं जाता है। परंतु जब वह वस्तु हमारे हाथ से निकल जाती हैं तब हम उसके लिए पछताते हैं। जीवन में अनेक वार हमें इस बात का अनुभव करना पड़ता है। संसार के इतिहास में अगणित उदाहरण ऐसे व्यक्तियों के मिलते हैं जिनके साथ उनके जीवित रहते तो पाशविक व्यवहार किया गया है, परंतु मरणोपरांत उनका देवता के समान आदर हुआ। इसी वात की अपनी सापा में सकारण सममाते हुए हिवेदी जी ने

सम्मान

"मनुष्य के गुणों का विकाश प्रायः उसके मरने के धनन्तर होता है। जीवित दशा में ईष्या-हेप धौर मस्सर ध्रादि के कारण मनुष्य धौरों के गुण बहुधा नहीं प्रकाशित होने देते। परन्तु मरने के ध्रनन्तर राग-हेप ध्रयवा मस्सर करना वे छोड़ देते हैं। इसी लिए मरणोत्तर ही प्रायः मनुष्यों की कीर्त्ति फेलती है। यदि जीते ही बोई यशस्वी हो तो उसे विशेष भाग्यशाली सममना चाहिए। जीवित-दशा में किसी के गुणों पर लुब्ध होकर उसका सम्मान जिस देश में होता है उस देश की गिनती उदार धौर उन्नत देशों में की जाती है।"

(सरस्वती, जुलाई १६०३)

 \times \times \times \times

अँगरेजी में एक कहावन है—'ए थिंग इज वेल्यूड आफटर इट इज लास्ट'। इसका भाव यह है कि जब तक कोई वस्तु हमारे पास रहती हैं, हम प्रायः उसका वास्तविक मूल्य नहीं निर्धारित कर पाते हैं—या इस ओर हमारा ध्यान ही नहीं जाता है। परंतु जब वह वस्तु हमारे हाथ से निकल जाती है तब हम उसके लिए पछताते हैं। जीवन में अनेक बार हमें इस बात का अनुभव करना पड़ता है। संसार के इतिहास में अगणित उदाहरण ऐसे व्यक्तियों के मिलते हैं जिनके साथ उनके जीविन रहते तो पाशविक व्यवहार किया गया है, परंतु मरणोपरांत उनका देवता के समान आदर हुआ। इसी वात को अपनी सापा में सकारण सममाते हुए द्विवेदी जी ने

'सार्टिफिकेट श्राक्त श्रानर' के लिए नाम पृद्धे जाने पर उन्होंने शायद मन ही मन धात्म-गौरव और श्रात्माभिमान के भावों में भरकर गर्व श्रीर गौरव से लिखा था—"वदल चमार की जूड़ी उतर जाती है तब में सम्प्रकृता हूँ कि मुक्ते 'कैसरे हिंद' का तमगा मिल गया।" उनके चिरत की यह विलच्चला—मोह की यह निर्द्यता—हिंदी के श्रीधकांश सेवी श्रभी तक नहीं समक पाये हैं। उनके इस त्याग में क्या हमार प्राचीन महिंपियों के त्याग के श्रानुकरण की पृत और महती भावना निहित नहीं समकी जायगी?

 \times \times \times \times

संसार में जीवित और जायत् जातियाँ वास्तव में वे ही हैं जो अपने नेताओं, साहित्यिक महारिथयों, शहीदों और समाज-सुधारकों के कार्यों का उचित मूल्य निर्धारित 'करके उनका यथोचित सम्मान करना जानती हैं। बड़े गर्व ऋौर गौरव का विषय है कि हमने भी इस वात को समका ऋौर उस पर कुछ त्रमल भी किया। त्र्याचार्य द्विवेदी की सेवात्रों की म्वीकार करने के लिए, उनका सम्मान करने के ही विचार से वे कई वार कवि-सम्मेलनों के समापति चुने गये। इसकी सूचना प्रायः प्रत्येक वार उन्हें नार से दी गई। हर वार उनसे प्रार्थना की जाती थी कि स्वीकृति तार ही द्वारा भेजिए। इसके उत्तर में द्विवेदी जी सदैव यही लिखते रहे कि अपनी अस्वस्थता के कारण यह भार स्वीकार करने में असमर्थ हूँ। लोगों ने उनकी विवशता के कई ऋर्थ लगाये। किसी ने कहा—वमंड, है। किसी ने व्यंग्य किया--जी, हाँ, हमेशा वीमार रहते हैं। एक ने प्रश्न किया--तब 'सरस्वती' का नियमित रूप से संपादन कैसे करते हैं ? इसका रहस्य जो कुछ भी हो, पर द्विवेदी जी

'सार्टिफिकेट श्राक श्रानर' के लिए नाम पृछे जाने पर उन्होंने शायद मन ही मन धात्म-गौरव श्रोर श्रात्माभिमान के भावों में भरकर गर्व श्रोर गौरव से लिखा था—"वदल चमार की जूड़ी उतर जाती है नव में समर्फता हूँ कि मुभे 'कैसरे हिंद' का तमराा मिल गया।" उनके चरित्र की यह विलच्चणता—मोह की यह निद्यता—हिंदी के श्रिधकांश सेवी श्रभी तक नहीं समभ पाये हैं। उनके इस त्याग में क्या हमार प्राचीन महिंपैयों के त्याग के श्रमुकरण की पृत श्रोर महती भावना निहित नहीं समभी जायगी?

 \times \times \times \times

संसार में जीवित त्योर जायत् जातियाँ वास्तव में वे ही हैं जो अपने नेताओं, साहित्यिक महारिथयों, शहीदों और समाज-सुधारकों के कार्यो का उचित मूल्य निर्धारित करके उनका यथोचित सम्मान करना जानती हैं। वड़े गर्व श्रोर गौरव का विषय है कि हमने भी इस वात को समका त्रौर उस पर कुछ अमल भी किया। आचार्य द्विवेदी की सेवाओं की म्वीकार करने के लिए, उनका सम्मान करने के ही विचार से वे कई वार कवि-सम्मेलनों के संभापति चुने गये। इसकी सचना प्रायः प्रत्येक वार उन्हें नार से दी गई। हर वार **उनसे** प्रार्थना की जाती थी कि स्वीकृति तार ही द्वारा भेजिए। इसके उत्तर में द्विवेदी जी सदैव यही लिखते रहे कि अपनी अस्वस्थता के कारण यह भार स्वीकार करने में असमर्थ हूँ। लोगों ने उनकी विवशता के कई अर्थ लगाये। किसी ने कहा-धमंड है। किसी ने व्यंग्य किया--जी, हाँ, हमेशा वीमार रहते हैं। एक ने प्रश्न किया-तब 'सरस्वती' का नियमित रूप से संपादन कैसे करते हैं ? इसका रहस्य जो कुछ भी हो, पर द्विवेदी जी

इन दोनों अवतरणों से यह स्पष्ट होता है कि द्विवेदी जी अपनी विवशता के कारण ही सम्मेलन के सभापित-पद को अस्वीकार करते रहे हैं। हम उनके इन विचारों की विवेचना करके किसी अनुमानित अथवा किल्पत कारण की ओर संकेत करने की अपेचा यह अच्छा समभते हैं कि पाठकों के सामने यही दो परिच्छेद रख दिये जायँ।

\times \times \times \times

जनवरी १६३१ में त्राचार्य द्विवेदी २४ घंटे के लिए काशी पधारे थे। उस समय काशी-नागरी-प्रचारिग्री सभा की श्रोर से उन्हें एक श्रभिनंदन-पत्र दिया गया था। उनके चले जाने के कई दिन वाद श्री शिवपूजनसहाय के कहने पर द्विवेदी जी के सत्तरवें वर्ष में पदार्पण करनेके शुभ अवसर पर सभा ने उनके ऋभिनंदनार्थ एक यंथ प्रकाशित करने का निश्चय किया। पाश्चात्य देशों में इस प्रकार के आयोजन प्राय: होते रहते हैं। भारत में भी वंगाल, महाराष्ट्र आदि प्रांतों में भी अपने साहित्यिकों तथा अन्य नेताओं के प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट करने के लिए इस प्रकार की योजनायें आदर की दृष्टि से देखी गई हैं। परंतु हिंदी के लिए यह पहला प्रस्ताव था। सौभाग्य से सभी ने हृद्य से इसका स्वागत किया। सभा के कार्य्यकर्तात्रों और श्री शिवपूजनसहाय जी के अनवरत परिश्रम के परिणाम-स्वरूप बावू श्यामसुन्दरदास जी के संपाद-कत्व में वह प्रथ प्रकाशित हुआ। वहुन से हिंदीप्रेमी राजाओं श्रौर महानुभावों ने इस शुभ कार्य में सहायता दी। इंडियन ग्रेस के संचालक श्री हरिकेशव घोप ने उस यंथ की लागतमात्र पर छापकर ऋपनी उदारता का परिचय दिया ।

उस प्रथ में कुल ६३२ प्रष्ट हैं। ११ प्रष्टों में दोनों विद्वान्

इन दोनों अवतरणों से यह स्पष्ट होता है कि. द्विवेदी जी अपनी विवशता के कारण ही सम्मेलन के सभापित-पद को अस्वीकार करते रहे हैं। हम उनके इन विचारों की विवेचना करके किसी अनुमानित अथवा किल्पत कारण की ओर संकेत करने की अपेचा यह अच्छा समभते हैं कि पाठकों के सामने यही दो परिच्छेद रख दिये जायँ।

 \times \times \times \times

जनवरी १६३१ में श्राचार्य द्विवेदी २४ घंटे के लिए काशी पधारे थे। उस समय काशी-नागरी-प्रचारिग्री सभा की श्रोर से उन्हें एक श्रभिनंदन-पत्र दिया गया था। उनके चले जाने के कई दिन वाद श्री शिवपूजनसहाय के कहने पर द्विवेदी जी के सत्तरवें वर्ष में पदार्पण करनेके शुभ अवसर पर सभा ने उनके अभिनंदनार्थ एक प्रंथ प्रकाशित करने का निश्चय किया। पाश्चात्य देशों में इस प्रकार के आयोजन प्राय: होते रहते हैं। भारत में भी वंगाल, महाराष्ट्र आदि प्रांतों में भी अपने साहित्यिकों तथा अन्य नेताओं के प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट करने के लिए इस प्रकार की योजनायें आदर की हृष्टि से देखी गई हैं। परंतु हिंदी के लिए यह पहला प्रस्ताव था। सौभाग्य से सभी ने हृद्य से इसका स्वागत किया। सभा के कार्य्यकर्तात्रों और श्री शिवपूजनसहाय जी के अनवरत परिश्रम के परिगाम-स्वरूप बावू श्यामसुन्दरदास जी के संपाद-कत्व में वह प्रथ प्रकाशित हुआ। वहुन से हिंदीप्रेमी राजाओं और महानुभावों ने इस शुभ कार्य में सहायता दी। इंडियन प्रेस के संचालक श्री हरिकेशव घोप ने उस यंथ की लागतमात्र पर छापकर ऋपनी उदारता का परिचय दिया।

उस प्रंथ में कुल ृ६३२ प्रष्ट हैं। ११ प्रष्टों में दोनों विद्वान्

श्वायोजन किया और वड़ी धूम-धाम से श्राचार्य का खागत किया। इस शुभ कार्य में योग देनेवालों में ठाकुर श्रीनाथसिंह, मुंशी कन्हेयालाल एडवोकेट, बयोगृद्ध पंडित लद्मीधर वाजपेयी, पंडित रचुनंदन शर्मा, वाबू केटॉरनाथ गुप्त और श्री निरंजनलाल भार्गय मुख्य थे। ठाकुर गोपालशरगर्मिह इसके खागता-ध्यद्म थे।

हियेदी जी ने हिंदी-साहित्य और मातृ-भाषा की जितनी सेवा की है, उतनी कोई विरला ही साहित्य-सेवी करता है, इसिलाए 'अपने समकालीन साहित्य-सेवियों की ऋण-म्बीकृति के रूप में' जितना मत्कार उपलब्ध- ह्या है, वह भी किनी विरले की ही नसीय होता है। कम से कम हिंदू-में तो किसी खाधुनिक लेखक का नहीं हुआ। फिर भी अभी नीन बार्ते की कमी है—(१) हिवेदी जी का विशद जीवन-चरित, (२) उनके पत्रों का संकलन और संदर्भ-साहित्य-प्रकाशन, (३) उनकी समन्त रचनाओं का एक संकरण। इन अभावों का हिंदी-मंसार स्वयं अनुभय कर रहा है। अब इस और विशेष रूप से ध्यान देने की आवश्यकता प्रनीत होनी है।

श्रायोजन किया और वड़ी धृम-धाम से श्राचार्य का स्तागत किया। इस शुभ कार्य में योग देनेवालों में ठाकुर श्रीनाथसिंह, मुंशी कन्हेंयालाल एडवोकेट, व्योवृद्ध पंडित लक्सीधर वाजपेयी, पंडित रघुनंदन शर्मा, वाबू केट्रॉरनाथ गुप्त और श्री निरंजनलाल भागव मुख्य थे। ठाकुर गोंपालशरणसिंह इसके स्वागता-ध्यक्ष थे।

हिवेदी जी ने हिंदी-साहित्य और मातृ-भाषा की जितनी सेवा की है, उतनी कोई विरला ही साहित्य-मेवी करता है, इसिलाए 'अपने समकालीन साहित्य-सेवियों की ऋण-म्वीकृति के रूप में' जितना सत्कार उपलब्ध- ह्या है, वह भी किसी विरले की ही नसीय होता है। कम से कम हिंद्र-में नो किसी खाधुनिक लेखक को नहीं हुआ। फिर भी अभी नीन वार्ते की कमी है—(१) हिवेदी जी का विशद जीवन-चरित, (२) उनके पत्रों का संकलन और संदर्भ-साहित्य-प्रकाशन, (३) उनकी समस्त रचनाओं का एक संकरण। इन अभावों का हिंदी-मंसार स्वयं अनुभय कर रहा है। अब इस और विशेष रूप से ध्यान देने की आवश्यकवा प्रतीत होनी है।

श्रवस्था में जिस विद्वान् लेखक ने निष्काम भाव से श्रपने स्वास्थ्य की से सकर इसका मार्ग विशाल बनाया, कंकड़-पत्थर बीने, भाड़-भंखाड़ श्रीर कौंटों के जलाया, वह हैं पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी।"

इसी से द्विवेदी जी आज आधुनिक हिंदी-गद्य के निर्माता अथवा जनक कहे जाते हैं।

माता-पिता अपने वालक को किसी योग्य गुरु के सुपुर्द कर देते हैं। वे जानते हैं कि गुरु जितना ही योग्य होगा, वालक की शिचा-दीचा उतनी ही संयत और उच्च केटि की होगी। हिंदी-भाषा-भाषियों को भी वीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में एक ऐसे पथ-प्रदर्शक गुरु की आवश्यकता थी, जा मातृभाषा और उसके साहित्य के प्रति उनका कर्त्तव्य उन्हें सुमाकर, ज्ञान की वृद्धि करके, उन्हें उचित मार्ग पर लाकर खड़ा कर दे। यह हमारा सौभाग्य ही था कि त्रावश्यकता के इस समय में ही प्रकृति माता ने हमारे लिए एक योग्य शित्तक और पथ-प्रदर्शक पैदा कर दिया। द्विवेदी जी हमारे पथ-प्रदर्शक वने और उन्होंने अपने इस कार्य का—'उत्तरदायित्व' भी कह सकते हैं—संपादन कुरालता-पूर्वक किया। यद्यपि उन्होंने किसी ऐसी संस्था की स्थापना नहीं की जो हिंदी-सापा या उसके साहित्य के प्रचार के लिए किसी प्रकार का कार्य करती, तथापि 'सरस्वती' की सहायता से, भाषा के शिल्पी, विचारों के प्रचारक तथा साहित्य के शिचक, तीन-तीन संस्थाओं के संच्या न्या उत्तर-दायित्व-पूर्ण कार्य उन्होंने स्वेच्छा से उठाया - 👙 🍌 न और सफलता के साथ निभाया। यही उतः - क्रिक्न का प्रधान कारण हैं '

श्रवस्था में जिस विद्वान् लेखक ने निष्काम भाव से श्रपने स्वास्थ्य के। खोकर इसका मार्ग विशाल बनाया, कंकड़-पत्थर बीने, माड़-मंखाड़ श्रोर काँटों के। जलाया, वह हैं पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी।"

इसी से द्विवेदी जी आज आधुनिक हिंदी-गद्य के निर्माता अथवा जनक कहे जाते हैं।

× × ×

माता-पिता अपने बालक की किसी योग्य गुरु के सुपुर्द कर देते हैं। वे जानते हैं कि गुरु जितना ही याग्य होगा, वालक की शिज्ञा-दीज्ञा उतनी ही संयत और उच्च केटि की होगी। हिंदी-भाषा-भाषियों को भी वीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में एक ऐसे पथ-प्रदर्शक गुरु की आवश्यकता थी, जा मातृभापा और उसके साहित्य के प्रति उनका कर्त्तव्य उन्हें सुमाकर, ज्ञान की वृद्धि करके, उन्हें उचित मार्ग पर लाकर खड़ा कर दे। यह हमारा सौभाग्य ही था कि त्रावश्यकता के इस समय में ही प्रकृति माता ने हमारे लिए एक योग्य शित्तक और पथ-प्रदर्शक पैदा कर दिया। द्विवेदी जी हमारे पथ-प्रदर्शक वने और उन्होंने अपने इस कार्य का—'उत्तरदायित्व' भी कह सकते हैं—संपादन कुरालता-पूर्वक किया। यद्यपि उन्होंने किसी ऐसी संस्था की न्थापना नहीं की जो हिंदी-भाषा या उसके साहित्य के प्रचार के लिए किसी प्रकार का कार्य करती, तथापि 'सग्स्वती' की सहायता से, भाषा के शिल्पी, विचारों के प्रचारुक तथा साहित्य के शिचक, तीन-तीन संस्थाओं के संच्या का उत्तर-दायित्व-पूर्ण कार्य उन्होंने खेच्छा से उठाया - , न और सफलता के साथ निभाया। यही उतः - ु का प्रधान कारण है।

्रित ही उनके साहित्यिक-जीवन-काल में उनका लच्य बनी रही—हसी के लिए वे सदैव प्रारापण से प्रयत्न करते रहे। 'साहित्य ऐसा होना चाहिए जिसके आकलन से बहुदर्शिता वहे, बुद्धि को तीव्रता प्राप्त हो, हृद्य में एक प्रकार की संजीवनी शिक्त की धारा वहने लगे। मनोवेग परिष्कृत हो जाय और आत्मगौरव की उद्भावना होकर वह पराकाष्टा को पहुँच जाय।' इस आदर्श और मनोवृत्ति ने ही उन्हें आचार्यत्व के पद पर बैठा दिया।

दूसरी बात इस संवंध में यह भो कही जा सकती है कि जिस परिस्थिति में द्विवेदी जी का प्रादुर्भाव हुआ था वह किसी स्थायी संपत्ति के निर्माण के योग्य का ही नहीं। उस समय तो केवल पथ-प्रदर्शकों की आवश्यकता थी जा साहित्य के प्रत्येक चेत्र में ''त्रावाधित रूप से वढ़ती हुई विचार-विदग्धता को नष्ट करके शुद्ध साहित्य-निर्माण की महत्त्वपूर्ण भावना साहित्य-सेवियों के हृदयों में जागरित कर दे।" यही कार्य द्विवेदी जी ने किया भी। इसी लिए 'यदि मनुष्य की अनुभूतियों, उसके आह्वाद, उसकी वेदना, और उसकी आकांचाओं की अभिन्यक्ति के लिए साहित्य में अवकाश समभा जाय और उसी के अनुसार हिहेदी-साहित्य की परीचा की जाय तो मानना पड़ेगा कि समस्त 'द्विवेदी-युग' भी हमारे साहित्य के इतिहास में कोई बहुत गौरव की वस्तु नहीं वन पाया; उसने प्रथम श्रेगी की ^किक भी मौलिक शुद्ध साहित्यिक कृति हमारे सामने नहीं प्रकारी।' फिर केवल द्विवेदी जी की रचनात्रों की तो बात ही क्या है कारण, उनकी तो, एक तरह से मौलिक रचनाओं कित्तए अवकाश ही नहीं मिलता था—'सरस्वती'-संपादन में ही वे सदैव व्यस्त रहते थे। इस कथन की पुष्टि इस वात से भी की जा सकती हैं कि आज तक हिंदी के किसी भी पत्र-

पूर्ति ही उनके साहित्यिक-जीवन-काल में उनका लच्य वनी रही—इसी के लिए वे सदैव प्राण्पण से प्रयत्न करते रहे। 'साहित्य ऐसा होना चाहिए जिसके आकलन से वहुदर्शिता वहें, बुद्धि को तीन्नता प्राप्त हो, हृद्य में एक प्रकार की संजीवनी शिक्त की धारा वहने लगे। मनोवेग परिष्कृत हो जाय और आत्मगौरव की उद्भावना होकर वह पराकाष्टा को पहुँच जाय।' इस आदर्श और मनेवित्ति ने ही उन्हें आचार्यत्व के पद पर वैठा दिया।

दूसरी बात इस संवंध में यह भो कही जा सकती है कि जिस परिस्थिति में द्विवेदी जी का प्रादुर्भाव हुआ था वह किसी स्थायी संपत्ति के निर्माण के योग्य का ही नहीं। उस समय तो केवल पथ-प्रदर्शकों की आवश्यकता थी जो साहित्य के प्रत्येक चेत्र में ''त्राग्राधित रूप से वढ़ती हुई विचार-विदग्धता को नष्ट करके शुद्ध साहित्य-निर्माण की महत्त्वपूर्ण भावना साहित्य-सेवियों के हृदयों में जागरित कर दे।" यही कार्य द्विवेदी जी ने किया भी। इसी लिए 'यदि मनुष्य की अनुभूतियों, उसके आह्वाद, उसकी वेदना, श्रीर उसकी श्राकांचाश्रों की श्रभिव्यक्ति के लिए साहित्य में अवकाश समभा जाय और उसी के अनुसार हिनेदी-साहित्य की परीचा की जाय तो मानना पड़ेगा कि सँमस्त 'द्विवेदी-युग' भी हमारे साहित्य के इतिहास में कोई बहुत गौरव की वस्तु नहीं बन पाया; उसने प्रथम श्रेणी की "क भी मौलिक शुद्ध साहित्यिक कृति हमारे सामने नहीं रक्ली।' फिर केवल द्विवेदी जी की रचनाओं की तो बात ही क्या है कारण, उनको तो, एक तरह से मौलिक रचनाओं की तिए अवकाश ही नहीं मिलता था—'सरस्वती'-संपादन में ही वे सदैव व्यस्त रहते थे। इस कथन की पुष्टि इस वात से भी की जा सकती हैं कि आज तक हिंदी के किसी भी पत्र-

के द्वारा पूच और पश्चिम की, पुरातन और नूतन, स्थायी और अस्थायी, ज्ञान-संपत्ति—अपनी कठिन कमाई—संपूर्ण हिंदी भापा-भाषी प्रांतो में मुक्त-ह्स्त से वितरित की, जिसके लिए हम सब उनके उठारी हैं ऋौर स्पष्ट रूप से कह सकते हैं कि , भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र के बाद यदि किसी ऐसे एक व्यक्ति का नाम लियो जा सकता है जिसके व्यक्तित्व की हमारे हिंदी-साहित्य के विविध ऋंगों पर स्थायी और ऋमिट छाप लगी हो तो वह श्राचार्थ द्विवेदी जी ही हैं।' जिस दिन कला की सुदृढ़ नींव पर हिंदी-संस्कृति के महान् प्रासाद का निर्माण होगा, जिस दिन गंगा श्रौर यमुना के किनारे का 'प्राचीन' एक बार फिर उठकर देश के दूसरे जायत प्रांतों के समकज्ञ नें बैठने का हक़दार हो सकेगा, उस दिन हम देखेंगे कि उसकी नींव की खोदकर तैयार रखने का सारा श्रेय दौलतपुर के एक यामीए ब्राह्मए की ही है। १६४ वास्तव में, इसी सम्राट् की दिग्विजय से गीरवान्त्रित होकर आज हम गुलबर्रे उड़ा रहे हैं। हमें इस प्रकार प्रसन्न होते श्रीर स्वर्गीय गौड़ जी के शब्दों में, अपने साहित्यिक जीवन में मातृभाषा हिंदी की जो सेवायें उन्होंने की हैं, उनको फूलते-फलते देखकर आज द्विवेदी जी की आत्मा की जी आनंद हा रहा होगा उसका मूल्य कीन आँक सकता है ? और उससे हिंदी-साहित्य का जो प्रचार और प्रसार हो रहा है वह हमारी त्राँखों के सामने इतना प्रत्यत्त है कि स्वाभाविक-सा लगता है त्रौर हम उसके प्रेरक के प्रति कृतज्ञ होना भी भूल जात हैं।

X

×

×

कें द्वारा पूब और परिचम की, पुरातन और नूतन, स्थायी और श्रस्थायी, ज्ञान-संपत्ति-अपनी कठिन कमाई-संपूर्ण हिंदी भापा-भापी प्रांतो में मुक्त-हस्त से वितरित की, जिसके लिए हम सब उनके ग्टाणी हैं और स्पष्ट रूप से कह सकते हैं कि , भारतेंदु बावृ हरिश्चंद्र के बाद यदि किसी ऐसे एक व्यक्ति का नाम लिया जा सकता है जिसके व्यक्तित्व की हमारे हिंदी-साहित्य के विविध ऋंगों पर स्थायी और ऋमिट छाप लगी हो तो वह आचार्य द्विवेदी जी ही हैं।' जिस दिन कला की सुदृढ़ नींव पर हिंदी-संस्कृति के महान् प्रासाद का निर्माण होगा, जिस दिन गंगा और यमुना के किनारे का 'प्राचीन' एक बार फिर उठकर देश के दूसरे जायत् प्रांतों के समकत्त नें बैठने का हक़दार हो सकेगा, उस दिन हम देखेंगे कि उसकी नींव की खोदकर तैयार रखने का सारा श्रेय दौलतपुर के एक त्रामीण बाह्मण के। ही है। । वास्तव में, इसी सम्राट् की दिग्विजय से गीरवान्वित होकर आज हम गुलबर्रे उड़ा रहे हैं। हमें इस प्रकार प्रसन्न होते श्रीर स्वर्गीय गौड़ जी के शब्दों में, अपने साहित्यिक जीवन में मातृभाषा हिंदी की जो सेवायें उन्होंने की हैं, उनको फूलते-फलते देखकर त्राज द्विवेदी जी की आत्मा की जी आनंद हा रहा होगा उसका मूल्य कौन आँक सकता है ? और उससे हिंदी-साहित्य का जो प्रचार और प्रसार हो रहा है वह हमारी त्राँखों के सामने इतना प्रत्यत्त है कि स्वाभाविक-सा लगता है त्रौर हम उसके प्रेरक के प्रति कृतज्ञ होना भी भूल जात हैं।

हैज़िलट या हमारे देश के रवींद्रनाथ नेहिं भी नहीं वेठे। यह भी नहीं कह सकते कि ये लोग शास्त्रीय समीचा की प्राचीन प्रणाली से परिचित नहीं थे। उन्होंने उसका धभ्यास नहीं किया। हमारा श्रभिप्राय यह भी नहीं कि हम दिवेदी की की समीचा से स्टील, जानसन. रवींद्रनाथ थादि की संमीचा की तुलना करें। परंतु इतनी समता तो सवमें है कि अपने समय की साहित्य-समीचा पर अपनी प्रकृति की मुद्राये सभी अंकित कर गये हैं। भावना की वह गहन तनमयता, जो रवींद्रनाथ का कर्विता के निगृह रहस्यतम श्रंतरपट का दर्शन करा देती है, द्विवेदी जी में नहीं मिलती; न इन्हें कल्पना की वह श्राकाशगामिनी गति ही मिली है जो सदा रवि वाबू के साथ रहती है। परंतु इन प्रदेशों के निस्संपन्न, कर्मठ बाह्यए की भाँति हिवेदी जी का शुर्क, सात्विक शाचार साहित्य पर भी श्रपनी छाप छोड़ गया है जिसमें न बल्पना की उच्च उद्भावना है, न साहित्य की सुषम दृष्टि; केवल एक शुद्ध प्रेरणा है जो भाषा का भी मार्जन करती है और समय पर सरल उदात भावों का भी सत्कार करती है। यही हिवेदी जी की देन हैं। शुष्कता में ब्यंग्य है, साखिकता में विनोद है। द्विवेदी जी में ये दोनों ही हैं। स्वभाव की रुखाई कपास की भाँति नीरस होती हुई भी गुणमय फल देती है। द्विवेदी जी ने हिंदी-साहित्य के चैत्र में कपास की ही खेती की 'निरस विशद गुणमय फल जासू।"

 \times \times \times \times

हिवेदी जी श्रपने युग के उस साहित्यिक श्रादर्शवाद के जनक हैं जो समय पाकर भेमचंद ली श्रादि के उपन्यास-साहित्य में फूजा-फला। श्रपनी विशेषताश्रों श्रीर टुटियों से समन्वित इस श्रादर्शवाद की महिमा हमें स्वीकार, करनी चाहिए। मनुष्य में सत् के प्रति जो हैज़लिट या हमारे देश के रवींद्रनाथ काई भी नहीं वेठे। यह भी नहीं कह सकते कि ये लोग शास्त्रीय समीचा की प्राचीन प्रणाली से परिचित नहीं थे। उन्होंने उसका धभ्यास नहीं किया। हमारा श्रमिपाय यह भी नहीं कि हम द्विवेदी की की समीचा से स्टील, जानसन, रवींद्रनाथ थादि की संमीचा की तुलना करें। परंतु इतनी समता तो सबमें है कि अपने समय की साहित्य-समीचा पर अपनी प्रकृति की सुद्रा ये सभी अंकित कर गये हैं। भावना की वह गहन तनमयता, जो रवींद्रनाथ की कर्विता के निगृह रहस्यतम श्रंतरपट का दर्शन करा देती है, द्विवेदी जी में नहीं मिलती; न इन्हें कल्पना की वह श्राकाशगामिनी गति ही मिली है जो सदा रवि वाबू के साथ रहती है। परंतु इन प्रदेशों के निस्संपन्न, कर्मंड ब्राह्मण की भाँति द्विवेदी जी का शुर्वक, साव्विक श्राचार साहित्य पर भी श्रपनी छाप छोड़ गया है जिसमें न यल्पना की उच्च उद्भावना है, न साहित्य की सुषम दृष्टि; केवल एक शुद्ध प्रेरणा है जो भाषा का भी मार्जन करती है और समय पर सरल उदात भावों का भी सत्कार करती है। यही हिवेदी जी की देन हैं। शुष्कता में व्यंग्य है, साविकता में विनोद है। द्विवेदी जी में ये दोनों ही हैं। स्वभाव की रुखाई कपास की भाँति नीरस होती हुई भी गुणमय फल देती है। द्विवेदी जी ने हिंदी-साहित्य के चेत्र में कपास की ही खेवी की 'निरस विशद गुणमय फल जासू।"

 \times \times \times \times

हिवेदी जी श्रपने युग के उस साहित्यिक श्रादर्शवाद के जनक हैं जो समय पाकर भेमचंद जी श्रादि के उपन्यास-साहित्य में फूजा-फला। श्रपनी विशेषताश्रों श्रोर शृदियों से समन्त्रित इस श्रादर्शवाद की महिमा हमें स्वीकार, करनी चाहिए। मनुष्य में सत् के प्रति जो कहना चाहिए।

बोव श्यामसंदरदासं, बीठ ए० ें शिव कृष्णदास अस्त्विना दि० श्रु० श्रु० श्रु० प्रष्ठ ६-७)

द्विदा व

गिरि-मेखला से वेष्टित होते हुए भी, श्रुपने श्राकार-विस्ता के कारण, पक स्वच्छंद पर्वत-सा मालुम होता है: जिसके खुवास्थल पर सेवों का हार है और विद्युच्चरा द्रमकते हुए हीरे की तरह चुण चया की ज़रकः जाती है, परंतु जिलका उन्नतः जलाद्य शुअ याकाश में सूर्य की रिमयों से कीर्तिमयी कांति. का पुन वनकर अपने युग-प्रदेश के तुने जो सर्व करता है, श्रोर जिसकी श्रीतभा से पीयूपमयी शक्ति का अलेक, शिवशंवर की जटा से निकाती हुई पुरुवसिताता गंगा के समैति, थनेक प्रांतों के। सिंचित अहें यनत प्राख्यों के सतुलाहित्य और सद्योगों में प्रवृत्त होने के लिए स्फूर्ति का दान देता है अपने युग में वह वेजाद है। अदेय श्रीनिवास शासी ने जो गांघी जी की विषय. में कहा था, वही, साहित्यिक चेत्र में - श्रीर वह भी वहीं तक के लिए जहाँ तक हिंदी-भाषा की सीमा का विस्तार है - द्विवेदी की के लिए कहा जा सकता है। वह वास्तव में 'श्रारवर्य और धननुपीन्यें है, उन्हें न कोई छू सकता है और न कोई उनके पास तक फटक सकता है। अपनी अनुरी विशिष्टता से वे सर्वया अकेले और निराले है। अपने समय के वे एक खेत्र राजा थे। काफ़ी समय तक प्रतिद्वृद्वियों ने उनके हाथ से साहित्यिक दंढ की छीनने की न्यर्थ चेष्टायें कीं। अंत में विजयल पती ने उन्हीं के माथे पर मुकुट रक्खा

भी विधियाँ विहित हैं । हिबेदी युगुका साहित्य के कमेयान की युग कहना चाहिए।

— बायू रयामसुंदरदासं वी० ए० हें शाय कृत्तादासं (अस्तावना दि० घ० घ० घ० घ८ ६-७)

द्विवेदी जी उस गगनसंशी मेर स्तंभ से समता उन्हों हैं जा गिरि-सेखला से वेष्टित होते हुए भी, अपने आकार-विस्तार के कारण, पक स्वच्छंद पर्वत-सा सालुम होता है जिसके खुवःस्थल पर मेघों का हार है और विद्यु इस कते हुए हीरे की तरह , चूण चण की ज़रक जाती हैं। परंतु जिलका उन्नतः जलाट श्रुश्र आकारा में सूर्य की रश्मियों से कीर्तिमयी कांति का पुजु बनकर प्रपते युग-प्रदेश कें। तेज्ञोसम करता है, श्रीर जिसकी प्रतिभा से पीयूपमयी शक्ति का की शिवशंबर की जटा से निक्की हुई पुरुषतिला गंगा के समैति, श्रनेक प्रांतों का सिंचित अके श्रनेत प्राणियों का सतुसाहित्य और सदुद्योगों में प्रवृत्त होने के बिए स्फूर्ति का दान देता है स्अपने युग में वह वेजाद है। अद्धेय श्रीनिवास शास्त्री ने जो गांधी जी के विषय. में कहा था, वही, साहित्यिक चेत्र में - ग्रौर वह भी वहीं तक के लिए जहाँ तक हिंदी-भाषा की सीमा का विस्तार है —हिवेदी की के लिए कहा जा सकता है। वह वास्तव में आश्चर्य और अनुतामिय है, उन्हें न कोई छूसकता है और न कोई उनके पास तक फटक सकता है। अपनी अनुरी विशिष्टता से वे सर्वया अकेले और निराले हैं। अपने समय के वे एक क्यूंत्र राजा थे। काफ़ी समय तक प्रतिद्वृद्वियों ने उनके हाथ से साहित्यिक दंड की छीनने की व्यथे चेष्टायें की । अंत में विजयल पती ने उन्हीं के माथे पर अकट रक्ला

ृफा० १

तो उसके सबसे बढ़े विधायक तो अवश्य हैं। दोनों ही अपने-अपने समय के अद्वितीय समालोचक हुए हैं। ढाक्टर जानसन ही की तरह द्विवेदी जी के साहित्यिक कोड़ेंा की चोट से बहुत से अनधिकार चेष्टा करनेवाले लेखकों के। समय-समय पर तिलमिलाना पड़ा है। दोनों ही असाधारण पांढित्य के कारण विद्वन्मंडली के पूजास्पद हुए हैं। डाक्टर जानसन ही की तरह द्विवेदी जी में मैत्री का अपूर्व गुण है।

> -- पंडित वेंक्टेशनारायय तिवारी, एम० ए० (साप्ताहिक भारत २८ श्रक्टूबर श्रीर ११ नवंबर, १६२८)

> > 8

पहित महावीरप्रसाद द्विवेदी जी, जो श्रपने युग के प्रधान साहित्याचार्य हुए, श्रेपने आरंभिक विकास की दृष्टि से द्यानंदी थे। सामयिक जड़ताओं का प्रतीकार करने में श्राप सदा खड़हस्त रहे। परशुराम की भाँति श्रापने राजसभाव के विरुद्ध चिरकाल तक श्रनवरत संघर्ष किया। युग की परिस्थिति के वश होकर द्विवेदी जी, द्रीणाचार्य की भाँति चात्रधर्म के अनुयायी हुए। उन्होंने सैनिक वृत्ति धारण की । पच्चीसं वर्ष लगातार हिंदी-साहित्य के शिविर में उसके सेनानायक होकर रहे। सच पृक्षा जाय तो हिंदी का वह युग बाह्मण्युम न था, चत्रिययुग था। उसकी संपूर्ण मतिगति वैसे ही साँचे में ढली थी। उस युग के सच्चे बाह्यणों ने-जिनमें द्विवेदी जी प्रमुख हैं - एक अभृतपूर्व आवेश में आकर कार्य किया। उनका ऋग इस पर श्रपार है। परंतु जब इस यह विचार करते हैं कि निरंतर संघर्षमय समय में रहकर भी द्विवेदी जी उत्तम केाटि की साहित्यिक दृष्टि से संपन्न थे, तब हमें उनकी वास्तविक महत्ता का वोध होता है। संस्कृत-कान्य की मध्यकालीन-कला-विशेषतः युक्त-रचना का चमस्कार द्विवेदी जी पर पूर्ण्ं प्रभाव रखता था, किंतु वे छोर भी

तो उसके सबसे बद्दे विधायक तो श्रवश्य हैं। दोनों ही श्रपने-श्रपने समय के श्रद्धितीय समालोचक हुए हैं। डाक्टर जानसन ही की तरह द्विवेदी जी के साहित्यिक कोड़ेंा की चोट से बहुत से श्रनधिकार चेष्टा करनेवाले लेखकों के। समय-समय पर तिलमिलाना पड़ा है। दोनों ही श्रसाधारण पांडित्य के कारण विद्वन्मंडली के पूजास्पद हुए हैं। डाक्टर जानसन ही की तरह द्विवेदी जी में मैत्री का श्रपूर्व गुण है।

--पंडित वेंक्टेशनारायय तिवारी, एम॰ ए० (साप्ताहिक भारत २८ श्रक्टूबर श्रीर ११ नवंबर, १६२८)

8

पिंत महावीरप्रसाद द्विवेदी जी, जो श्रपने युग के प्रधान साहित्याचार्य हुए, श्रेपने आरंभिक विकास की दृष्टि से द्यानंदी थे। सामयिक जबताओं का प्रतीकार करने में त्राप सदा खड़ इस्त रहे। परशुराम की भाँति श्रापने राजसभाव के विरुद्ध चिरकाल तक श्चनवरत संघर्ष किया। युग की परिस्थिति के वश होकर द्विवेदी जी, द्रोणाचार्य की भाँति चात्रधर्म के अनुयायी हुए। उन्होंने सैनिक वृत्ति धारण की । पच्चीसं वर्ष लगातार हिंदी-साहित्य के शिविर में उसके सेनानायक होकर रहे। सच पूछा जाय तो हिंदी का वह युग ब्राह्मण्युग न था, चत्रिययुग था। उसकी संपूर्ण मतिगति वैसे ही साँचे में ढली थी। उस युग के सन्चे ब्राह्मणों ने-जिनमें द्विवेदी जी प्रमुख हें — एक श्रभृतपूर्व धावेश में श्राकर कार्य किया। उनका ऋण हम पर अपार है। परंतु जब इम यह विचार करते हैं कि निरंतर संघर्षमय समय में रहकर भी द्विवेदी जी उत्तम केाटि की साहित्यिक दृष्टि से संपन्न थे, तब हमें उनकी वास्तविक महत्ता का बोघ होता है। संस्कृत-काव्य की मध्यकालीन-कला — विशेषतः युक्त-रचना का चमस्कार द्विवेदी जी पर पूर्ण प्रभाव रखता था, किंतु वे श्रीर भी

Ę

यदि कोई मुक्तसे पूछे कि द्विवेदी जी ने क्या किया तो मैं उसे समग्र आधुनिक दिंदी-साहित्य दिखावर कह सकता हूँ कि यह सब उन्हीं की सेवा का फन्न है। हिंदी-साहित्य गगन में सूर्य, चंद्रमा और तारागणों का अभाव नहीं है। सूरदास, तुलसीदास, पद्माकर यादि कवि साहित्याकाश के देदीप्यमान नचन्न हैं। परंतु मेघ की तरह ज्ञान की जलराशि देकर साहित्य उपवन के। हरा-भरा करनेवालों में दिवेदी जी की ही गणना होगी।

श्रीपदुमलाल पुन्नालाल बऱ्छी
 (हिनेदी-स्रिमनंदन-संय पृ० ४३१)

ত

हिंदो के द्वारा द्विवेदी जी ने हिंदू-संस्कृति का भला किया है। मेरे लिए हिंदू-संस्कृति और हिंदुःव दो पर्यायवाची शब्द हैं। हिवेदी जी ने भाषा-हारा हिंदू की रचा तथा विकास किया है; श्रतः मेरे जिए वे मान्य हैं।

> — श्री भाई परमानंद एम० ए०, एम० एत्त० ए० (ह्विवेदी-श्रमिनंदन-ग्रंथ ए० ४३१)

> > 5

No one has laboured harder or to greater purpose in the cause of promoting intellectual freedom by popularizing expression in an Indian language—Hindi in his case—than Pandit Mahavir Prasad Dvivedi × × × All honour to him for the pioneer work that he has per-

Ę

यदि कोई सुससे पूछे कि द्विवेदी जी ने क्या किया तो मैं उसे समय आधुनिक दिंदी-सादित्य दिखावर कह सकता हूँ कि यह सब उन्हों को सेना का फज है। हिंदी-साहित्य गगन में सूर्य, चंद्रमा और तारागणों का श्रभाव नहीं है। सूरदास, तुलसीदास, पद्माकर श्रादि किन साहित्याकाश के देदीप्यमान नचन्न हैं। परंतु मेघ की तरह ज्ञान की जलराशि देकर साहित्य उपवन के। हरा-भरा करनेवालों में दिनेदी जी की ही गणना होगी।

> —श्रीपदुमलाल पुत्तालाल बख़्यी (द्विवेदी-श्रमिनंदन-प्रथ पृ० ४३१)

Ø

हिंदो के द्वारा द्विवेदी जी ने हिंदू-संस्कृति का मला किया है। मेरे लिए हिंदू-संस्कृति और हिंदुत्व दो पर्यायवाची शब्द हैं। द्विवेदी जी ने भाषा-द्वारा हिंदू की रचा तथा विकास किया है; श्रतः मेरे जिए वे मान्य हैं।

> — श्री भाई परमानंद एम० ए०, एम० एत्त० ए० (ह्विदी-श्रभिनंदन-ग्रंथ ए० ४३१)

> > ξ

No one has laboured harder or to greater purpose in the cause of promoting intellectual freedom by popularizing expression in an Indian language—Hindi in his case—than Pandit Mahavir Prasad Dvivedi × × × All honour to him for the pioneer work that he has per-

प्रेम श्रीर श्रवखद्यनं का जो standard हिंदी-पत्रकारों के सामने उन्होंने स्वखाः है उस तक पहुँचने के लिए श्रभी वीसियों वर्ष लगेंगे। उनके मुकावले का दूसरा के ई जर्नेलिस्ट हिंदी-संसार में तो विद्यमान नहीं।

—पं॰ वनारसीदास चतुर्वेदी (विशाल भारत, मई १६२६)

92

हिंदी संसार में तो क्या उनकी टका के साहित्य-सेवी भारत के अन्य भाषा-भाषियों में भी कितने हैं, पता नहीं।

-- पं० श्रीरामशर्मा (सुधा, ६-१-२ ए० २२४)

93

व्यक्तित्व बनाया जाता है, स्वयं नहीं वनता। लोकाकां हा व्यक्तित्व की महिमा प्रतिष्ठापित करती है। हमारे श्राचार्य द्विवेदी जी इसके प्रत्यच प्रमाण हैं। श्रपनी निःस्वार्य साहित्यिक साधना से इन्होंने जिस वातावरण की सृष्टि की, उसके भीतर से इसी लोकाकां जा का प्रादुर्भाव हुआ श्रीर यही श्राज के हमारे इतने वढ़े श्राह्वाद का कारण वनी। इस प्रकार की श्राकां जा हमारे वीच जितना ही श्रिषक प्रसार होगा, इस उतनी ही जल्दी श्रपने श्रापको समुद्रत बना सकेंगे।

—स्व० श्री श्रेमचंद जी (हंस ३-७-५० १०२)

18

समय परिवर्तनशील है। भारतवर्ष में घँगरेज़ों का राज्य रहे, 'गाहे स्वराज्य हो जाय, प्रकाधिपत्य हो, चाहे प्रजातंत्रवाद की टुंडुभि यजे, परंतु हिंदी-साहित्य का ज़ा राष्ट्रीय भवन द्विवेदी जी ने तैयार किया

ोनवां.

प्रेम श्रीर श्रवखद्यन का जे। standard हिंदी-पत्रकारों के सामने उन्होंने रवखा है उस तक पहुँचने के लिए श्रभी बीसियों वर्ष लगेंगे। उनके मुकावले का दूसरा केाई जनेंलिस्ट हिंदी-संसार में तो विद्यमान नहीं।

—पं॰ वनारसीदास चतुर्वेदी (विशाल भारत, मई १६२६)

१२

हिंदी संसार में तो क्या उनकी टकर के साहित्य-सेवी भारत के श्राम्य भाषा-भाषियों में भी कितने हैं, पता नहीं।

—पं० श्रीरामशर्मा (सुधा, ६-१-२ ए० २२४)

33

व्यक्तित्व बनाया जाता है, स्वयं नहीं वनता। लोकाकांता ही व्यक्तित्व की महिमा प्रतिष्ठापित करती है। हमारे श्राचार्य द्विवेदी जी इसके प्रत्यत प्रमाण हैं। श्रपनी निःस्वार्थ साहित्यिक साधना से इन्होंने जिस वातावरण की सृष्टि की, उसके भीतर से इसी लोकाकांता का प्रादुर्भाव हुआ श्रीर यही श्राज के हमारे इतने वदे श्राह्माद का कारण बनी। इस प्रकार की श्राकांताश्रों का हमारे वीच जितना ही श्रधिक प्रसार होगा, इम उतनी ही जल्दी श्रपने श्रापको समुचत बना सकेंगे।

> —स्व० श्री प्रेमचंद नी (हंस ३-७-५० १०२)

18

समय परिवर्तनशील है। भारतवर्ष में यँगरेज़ों का राज्य रहे, बाहे स्वराज्य हो जाय, एकाधिपत्य हो, चाहे प्रजातंत्रवाद की दुंदुभि बजे, परंतु हिंदी-साहित्य का जो सप्ट्रीय भवन द्विवेदी जी ने तैयार किया